

बृहत्स्तोत्ररत्नाकरः

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर
राजादरवाजा, वाराणसी



'शिव' ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-१७

बृहत्स्तोत्ररत्नाकरः

(सर्वविधदेवानां स्तोत्रसंग्रहः)

[स्तोत्र-संख्या ४४२]

०

सम्पादक
व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि-
आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्त मिश्र शास्त्री
सम्पादकीय विभाग
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-१

०

प्रकाशक
ठाकुर प्रसाद ऐण्ड सन्स बुकसेलर
राजादरवाजा : वाराणसी

सं० २०४२] फोन : ६४६५०, ५३०२७ [मूल्यम् ३०·००

प्रकाशक :

ठाकुरप्रसाद ऐण्ड सन्स बुकसेलर

राजादरवाजा, वाराणसी-१

फोन निवास : ६३२६२

चतुर्थ संस्करण १६८५

मूल्य : ३०·००

मुद्रक :

मुकुन्दलाल अग्रवाल

बाम्बे मुद्रण प्रेस

नाटी इमली, वाराणसी-१



वर्तमान सप्तम ब्रह्माके पचास वर्ष के पश्चात् सप्तम श्वेतवाराह कल्प के प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रथम सत्ययुग के चतुर्थ चरण के पश्चात् प्रथम त्रेतायुग के आरम्भ से सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें कलियुग के प्रथम चरण के सवा पाँच सहस्रवर्ष पर्यन्त प्रायः दो अरब वर्ष से भारतीय ऋषि-महर्षियों-द्वारा उपदिष्ट धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का परिचायक स्तोत्र-पाठ की परम्परा निरन्तर चली आ रही है। 'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये' के अनुसार ऋषि, मुनि तथा इन्द्रादि देवों ने भी अपने किसी-न-किसी उपास्य देवी-देवताओं का अपनी अभीष्ट सिद्धि के निमित्त स्तोत्रों-द्वारा प्रार्थना की है और अपने कार्य में पूर्ण सफल हुए हैं। इसी आधार पर इन स्तोत्रों का प्रणयन हुआ है। पाठकजनों ने स्तोत्रों की अनेक पुस्तकें देखी होंगी, किन्तु इन विशेषताओं के साथ नहीं, जो प्रस्तुत पुस्तक में उपलब्ध हैं।

इसमें प्राचीन प्रचलित, नित्यप्रति व्यवहार में आनेवाले सिद्ध-स्तोत्रों का संकलन तो है ही काशी के गण्य-मान्य विद्वानों तथा धर्माचार्यों के रचित स्तोत्र भी दे दिये गये हैं, जो अब तक के प्रकाशित अन्य किसी स्तोत्र-ग्रन्थों में प्राप्त नहीं हैं–यह इसकी प्रधान विशेषता है। जैसे–विश्वनाथमंगलस्तोत्र, सिद्ध-सरयूस्तोत्र, सङ्कष्टमोचन-स्तोत्र, भारतविजयस्तोत्र, शिवाष्टक, दुर्गाष्टक, पूर्णाष्टक, गङ्गाष्टक, गणेशाष्टक, विष्णवष्टक, गणेश-विनति, गणेशपञ्चचामरस्तोत्र, हनुमदष्टक, वैष्णवीदेवीस्तुति, सिद्ध-शारदा-स्तुति, अक्षमाला-स्तुति,

तीर्थाष्टक, सार्द्धश्लोकी दुर्गा, अर्द्धश्लोकी भागवत आदि स्तोत्र भी इसमें सन्निविष्टि हैं। स्तोत्र-संख्या भी इसमें ४४२ है, जो अबतक की प्रकाशित किसी पुस्तक में एकत्र संकलित नहीं है।

मूल पाठ की शुद्धता एवं आधुनिक शैली से संशोधन-सम्पादन के साथ स्तोत्र-सम्बन्धी ऐसी पुस्तक अब तक अन्यत्र कहीं से भी नहीं प्रकाशित है।

इसमें सम्मति प्रदान-करने वाले सूक्ष्म द्रष्टा विद्वानों एवं सन्त-महात्माओं का आभार मानता हूँ जिन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त कार्य-क्रम में भी मेरे ऊपर असीम अनुकम्पा कर पुस्तक की उपयोगिता व्यक्त की है। साथ ही सम्पादन में हमें जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उन विद्वान् ग्रन्थ-सम्पादकों के प्रति भी मैं अपना आभार मानता हूँ।

आकर्षक साज-सज्जा एवं विशुद्ध मुद्रण के लिए *ठाकुर प्रसाद ऐण्ड सन्स* के संचालक महोदय विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

इसका संशोधन-सम्पादन तथा स्तोत्रों का संकलन भी मैं बड़ी सावधानी के साथ किया हूँ, फिर भी मानव दोष से सम्भव त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अन्त में, मैं जिन अखिलब्रह्माण्डनायिका शक्ति जगज्जननी माता जयन्ती की असीम अनुकम्पा से यह कार्य पूर्ण कर सका हूँ, उन्हीं के पुनीत चरण-कमलों में समर्पित कर अपने को कृतार्थ समझता हूँ।

नागपंचमी

२० अगस्त १९८५

वाराणसी-१

—*शिवदत्त मिश्र शास्त्री*

सी० के० ५।२६ ए०,

भिखारीदास लेन, वाराणसी-१

सकल - निगमागम - पारावारीणानां सर्वतन्त्र - स्वतन्त्राणां वर्तमान-शङ्कराचार्यस्वरूपाणां भारतीय - सनातनधर्म-संस्कृति - सभ्यतोद्धारकाणामनन्त - श्रीविभूषित - पूज्यपाद-(श्रीहरिहरानन्दसरस्वती) *करपात्रस्वामिमहाराजानां*

शुभाशीर्वचांसि

०

इह खलु विकराले कलिकाले ऐहिका-ऽऽमुष्मिकाभ्युदय-परम-निःश्रेयस-प्रधान-साधनीभूतानां वेदानां तदनुसारिणामन्येषामार्षधर्म-शास्त्राणां भगवत्स्मरण-कीर्तनादिकं परमकल्याणाधायकमिति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः।



'सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्ना'मिति श्रीमद्भागवत-वचनेन स्तुत्यपरपर्यायं गुणकीर्तनं चरितवर्णनापरपर्यायं कर्मकीर्तनं नामकीर्तनञ्च विहितमाकलय्य भगवत्स्तुतिप्रियैः पण्डितप्रकाण्डैः *श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि* - महाभागैर्नानापुराणेषु पठितानि प्रत्नैर्नूत्नैश्चाचार्यतल्लजैरुपनिबद्धानि नैकैर्विपश्चिदपश्चिमैर्विरचितानि च स्तोत्राणि समाहृत्योपचितो बृहत्स्तोत्ररत्नाकराख्योऽभिनवो निबन्धः। विशिनष्टु स्वात्मानमिति तदर्थं भूयोभिराशीभिर्नारायणस्मरणात्मकैः सभाजयामः।

ब्रह्मकुटीरः,
नारदघट्टः, वाराणसी
श्रा० शु० १५, २०२५

करपात्रस्वामी

प्राच्य-प्रतीच्योभयविद्यानिष्णात विद्वन्मूर्धन्य सम्माननीय

पण्डित श्रीकरुणापति त्रिपाठी

उपकुलपति

की

शुभ-सम्मति

'बृहत्—स्तोत्ररत्नाकर' का प्रस्तुत संस्करण देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। *पण्डित श्री शिवदत्तमिश्र शास्त्री* ने बड़े मनोयोग और सावधानी के साथ इस द्वितीय संस्करण का सम्पादन किया है। इसके संशोधित-सम्पादित एवं परिवर्त्तित वर्तमान संस्करण को जो रूप दिया गया है, वह निश्चय ही श्रमसाध्य है। सम्पादक ने निष्ठा, मनोयोग तथा वैदुष्य के साथ यह कार्य सम्पन्न किया है। इसके लिये सम्पादक प्रशंसा के पात्र हैं।

कलियुग में देवाराधन-स्तवन और देवकीर्तन अत्यन्त महत्त्व के साधन हैं। इनके द्वारा नाना प्रपंचों से विकल मानव अपना ऐहिक, आमुष्मिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय करने में समर्थ हो सकता है।

धर्मप्राण जनता के इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण का जो स्वागत किया है उसी के फलस्वरूप यह द्वितीय परिवर्तित संस्करण प्रकाशित हो रहा है। यह पूर्व संस्करण की अपेक्षा अधिक उपयोगी एवं संग्राह्य है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसका अधिकाधिक पाठकों में स्वागत होगा तथा भारती जनता के अभ्युदय में यह सहायक होगा। एतदर्थ *श्री शिवदत्त मिश्र जी* साधुवादार्ह हैं।

वाराणसी

अनन्त चतुर्दशी — *करुणापति त्रिपाठी*

संवत् २०३१

स्तोत्रानुक्रमणिका

४. शिवस्तोत्राणि

५. सूर्यस्तोत्राणि

६. देवीस्तोत्राणि

७. गङ्गादितीर्थस्तोत्राणि

८. अवतारस्तोत्राणि

९. रामस्तोत्राणि

इति स्तोत्रानुक्रमणिका समाप्ता ।

०

स्तोत्र पाठ-विधि

प्रातःकाल उठकर भगवान् का स्मरण करने के बाद स्नान आदि नित्यक्रिया से निवृत्त होकर, दाहिने हाथ में जल लेकर, 'ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः' मन्त्र पढ़कर तीन वार आचमन तथा प्राणायाम करे और अपने शरीर-शुद्धि के निमित्त,

'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।'

इस मन्त्र को पढ़कर अपने शरीर तथा आसन पर जल छिड़के। क्योंकि शरीर, मन और वाणी इन तीनों की शुद्धि से ही कोई भी पुण्य कार्य, अनुष्ठान एवं स्तोत्र-पाठ सिद्ध होता है। यदि किसी कार्य-कारणवश पूरा स्नान न हो सके, तो उपर्युक्त मन्त्र से मन्त्र-स्नान कर लेना चाहिए। पश्चात् मनःशुद्धि के लिए हाथ में जल, पुष्प या केवल जल लेकर पाठ का संकल्प करे।

'ॐ अद्य अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, अमुकगोत्रः, अमुक-शर्म-वर्म-गुप्तनामाऽहं, अमुककार्यसिद्धयर्थं (अथवा परमेश्वरप्रीत्यर्थं वा स्व-मनःशान्त्यर्थं) अमुकपाठं करिष्ये।' कहकर भूमि पर जल छोड़ दे। वाणी की शुद्धता मित (थोड़ा) और सत्य बोलने से होती है। जो लोग मन्द स्वर से पाठ करते हैं, उन्हें स्तोत्र-पाठ का विशेष फल मिलता है। इसके साथ—

'युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।'

अर्थात् आहार, विहार, सोना, जागना आदि कार्य भी यथासमय करना परम आवश्यक है। इससे स्तोत्र-पाठ का फल सद्यः प्राप्त होता है। तत्पश्चात् जिस देवता का स्तोत्र-पाठ करना हो उसका ध्यान कर पाठ करना चाहिए।

* *

१. ब्राह्मण अपने नाम के आगे शर्मा, क्षत्रिय वर्मा और वैश्य गुप्त लगावे।

श्रीगणेशाय नमः

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि-संस्कृतः

बृहत्स्तोत्ररत्नाकरः

*

मङ्गलाचरणम्

यत्पाद-द्वय-सेवनान्मनुजनो मोहार्णवं लङ्घयन्
ख्यातिं याति परामिलातल इह प्राज्यश्रियं धारयन् ।
भव्यं भव्य-गुणाऽन्वितं बुधवरं सर्वार्थदं मङ्गलम्
श्रीमन्तं पितरञ्च सन्तशरणं नित्यं नमस्कुर्महे ॥१॥

श्रीमद्वाचमुमेश्वरौ प्रणिपतन्नाराधनीयान् गुरून्
सर्वेषां हितकाम्ययाऽत्र विविधान् स्वाऽभीष्टप्राप्त्यर्थकान्
ख्यातानां बहु-स्तोत्र-भक्तवचसां संगृह्य ग्रन्थे मया
स्तोत्राणां शिवदत्तमिश्रविदुषा चाऽऽलेखि रत्नाकरः ॥२॥

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम् ।
पार्वत्या महिषासुर-प्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः ॥३॥

विघ्न-ध्वान्त-निवारणैक-तरणि-र्विघ्नाटवी-हव्यवाड्
विघ्न-व्याल-कुलाभिमान-गरुडो विघ्नेभ-पञ्चाननः ।
विघ्नोत्तुङ्ग-गिरिप्रभेदनपवि-र्विघ्नाम्बुधेर्वाडवो
विघ्नाघौघ-घन-प्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः ॥४॥

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम् ॥५॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ६ ॥

मूर्तित्वे परिकल्पितः शशभृतो वर्त्माऽपुनर्जन्मना-
मात्मेत्यात्मविदां क्रतुश्च यजतां भर्ताऽमर-ज्योतिषाम् ।

लोकानां प्रलयोद्भव-स्थिति-विभुश्चानेकधा यः श्रुतौ
वाचं नः स ददात्वनेक-किरणस्त्रैलोक्यदीपो रविः ॥ ७ ॥
व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥ ८ ॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥ ९ ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१०॥

मङ्गलाष्टकम्

लक्ष्मीर्यस्य परिग्रहः कमलभूः सूनुर्गरुत्मान् रथः
पौत्रश्चन्द्रविभूषणः सुरगुरुः शेषश्च शय्यासनः ।
ब्रह्माण्डं वरमन्दिरं सुरगणा यस्य प्रभोः सेवकाः
स त्रैलोक्य-कुटुम्ब-पालनपरः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥१॥
ब्रह्मा-वायु-गिरीश-शेष-गरुडा देवेन्द्र-कामौ गुरु-
श्चन्द्रा-र्कौ वरुणा-ऽनलौ मनु-यमौ वित्तेश-विघ्नेश्वरौ ।
नासत्यौ निरृ॑ति-मरुद्गणयुताः पर्जन्य-मित्रादयः
स-स्त्रीकाः सुरपुङ्गवाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥२॥
विश्वामित्र-पराशरौर्व-भृगवो-ऽगस्त्यः पुलस्त्यः क्रतुः
श्रीमानत्रि-मरीचि-कौत्स-पुलहाः शक्तिर्वसिष्ठोऽङ्गिराः ।
माण्डव्यो जमदग्नि-गौतम-भरद्वाजादयस्तापसाः
श्रीमद्विष्णु-पदाब्जभक्ति-निरताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥३॥
मान्धाता नहुषोऽम्बरीष सगरौ राजा पृथुर्हैहयः
श्रीमान् धर्मसुतो नलो दशरथो रामो ययातिर्यदुः ।

इक्ष्वाकुश्च विभीषणश्च भरतश्चोत्तानपादध्रुवा-
वित्याद्या भुवि भूभुजः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥

श्रीमेरुर्हिमवांश्च मन्दरगिरिः कैलासशैलस्तथा
माहेन्द्रो मलयश्च विन्ध्य-निषधौ सिंहस्तथा रैवतः।
सह्याद्रिर्वर-गन्धमादनगिरि-मैनाक-गोमन्तका-
वित्याद्या भुवि भूभृतः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥५॥

गङ्गा सिन्धु-सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा
कृष्णा भीमरथी च फल्गु-सरयूः श्रीगण्डकी गोमती।
कावेरी-कपिला-प्रयाग-विनता-वेत्रावतीत्यादयो
नद्यः श्रीहरिपादपङ्कजभवाः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥६॥

वेदाश्चोपनिषद्गणाश्च विविधाःसाङ्गाःपुराणान्विताः
वेदान्ता अपि मन्त्र-तन्त्रसहितास्तर्क-स्मृतीनां गणाः।
काव्यालङ्कृति-गीतिनाटकगणाःशब्दाश्चनानाविधाः
श्रीविष्णोर्गुणराशि-कीर्तनकराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥७॥

आदित्यादि-नवग्रहाः शुभकरा मेषादयो राशयो
नक्षत्राणि स-योगकाश्च तिथयस्तद्देवतास्तद्गणाः।
मासाब्दा ऋतवस्तथैव दिवसाः सन्ध्यास्तथा रात्रयः
सर्वे स्थावर-जङ्गमाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥८॥

इत्येतद्वर-मङ्गलाष्टकमिदं श्रीवादिराजेश्वरै-
र्व्याख्यातं जगतामभीष्टफलदं सर्वाऽशुभ-ध्वंसनम्।
माङ्गल्यादि-शुभक्रियासु सततं सन्ध्यासु वा यः पठेद्
धर्मार्थादि-समस्त-वाञ्छितफलं प्राप्नोत्यसौ मानवः ॥९॥

इति श्रीमद्वादिराजविरचितं मङ्गलाष्टकं सम्पूर्णम्।

१. गणेशस्तोत्राणि

१. गणेशन्यासः

आचम्य, प्राणायामं सङ्कल्पं च कृत्वा, दक्षिणहस्ते वक्रतुण्डाय नमः। वामहस्ते शूर्पकर्णाय नमः। ओष्ठे विघ्नेशाय नमः। अधरोष्ठे चिन्तामणये नमः। सम्पुटे गजाननाय नमः। दक्षिणपादे लम्बोदराय नमः। वामपादे एकदन्ताय नमः। शिरसि एकदन्ताय नमः। चिबुके ब्रह्मणस्पतये नमः। दक्षिणनासिकायां विनायकाय नमः। वामनासिकायां ज्येष्ठराजाय नमः। दक्षिणनेत्रे विकटाय नमः। वामनेत्रे कपिलाय नमः। दक्षिणकर्णे धरणीधराय नमः। वामकर्णे आशापूरकाय नमः। नाभौ महोदराय मनः। हृदये धूम्रकेतवे नमः। ललाटे मयूरेशाय नमः। दक्षिणबाहौ स्वानन्दवासकारकाय नमः। वामबाहौ सच्चित्सुखधाम्ने नमः।

इति मुद्गलपुराणोक्तो गणेशन्यासः ॥ १ ॥



२. सङ्कष्टहरणं गणेशाष्टकम् [१]

ॐ अस्य श्रीसङ्कष्टहरणस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहागणपतिर्देवता, सङ्कष्टहरणार्थं जपे विनियोगः।

ॐ ॐ ॐकाररूपं त्र्यहमिति च परं यत्स्वरूपं तुरीयं
त्रैगुण्यातीतनीलं कलयति मनसस्तेज-सिन्दूर-मूर्तिम्।
योगीन्द्रैर्ब्रह्मरन्ध्रैः सकल-गुणमयं श्रीहरेन्द्रेण सङ्गं
गं गं गं गं गणेशं गजमुखमभितो व्यापकं चिन्तयन्ति ॥१॥
वं वं वं विघ्नराजं भजति निजभुजे दक्षिणे न्यस्तशुण्डं
क्रं क्रं क्रं क्रोधमुद्रा-दलित-रिपुबलं कल्पवृक्षस्य मूले।
दं दं दं दन्तमेकं दधति मुनिमुखं कामधेन्वा निषेव्यं
धं धं धं धारयन्तं धनदमतिधियं सिद्धि-बुद्धि-द्वितीयम् ॥२॥

तुं तुं तुं तुङ्गरूपं गगनपथि गतं व्याप्नुवन्तं दिगन्तान्
क्लीं क्लीं क्लींकारनाथं गलित-मदमिलल्लोल-मत्तालिमालम् ।
ह्रीं ह्रीं ह्रींकारपिङ्गं सकलमुनिवर-ध्येयमुण्डं च शुण्डं
श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रयन्तं निखिल-निधिकुलं नौमि हेरम्बबिम्बम् ॥३॥

लौं लौं लौंकारमाद्यं प्रणवमिव पदं मन्त्रमुक्तावलीनां
शुद्धं विघ्नेशबीजं शशिकरसदृशं योगिनां ध्यानगम्यम् ।
डं डं डं डामरूपं दलितभवभयं सूर्यकोटिप्रकाशं
यं यं यं यज्ञनाथं जपति मुनिवरो बाह्यमभ्यन्तरं च ॥४॥

हुं हुं हुं हेमवर्णं श्रुति-गणितगुणं शूर्पकर्णं कृपालुं
ध्येयं सूर्यस्य बिम्बं ह्युरसि च विलसत् सर्पयज्ञोपवीतम् ।
स्वाहा-हुंफट् नमोऽन्तैष्ठ-ठठठ-सहितैः पल्लवैः सेव्यमानं
मन्त्राणां सप्तकोटि-प्रगुणित-महिमाधारमीशं प्रपद्ये ॥५॥

पूर्वं पीठं त्रिकोणं तदुपरि रुचिरं षट्कपत्रं पवित्रं
यस्योर्ध्वं शुद्धरेखा वसुदलकमलं वा स्वतेजश्चतुस्रम् ।
मध्ये हुङ्कारबीजं तदनु भगवतः स्वाङ्गषट्कं षडस्रे
अष्टौ शक्तीश्च सिद्धीर्बहुलगणपतिर्विष्टरश्चाऽष्टकं च ॥६॥

धर्माद्यष्टौ प्रसिद्धा दशदिशि विदिता वा ध्वजाल्यः कपालं
तस्य क्षेत्रादिनाथं मुनिकुलमखिलं मन्त्रमुद्रामहेशम् ।
एवं यो भक्तियुक्तो जपति गणपतिं पुष्प-धूपा-ऽक्षताद्यै-
र्नैवेद्यैर्मोदकानां स्तुतियुत-विलसद्-गीतवादित्र-नादैः ॥७॥

राजानस्तस्य भृत्या इव युवतिकुलं दासवत् सर्वदास्ते
लक्ष्मीः सर्वाङ्गयुक्ता श्रयति च सदनं किङ्कराः सर्वलोकाः ।
पुत्राः पुत्र्यः पवित्रा रणभुवि विजयी द्यूतवादेऽपि वीरो
यस्येशो विघ्नराजो निवसति हृदये भक्तिभाग्यस्य रुद्रः ॥८॥

इति सङ्कष्टहरणं गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

★

३. गणेशाष्टकम् [२]

सर्वे ऊचुः

यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
यतो भाति सर्वं त्रिधा भेदभिन्नं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥१॥

यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्तथाऽब्जासनोविश्वगोविश्वगोप्ता ।
तथेन्द्रादयो देवसङ्घा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥२॥

यतो वह्नि-भानू भवो भूर्जलं च यतः सागराश्चन्द्रमा व्योम वायुः ।
यतः स्थावरा जङ्गमा वृक्षसङ्घाः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥३॥

यतो दानवाः किन्नरा यक्षसङ्घा यतश्चारणावारणाः श्वापदाश्च ।
यतः पक्षि-कीटा यतो वीरुधश्च सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥४॥

यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षोर्यतः सम्पदो भक्तिसन्तोषिकाः स्युः ।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥५॥

यतःपुत्रसम्पद्यतोवाञ्छितार्थोयतोऽभक्त-विघ्नास्तथा-ऽनेकरूपाः ।
यतः शोक-मोहौ यतः काम एव सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥६॥

यतोऽनन्तशक्तिः स शेषो बभूव धराधारणेऽनेकरूपे च शक्तः ।
यतोऽनेकधा स्वर्गलोका हि नाना सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥७॥

यतो वेदवाचोऽतिकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति ।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥८॥

श्रीगणेश उवाच

पुनरूचे गणाधीशः स्तोत्रमेतत पठेन्नरः ।
त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं तस्य सर्वं कार्यं भविष्यति ॥ ९ ॥

यो जपेदष्टदिवसं श्लोकाष्टकमिदं शुभम् ।
अष्टवारं चतुर्थ्यां तु सोऽष्टसिद्धीरवाप्नुयात् ॥१०॥

यः पठेन्मासमात्रं तु दशवारं दिने दिने ।
स मोचयेद् बन्धगतं राजवध्यं न संशयः ॥११॥

विद्याकामो लभेद् विद्यां पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।
वाञ्छितांल्लभते सर्वानेकविंशतिवारतः ॥१२॥

यो जपेत् परया भक्त्या गजाननपरो नरः ।
एवमुक्त्वा ततो देवाश्चान्तर्धानं गतः प्रभुः ॥१३॥

इति श्रीगणेशपुराणे गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥

४. गणेशाष्टकम् [३]

गणपति-परिवारं चारुकेयूरहारं गिरिधरवरसारं योगिनीचक्रचारम् ।
भव-भय-परिहारंदुःख-दारिद्र्य-दूरंगणपतिमभिवन्देवक्रतुण्डावतारम्॥
अखिलमलविनाशंपाणिनाहस्तपाशंकनकगिरिनिकाशंसूर्यकोटिप्रकाशम्
भजभवगिरिनाशमालतीतीरवासंगणपतिमभिवन्देमानसेराजहंसम् ।२।
विविध-मणि-मयूखैः शोभमानंविदूरैःकनक-रचित-चित्रंकण्ठदेशेविचित्रं
दधति विमलहारं सर्वदायत्नसारंगणपतिमभिवन्देवक्रतुण्डावतारम् ।३।
दुरितगजममन्दं वारणीं चैव वेदं विदितमखिलनादं नृत्यमानन्दकन्दम्
दधतिशशिसुवक्त्रंचाऽङ्कुशंयोविशेषंगणपतिमभिवन्देसर्वदाऽऽनन्दकन्दम्
त्रिनयनयुतभालेशोभमाने विशालेमुकुट-मणि-सुढालेमौक्तिकानां च जाले
धवलकुसुममाले यस्य शीर्ष्णःसताले गणपतिमभिवन्देसर्वदाचक्रपाणिम्
वपुषि महति रूपं पीठमादौ सुदीपं तदुपरिरसकोणं यस्यचोर्ध्वंत्रिकोणम्
गजमितदलपद्मंसंस्थितं चारुछद्मंगणपतिमभिवन्देकल्पवृक्षस्य वृन्दे ॥
वरदविशदशस्तं दक्षिणं यस्य हस्तं सदयमभयदं तं चिन्तये चित्तसंस्थम्
शबलकुटिलशुण्डंचैकतुण्डंद्वितुण्डंगणपतिमभिवन्दे सर्वदा वक्रतुण्डम्।७।

कल्पद्रुमाधःस्थिते-कामधेनुं चिन्तामणिं दक्षिणपाणिशुण्डम् ।
बिभ्राणमत्यद्भुतचित्तरूपं यः पूजयेत् तस्य समस्तसिद्धिः ॥८॥

व्यासाऽष्टकमिदं पुण्यं गणेशस्तवनं नृणाम् ।
पठतां दुःखनाशाय विद्यां संश्रियमश्नुते ॥ ९ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे व्यासविरचितं गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥

५. गणेशकवचम्

गौर्युवाच

एषोऽतिचपलो दैत्यान् बाल्येऽपि नाशयत्यहो ।
अग्रे किं कर्म कर्तेति न जाने मुनिसत्तम ! ॥ १ ॥

दैत्या नाना-विधा दुष्टाः साधुदेवद्रुहः खलाः ।
अतोऽस्य कण्ठे किञ्चित्त्वं रक्षार्थं बद्धमर्हसि ॥ २ ॥

मुनिरुवाच

ध्यायेत् सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम् ।
द्वापरे तु गजाननं युग-भुजं रक्ताङ्गरागं विभुं
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ॥ ३ ॥
विनायकः शिखां पातु परमात्मा परात्परः ।
अतिसुन्दरकायस्तु मस्तकं सुमहोत्कटः ॥ ४ ॥
ललाटं कश्यपः पातु भ्रूयुगं तु महोदरः ।
नयने भालचन्द्रस्तु गजास्यस्त्वोष्ठपल्लवौ ॥ ५ ॥
जिह्वां पातु गणक्रीडश्चिबुकं गिरिजासुतः ।
वाचं विनायकः पातु दन्तान् रक्षतु विघ्नहा ॥ ६ ॥
श्रवणौ पाशपाणिस्तु नासिकां चिन्तितार्थदः ।
गणेशस्तु मुखं कण्ठं पातु देवो गणञ्जयः ॥ ७ ॥
स्कन्धौ पातु गजस्कन्धः स्तनौ विघ्नविनाशनः ।
हृदयं गणनाथस्तु हेरम्बो जठरं महान् ॥ ८ ॥
धराधरः पातु पार्श्वौ पृष्ठं विघ्नहरः शुभः ।
लिङ्गं गुह्यं सदा पातु वक्रतुण्डो महाबलः ॥ ९ ॥
गणक्रीडो जानु-जङ्घे ऊरू मङ्गलमूर्तिमान् ।
एकदन्तो महाबुद्धिः पादौ गुल्फौ सदाऽवतु ॥१०॥
क्षिप्रप्रसादनो बाहू पाणी आशाप्रपूरकः ।
अङ्गुलीश्च नखान् पातु पद्महस्तोऽरिनाशनः ॥११॥
सर्वाङ्गानि मयूरेशो विश्वव्यापी सदाऽवतु ।
अनुक्तमपि यत् स्थानं धूम्रकेतुः सदाऽवतु ॥१२॥
आमोदस्त्वग्रतः पातु प्रमोदः पृष्ठतोऽवतु ।
प्राच्यां रक्षतु बुद्धीश ! आग्नेय्यां सिद्धिदायकः ॥१३॥
दक्षिणस्यामुमापुत्रो नैर्ऋत्यां तु गणेश्वरः ।
प्रतीच्यां विघ्नहर्ताऽव्याद् वायव्यां गजकर्णकः ॥१४॥

कौबेर्यो निधिपः पायादीशान्यामीशनन्दनः ।
दिवाऽव्यादेकदन्तस्तु रात्रौ सन्ध्यासु विघ्नहृत् ॥१५॥
राक्षसा-ऽसुर-वेताल-ग्रह-भूत-पिशाचतः ।
पाशाङ्कुशधरः पातु रजः-सत्त्व-तमः-स्मृतिः ॥१६॥
ज्ञानं धर्मं च लक्ष्मीं च लज्जां कीर्तिं तथा कुलम् ।
वपुर्धनं च धान्यं च गृह-दाराः सुतान् सखीन् ॥१७॥
सर्वायुधधरः पौत्रान् मयूरेशोऽवतात् सदा ।
कपिलोऽजाविकः पातु गजाश्वाद् विकटोऽवतु ॥१८॥
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं यः कण्ठे धारयेत् सुधीः ।
न भयं जायते तस्य यक्षरक्षः-पिशाचतः ॥१९॥
त्रिसन्ध्यं जपते यस्तु वज्रसारतनुर्भवेत् ।
यात्राकाले पठेद् यस्तु निर्विघ्नेन फलं लभेत् ॥२०॥
युद्धकाले पठेत् यस्तु विजयं चाप्नुयाद् ध्रुवम् ।
मारणोच्चाटना-ऽऽकर्ष-स्तम्भ-मोहन-कर्मणि ॥२१॥
सप्तवारं जपेदेतद् दिनानामेकविंशतिम् ।
तत्तत्फलमवाप्नोति साधको नाऽत्र संशयः ॥२२॥
एकविंशतिवारं च पठेत् तावद्-दिनानि यः ।
कारागृहगतं सद्यो राज्ञा वध्यं च मोचयेत् ॥२३॥
राजदर्शनवेलायां पठेदेतत् त्रिवारतः ।
स राजानं वशं नीत्वा प्रकृतीश्च सभां जयेत् ॥२४॥
इदं गणेशकवचं कश्यपेन समीरितम् ।
मुद्गलाय च तेनाथ माण्डव्याय महर्षये ॥२५॥
मह्यं स प्राह कृपया कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
न देयं भक्तिहीनाय देयं श्रद्धावते शुभम् ॥२६॥
अनेनाऽस्य कृता रक्षा न बाधाऽस्य भवेत् क्वचित् ।
राक्षसा-ऽसुर-बेताल-दैत्य-दानवसम्भवाः ॥२७॥
इति श्रीगणेशपुराणे उत्तरखण्डे गणेशकवचं सम्पूर्णम् ॥५॥

६. सङ्कष्टनाशनं गणेशस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम् ।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुः-कामा-ऽर्थसिद्धये ॥ १ ॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् ।
तृतीयं कृष्ण-पिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥ २ ॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च ।
सप्तमं विघ्नराजं च धूम्रवर्णं तथाऽष्टमम् ॥ ३ ॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम् ।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम् ॥ ४ ॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ५ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥ ६ ॥
जपेद् गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् ।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नाऽत्र संशयः ॥ ७ ॥
अष्टानां ब्राह्मणानां च लिखित्वा यः समर्पयेत् ।
तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः ॥ ८ ॥
इति श्रीनारदपुराणे सङ्कष्टनाशनं गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

७. गणेशमहिम्नः स्तोत्रम्

अनिर्वाच्यं रूपं स्तवन-निकरो यत्र गणित-
स्तथा वक्ष्ये स्तोत्रं प्रथमपुरुषस्याऽत्र महतः ।
यतो जातं विश्वं स्थितमपि सदा यत्र विलयः
स कीदृग् गीर्वाणः सुनिगमनुतः श्रीगणपतिः ॥ १ ॥
गणेशा गाणेशाः शिवमिति च शैवाश्च विबुधा
रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं विष्णुभजकाः ।

वदन्त्येके शक्ता जगदुदयमूलां परशिवां
न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्म सकलम् ॥ २ ॥
तथेशं योगज्ञा गणपतिमिमं कर्म निखिलं
समीमांसा वेदान्तिन इति परं ब्रह्म सकलम् ।
अजां साङ्ख्यो ब्रूते सकलगुणरूपां च सततं
प्रकर्तारं न्यायस्त्वथ जगति बौद्धा धियमिति ॥ ३ ॥
कथं ज्ञेयो बुद्धेः परतर इयं बाह्यसरणि-
र्यथा धीर्यस्य स्यात् स च तदनुरूपो गणपतिः ।
महत्कृत्यं तस्य स्वयमपि महान् सूक्ष्ममणुवद्
ध्वनिर्ज्योतिर्बिन्दुर्गगनसदृशः किञ्च सदसत् ॥ ४ ॥
अनेकास्योऽपाराक्षि-करचरणोऽनन्त-हृदय-
स्तथा नानारूपो विविधवदनः श्रीगणपतिः ।
अनन्ताह्वः शक्त्या विविध-गुणकर्मैक-समये
त्वसंख्यातानन्ताभिमत-फलदोऽनेकविषये ॥ ५॥
न यस्याऽन्तो मध्यो न च भवति चादिः सुमहता-
मलिप्तः कृत्वेत्थं सकलमपि खं वत्स च पृथक् ।
स्मृतः संस्मर्तॄणां सकलहृदयस्थः प्रियकरो
नमस्तस्मै देवाय च सकलवन्द्याय महते । ६ ॥
गणेशाद्यं बीजं दहन-वनिता-पल्लवयुतं
मनुश्चैकार्णोऽयं ॒णवसहितोऽभोष्टफलदः ।
सबिन्दुश्चाङ्गाद्यं गणकऋषिच्छन्दोऽस्य च निचृत्
स देवः प्राग्बीजं वियदपि च शक्तिर्जपकृताम् ॥ ७ ॥
गकारो हेरम्ब ! सगुण इति पुंनिर्गुणमयो
द्विधाऽप्येको जातः प्रकृतिपुरुषो ब्रह्म हि गणः ।
स चेशश्चोत्पत्ति-स्थिति-लयकरोऽयं प्रथमको
यतो भूतं भव्यं भवति पतिरीशो गणपतिः ॥ ८ ॥
गकारः कण्ठोर्ध्वं गजमुखसमो मर्त्यसदृशो
णकारः कण्ठाधो जठरसदृशाकार इति च ।

अधोभागः कट्यां चरण इति हीशोऽस्य च तनु-
र्विभातीत्थं नाम त्रिभुवनसमं भूर्भुवः स्वः ॥ ९ ॥
गणेशेति त्र्यर्णात्मकमपि वरं नाम सुखदं
सकृत्प्रोच्चैरुच्चारितमिति नृभिः पावनकरम् ।
गणेशस्यैकस्य प्रतिजपकरस्यास्य सुकृतं
न विज्ञातो नाम्नः सकलमहिमा कीदृशविधः ॥१०॥
गणेशेत्याह्वं यः प्रवदति मुहुस्तस्य पुरतः
प्रपश्यंस्तद्वक्त्रं स्वयमपि गणस्तिष्ठति तथा ।
स्वरूपस्य ज्ञानं त्वमुक इति नाम्नाऽस्य भवति
प्रबोधः सुप्तस्य त्वखिलमिह सामर्थ्यममुना ॥११॥
गणेशो विश्वेऽस्मिन् स्थित इह च विश्वं गणपतौ
गणेशो यत्रास्ते धृति-मतिरनैश्वर्यमखिलम् ।
समुक्तं नामैकं गणपतिपदं मङ्गलमयं
तदेकास्यं दृष्टेः सकल-विबुधास्येक्षण-समम् ॥१२॥
बहुक्लेशैर्व्याप्तः स्मृत उत गणेशे च हृदये
क्षणात् क्लेशान् मुक्तो भवति सहसा त्वभ्रचयवत् ।
वने विद्यारम्भे युधि रिपुभये कुत्र गमने
प्रवेशे प्राणान्ते गणपतिपदं चाऽऽशु विशति ॥१३॥
गणाध्यक्षो ज्येष्ठः कपिल अपरो मङ्गलनिधि-
र्दयालुर्हेरम्बो वरद इति चिन्तामणिरजः ।
वरानीशो ढुण्ढिर्गजवदननामा शिवसुतो
मयूरेशो गौरीतनय इति नामानि पठति ॥१४॥
महेशोऽयं विष्णुः सकविरविरिन्दुः कमलजः
क्षितिस्तोयं वह्निः श्वसन इति खं त्वद्रिरुदधिः ।
कुजस्तारः शुक्रो गुरुरुडुबुधोऽगुश्च धनदो
यमः पाशी काव्यः शनिरखिलरूपो गणपतिः ॥१५॥
मुखं वह्निः पादौ हरिरपि विधाता प्रजननं
रविर्नेत्रे चन्द्रो हृदयमपि कामोऽस्य मदनः ।

करौ शक्रः कट्यामवनिरुदरं भाति दशनं
गणेशस्यासन् वै क्रतुमयवपुश्चैव सकलम् ॥१६॥
अनर्घ्यालङ्कारैररुण-वसनैर्भूषित-तनुः
करीन्द्रास्यः सिंहासनमुपगतो भाति बुधराट् ।
स्मितः स्यात्तन्मध्येऽप्युदित-रविबिम्बोपम-रुचिः
स्थिता सिद्धिर्वामे मतिरितरगा चामरकरा ॥१७॥
समन्तात्तस्यासन् प्रवरमुनिसिद्धाः सुरगणाः
प्रशंसन्तीत्यग्रे विविधनुतिभिः प्राञ्जलिपुटाः ।
बिडौजाद्यैर्ब्रह्मादिभिरनुवृतो भक्तनिकरै-
र्गणक्रीडामोद-प्रमुद-विकटाद्यैः सहचरैः ॥१८॥
वशित्वाद्यष्टाष्टादश-दिगखिलाल्लोलमनुवाग्
धृतिः पादूः खङ्गोऽञ्जनरसबलाः सिद्धय इमाः ।
सदा पृष्ठे तिष्ठन्त्यनिमिषदृशस्तन्मुखलया
गणेशं सेवन्तेऽप्यतिनिकटसूपायनकराः ॥१९॥
मृगाङ्कास्या रम्भाप्रभृतिगणिका यस्य पुरतः
सुसङ्गीतं कुर्वन्त्यपि कुतुकगन्धर्वसहिताः ।
मुदा पारो नाऽत्रेत्यनुपमपदे दोर्विगलिता
स्थिरं जातं चित्तं चरणमवलोक्यास्य विमलम् ॥२०॥
हरेणाऽयं ध्यातस्त्रिपुरमथने चाऽसुरवधे
गणेशः पार्वत्या बलिविजयकालेऽपि हरिणा ।
विधात्रा संसृष्टावुरगपतिना क्षोणिधरणे
नरैः सिद्धौ मुक्तौ त्रिभुवनजये पुष्पधनुषा ॥२१॥
अयं सुप्रासादे सुर इव निजानन्दभुवने
महान् श्रीमानाद्यो लघुतरगृहे रङ्कसदृशः ।
शिवद्वारे द्वाःस्थो नृप इव सदा भूपतिगृहे
स्थितो भूत्वोमाङ्के शिशुगणपतिर्लालनपरः ॥२२॥
अमुष्मिन् सन्तुष्टे गजवदन एवापि विबुधे
ततस्ते सन्तुष्टास्त्रिभुवनगताः सुरगणाः ।

दयालुर्हेरम्बो न च भवति यस्मिश्च पुरुषे
वृथा सर्वं तस्य प्रजननमतः सान्द्रतमसि ॥२३॥
वरेण्यो भूशुण्डिर्भृगु-गुरु-कुजा-मुद्गलमुखाः
ह्यपारास्तद्भक्ता जप-हवन-पूजा-स्तुतिपराः ।
गणेशोऽयं भक्तप्रिय इति च सर्वत्र गदितं
विभक्तिर्यत्रास्ते स्वयमपि सदा तिष्ठति गणः ॥२४॥
मृदः काश्चिद्धातोश्छद-विलिखिता वाऽपि दृषदः
स्मृता व्याजान्मूर्तिः पथि यदि बहिर्येन सहसा ।
अशुद्धोऽद्धा द्रष्टा प्रवदति तदाह्वा गणपतेः
श्रुतः शुद्धो मर्त्यो भवति दुरिताद् विस्मय इति ॥२५॥
बहिर्द्वारस्योर्ध्वं गजवदन-वर्ष्मेन्धनमयं
प्रशस्तं वा कृत्वा विविध-कुशलैस्तत्र निहितम् ।
प्रभावात्तन्मूर्त्या भवति सदनं मङ्गलमयं
त्रिलोक्यानन्दस्तां भवति जगतो विस्मय इति ॥२६॥
सिते भाद्रे मासे प्रतिशरदि मध्याह्नसमये
मृदो मूर्ति कृत्वा गणपतितिथौ ढुण्ढिसदृशीम् ।
समर्चन्त्युत्साहः प्रभवति महान् सर्वसदने
विलोक्यानन्दस्तां प्रभवति नृणां विस्मय इति ॥२७॥
तथा ह्येकः श्लोको वरयति महिम्नो गणपतेः
कथं स श्लोकेऽस्मिन् स्तुत इति भवेत् संप्रपठिते ।
स्मृतं नामास्यैकं सकृदिदमनन्ताह्वयसमं
यतो यस्यैकस्य स्तवनसदृशं नाऽन्यदपरम् ॥२८॥
गजवदन विभो यद्-वर्णितं वैभवं ते
त्विह जनुषि ममेत्थं चारु तद्दर्शयाशु ।
त्वमसि च करुणायाः सागरः कृत्स्नदाता-
ऽप्यति तव भृतकोऽहं सर्वदा चिन्तकोऽस्मि ॥२९॥

सुस्तोत्रं प्रपठतु नित्यमेतदेव स्वानन्दं प्रतिगमनेऽप्ययं सुमार्गः ।
सञ्चिन्त्यंस्वमनसिसत्पदारविन्दंस्थाप्याग्रेस्तवनफलंनतोःकरिष्ये ॥३०॥

गणेशदेवस्य महात्म्यमेतद् यः श्रावयेत् वाऽपि पठेच्च तस्य ।
क्लेशालयंयान्तिलभेच्च शीघ्रं स्त्री-पुत्र-विद्यार्थ-गृहं च मुक्तिम् ॥३१॥

इति श्रीपुष्पदन्तविरचितं गणेशमहिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ७ ॥

८. गणेशाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

यम उवाच

गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभवप्रकाशिन् ! ।
वरिष्ठ ! सिद्धिप्रिय ! बुद्धिनाथ ! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१॥

अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति ।
कवीश देवान्तकनाशकारिन् ! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥२॥

महेशसूनो गजदैत्यशत्रो वरेण्यसूनो विकट त्रिनेत्र ! ।
परेश पृथ्वीधर एकदन्त वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥३॥

प्रमोद मोदेति नरान्तकारे षडूर्मिहन्तर्गजकर्ण ढुण्ढे ! ।
द्वन्द्वारिसिन्धो स्थिरभावकारिन् ! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥४॥

विनायक ज्ञानविघातशत्रो पराशरस्यात्मज विष्णुपुत्र ! ।
अनादिपूजाऽऽखुग सर्वपूज्य ! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥५॥

विघ्नेज्य लम्बोदर धूम्रवर्ण मयूरपालेति मयूरवाहिन् ! ।
सुराऽसुरैः सेवितपादपद्म वदन्तमेव त्यजत प्रभीताः ॥६॥

वरिन्महाखूध्वज शूर्पकर्ण शिवाज सिंहस्थ अनन्तवाह ! ।
दितौज विघ्नेश्वर शेषनाभे वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥७॥

अणोरणीयो महतो महीयो रवेर्ज योगेशज ज्येष्ठराज ! ।
निधीश मन्त्रेश च शेषपुत्र वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥८॥

वर-प्रदातरदितेश्च सूनो परात्पर ज्ञानद तारवक्त्र ! ।
गुहाग्रज ब्रह्मग पार्श्वपुत्र वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥९॥

सिन्धोश्च शत्रो परशुप्रयाणे शमीश पुष्पप्रिय विघ्नहारिन् ! ।
दूर्वाभिरर्चित देवदेव वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१०॥
धियः प्रदातश्च शमीप्रियेति सुसिद्धिदातश्च सुशान्तिदातः ।
अमेयमायामितविक्रमेति वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥११॥
द्विधा-चतुर्थीप्रिय कश्यपाच्च धनप्रद ज्ञानपदप्रकाशिन् ! ।
चिन्तामणे चित्तविहार-कारिन् ! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः॥१२॥
यमस्य शत्रो ह्यभिमानशत्रो विधेर्जहन्तः कपिलस्य सूनो ! ।
विदेह स्वानन्दज योगयोग वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१३॥
गणस्य शत्रो कपिलस्य शत्रो समस्तभावज्ञ च भालचन्द्र ! ।
अनादिमध्यान्तमय प्रचारिन् वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१४॥
विभो जगद्रूप गणेश भूमन् पुष्टेः पते आखुगतेति बोधः ।
कर्तुश्च पातुश्च तु संहरेति वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१५॥
इदमष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य पठन्ति ये ।
शृण्वन्ति तेषु वै भीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम् ॥१६॥
भुक्ति-मुक्तिप्रदं ढुण्ढेर्धन-धान्य-प्रवर्धनम् ।
ब्रह्मभूतकरं स्तोत्रं जपन्तं नित्यमादरात् ॥१७॥
यत्र कुत्र गणेशस्य चिह्नयुक्तानि वै भटाः ।
धामानि तत्र संभीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम् ॥१८॥
इति मुद्गलपुराणे यम-दूत-संवादे गणेशाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ॥ ८ ॥



९. गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्

व्यास उवाच

कथं नाम्नां सहस्रं स्वं गणेश उपदिष्टवान् ! ।
शिवायैतन्ममाचक्ष्व लोकानुग्रहतत्पर ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

देव एवं पुरारातिः पुरत्रय-जयोद्यमे ।
अनर्चनाद् गणेशस्य जातो विघ्नाकुलः किल ॥ २ ॥

मनसा स विनिर्धार्य ततस्तद्विघ्नकारणम् ।
महागणपतिं भक्त्या समभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ३ ॥
विघ्न-प्रशमनोपायमपृच्छदपराजितः ।
सन्तुष्टः पूजया शम्भोर्महागणपतिः स्वयम् ॥ ४ ॥
सर्वविघ्नैकहरणं सर्वकामफलप्रदम् ।
ततस्तस्मै स्वकं नाम्नां सहस्रमिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

ॐ अस्य श्रीमहागणपति-सहस्रनामस्तोत्र-मन्त्रस्य महागणपति-ऋर्षिः, अनुष्टुप्छन्दः, महागणपतिर्देवता, गं बीजम्, हुं शक्तिः, स्वाहा कीलकम्, चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थे जपादौ विनियोगः ।

न्यासः—ॐ गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः । ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे नमः । ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै नमः । ॐ गैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय नमः । ॐ गौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय नमः । ॐ गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट् । इति न्यासः ।

ध्यानम्

पञ्चवक्त्रो दशभुजो भालचन्द्रः शशिप्रभः ।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः ॥
अग्न्यर्क-शशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन् दशायुधः ॥

मानसोपचारैः सम्पूज्य, लं पृथिव्यात्मकं गन्धं कल्पयामि नमः, इत्यादि ।

श्रीमहागणपतिरुवाच

ॐ गणेश्वरो गणक्रीडो गणनाथो गणाधिपः ।
एकदंष्ट्रो वक्रतुण्डो गजवक्त्रो महोदरः ॥ १ ॥
लम्बोदरो धूम्रवर्णो विकटो विघ्ननायकः ।
सुमुखो दुर्मुखो बुद्धो विघ्नराजो गजाननः ॥ २ ॥
भीमः प्रमोद आमोदः सुरानन्दो मदोत्कटः ।
हेरम्बः शम्बरः शम्भुर्लम्बकर्णो महाबलः ॥ ३ ॥

नन्दनोऽलम्पटोऽभीरुर्मेघनादो गणञ्जयः ।
विनायको विरूपाक्षो धीरशूरो वरप्रदः ॥ ४ ॥
महागणपतिर्बुद्धिप्रियः क्षिप्रप्रसादनः ।
रुद्रप्रियो गजाध्यक्ष उमापुत्रोऽघनाशनः ॥ ५ ॥
कुमारगुरुरीशानपुत्रो मूषकवाहनः ।
सिद्धिप्रियः सिद्धिपतिः सिद्धिः सिद्धिविनायकः ॥ ६ ॥
अविघ्नस्तुम्बुरुः सिंहवाहनो मोहिनोप्रियः ।
कटङ्कटो राजपुत्रः शालकः सम्मितोऽमितः ॥ ७ ॥
कूष्माण्ड-साम-सम्भूतिर्दुर्जयो धूर्जयो जयः ।
भूपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिरव्ययः ॥ ८ ॥
विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणिः ।
कविः कवीनामृषभो ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतिः ॥ ९ ॥
ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः ।
हिरण्मय-पुरान्तस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः ॥१०॥
कराहति-ध्वस्त-सिन्धु-सलिलः पूषदन्तभित् ।
उमाङ्ककेलि-कुतुको मुक्तिदः कुलपालनः ॥११॥
किरीटी कुण्डली हारी वनमाली मनोमयः ।
वैमुख्यहत-दैत्यश्रीः पादाहति-जितक्षितिः ॥१२॥
सद्योजात-स्वर्णमुञ्ज-मेखली दुर्निमित्तहृत् ।
दुःस्वप्नहृत्प्रसहनो गुणी नादप्रतिष्ठितः ॥१३॥
सुरूपः सर्वनेत्राधिवासो वीरासनाश्रयः ।
पीताम्बरः खण्डरदः खण्डेन्दुकृतशेखरः ॥१४॥
चित्राङ्कश्यामदशनो भालचन्द्रश्चतुर्भुजः ।
योगाधिपस्तारकस्थः पुरुषो गजकर्णकः ॥१५॥
गणाधिराजो विजयस्थिरो गजपतिध्वजी ।
देवदेवः स्मरप्राणदीपको वायुकीलकः ॥१६॥
विपश्चिद्वरदो नादोन्नादभिन्नबलाहकः ।
वराहरदनो मृत्युञ्जयो व्याघ्राजिनाम्बरः ॥१७॥

इच्छाशक्तिधरो देवत्राता दैत्यविमर्दनः ।
शम्भुवक्त्रोद्भवः शम्भुकोपहा शम्भुहास्यभूः ॥१८॥
शम्भुतेजाः शिवाशोकहारी गौरीसुखावहः ।
उमाङ्गमलजो गौरीतेजोभूः स्वर्धुनीभवः ॥१९॥
यज्ञकायो महानादो गिरिवर्ष्मा शुभाननः ।
सर्वात्मा सर्वदेवात्मा ब्रह्ममूर्धा ककुप्श्रुतिः ॥२०॥
ब्रह्माण्ड-कुम्भश्चिद्व्योम-भालः सत्यशिरोरुहः ।
जगज्जन्म-लयोन्मेष-निमेषोऽग्न्यर्क-सोमदृक् ॥२१॥
गिरीन्द्रैकरदो धर्माऽधर्मोष्ठः सामबृंहितः ।
ग्रहर्क्षदशनो वाणीजिह्वो वासवनासिकः ॥२२॥
कुलाचलांसः सोमार्कघण्टो रुद्रशिरोधरः ।
नदीनदभुजः सर्पांगुलीकः तारकानखः ॥२३॥
भ्रूमध्यसंस्थितकरो ब्रह्मविद्यामदोत्कटः ।
व्योमनाभिः श्रीहृदयो मेरुपृष्ठोऽर्णवोदरः ॥२४॥
कुक्षिस्थ-यक्ष-गन्धर्व-रक्ष-किन्नर-मानुषः ।
पृथ्वीकटिः सृष्टिलिङ्गः शैलोरुर्दस्रजानुकः ॥२५॥
पातालजङ्घो मुनिपात्कालांगुष्ठस्त्रयीतनुः ।
ज्योतिर्मण्डललांगूलो हृदयालाननिश्चलः ॥२६॥
हृत्पद्म-कर्णिकाशालि-वियत्केलि-सरोवरः ।
सद्भक्त-ध्यान-निगडः पूजावारीनिवारितः ॥२७॥
प्रतापी कश्यपसुतो गणपो विष्टपी बली ।
यशस्वी धार्मिकः स्वोजाः प्रथमः प्रथमेश्वरः ॥२८॥
चिन्तामणिद्वीपपतिः कल्पद्रुमवनालयः ।
रत्नमण्डप-मध्यस्थो रत्नसिंहासनाश्रयः ॥२९॥
तीव्राशिरोधृतपदो ज्वालिनीमौलिलालितः ।
नन्दा-ऽऽनन्दितपीठश्री-र्भोगदा-भूषितासनः ॥३०॥
सकामदायिनीपीठः स्फुरदुग्रासनाश्रयः ।
तेजोवतीशिरोरत्नं सत्यानित्यावतंसितः ॥३१॥

सविघ्ननाशिनीपीठः सर्वशक्त्यम्बुजाश्रयः ।
लिपिपद्मासनाधारो वह्निधामत्रयाश्रयः ॥३२॥
उन्नतप्रपदो गूढगुल्फः संवृतपार्ष्णिकः ।
पीनजङ्घः श्लिष्टजानुः स्थूलोरुः प्रोन्नमत्कटिः ॥३३॥
निम्नाभिः स्थूलकुक्षिः पीनवक्षा बृहद्भुजः ।
पीनस्कन्धः कम्बुकण्ठो लम्बोष्ठो लम्बनासिकः ॥३४॥
भग्नवाम-रदस्तुङ्ग-सव्यदन्तो महाहनुः ।
ह्रस्वनेत्रत्रयः शूर्पकर्णो नबिडमस्तकः ॥३५॥
स्तबकाकार-कुम्भाग्रो रत्नमौलिर्निरङ्कुशः ।
सर्पहारकटीसूत्रः सर्पयज्ञोपवीतवान् ॥३६॥
सर्पकोटीरकटकः सर्पग्रैवेयकाङ्गदः ।
सर्पकक्ष्योदराबन्धः सर्पराजोत्तरीयकः ॥३७॥
रक्तो रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यविभूषणः ।
रक्तेक्षणो रक्तकरो रक्तताल्वोष्ठपल्लवः ॥३८॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेतमाल्यविभूषणः ।
श्वेतातपत्ररुचिरः श्वेतचामरवीजितः ॥३९॥
सर्वावयव-सम्पूर्ण-सर्वलक्षण-लक्षितः ।
सर्वाभरण-शोभाढ्यः सर्वशोभा-समन्वितः ॥४०॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यः सर्वकारणकारणम् ।
सर्वदैककरः शार्ङ्गी बीजापुरी गदाधरः ॥४१॥
इक्षुचापधरः शूली चक्रपाणिः सरोजभृत् ।
पाशी धृतोत्पलः शालीमञ्जरीभृत् स्वदन्तभृत् ॥४२॥
कल्पवल्लीधरो विश्वाभयदैककरो वशी ।
अक्षमालाधरो ज्ञान-मुद्रावान् मुद्गरायुधः ॥४३॥
पूर्णपात्री कम्बुधरो विधृतालिसमुद्गकः ।
मातुलिङ्गधर-श्चूतकलिकाभृत् कुठारवान् ॥४४॥
पुष्करस्थ-स्वर्णघटी-पूर्णरत्नाभिवर्षकः ।
भारतीसुन्दरीनाथो विनायकरतिप्रियः ॥४५॥

महालक्ष्मीप्रियतमः सिद्धलक्ष्मीमनोरमः ।
रमारमेशपूर्वाङ्गो दक्षिणोमामहेश्वरः ॥४६॥
महीवराहवामाङ्गो रतिकन्दर्पपश्चिमः ।
आमोद-मोदजननः सप्रमोद-प्रमोदनः ॥४७॥
समेधित-समृद्धिश्री-ऋद्धि-सिद्धि-प्रवर्तकः ।
दत्तसौमुख्य-सुमुखः कान्तिकन्दलिताश्रयः ॥४८॥
मदनावत्याश्रिताङ्घ्रिः कृत्तदौर्मुख्यदुर्मुखः ।
विघ्नसम्पल्लवोपघ्नः सेवोन्निद्रमदद्रवः ॥४९॥
विघ्नकृन्निघ्नचरणो द्राविणीशक्तिसत्कृतः ।
तीव्राप्रसन्ननयनो ज्वालिनीपालितैकदृक् ॥५०॥
मोहिनीमोहनो भोगदायिनीकान्तिमण्डितः ।
कामिनीकान्त-वक्त्रश्रीरधिष्ठित-वसुन्धरः ॥५१॥
वसुन्धरा-मदोन्नद्ध-महाशंख-निधिप्रभुः ।
नमद्वसुमतीमौलि-महापद्मनिधिप्रभुः ॥५२॥
सर्वसद्गुरुसंसेव्यः शोचिष्केश-हृदाश्रयः ।
ईशानमूर्धा देवेन्द्रशिखा पवननन्दनः ॥५३॥
अग्र-प्रत्यग्र-नयनो दिव्यास्त्राणां प्रयोगवित् ।
ऐरावतादि-सर्वाशा-वारणावरणप्रियः ॥५४॥
वज्राद्यस्त्रपरीवारो गणचण्डसमाश्रयः ।
जयाऽजयपरीवारो विजयाऽविजयावहः ॥५५॥
अजितार्चित-पादाब्जो नित्याऽनित्यावतंसितः ।
विलासिनीकृतोल्लासः शौण्डीसौन्दर्यमण्डितः ॥५६॥
अनन्तानन्तसुखदः सुमङ्गलसुमङ्गलः ।
इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति-निषेवितः ॥५७॥
सुभगासंश्रितपदो ललितालिताश्रयः ।
कामिनीकामनः काम-मालिनी-केलिलालितः ॥५८॥
सरस्वत्याश्रयो गौरीनन्दनः श्रीनिकेतनः ।
गुरुगुप्तपदो वाचासिद्धो वागीश्वरीपतिः ॥५९॥

नलिनीकामुको वामारामो ज्येष्ठामनोरमः ।
रौद्रिमुद्रितपादाब्जो हुम्बीजस्तुङ्गशक्तिकः ॥६०॥
विश्वादिजननत्राणः स्वहाशक्तिः सकीलकः ।
अमृताब्धिकृतावासो मदघूर्णितलोचनः ॥६१॥
उच्छिष्टगण उच्छिष्टगणेशो गणनायकः ।
सर्वकालिक-संसिद्धि-र्नित्यशैवो दिगम्बरः ॥६२॥
अनपायो-ऽनन्तदृष्टि-रप्रमेयो-ऽजरामरः ।
अनाविलोऽप्रतिरथोऽह्यच्युतोऽमृतमक्षरन् ॥६३॥
अप्रतर्क्योऽक्षयोऽजय्योऽनाधारोऽनामयोऽमलः ।
अमोघसिद्धिरद्वैतमघोरोऽप्रमिताननः ॥६४॥
अनाकरोऽब्धि-भूम्यग्नि-बलघ्नोऽव्यक्तलक्षणः ।
आधारपीठ आधार आधाराधेयवर्जितः ॥६५॥
आखुकेतन आशापूरक आखुमहारथः ।
इक्षुसागरमध्यस्थ इक्षुभक्षणलालसः ॥६६॥
इक्षुचापातिरेकश्री-रिक्षुचाप-निषेवितः ।
इन्द्रगोपसमानश्रीरिन्द्रनीलसमद्युतिः ॥६७॥
इन्दीवरदलश्याम इन्दुमण्डलनिर्मलः ।
इध्मप्रिय इडाभाग इराधामेन्दिराप्रियः ॥६८॥
इक्ष्वाकुविघ्नविध्वंसी इतिकर्तव्यतेप्सितः ।
ईशानमौलिरीशान ईशानसुत ईतिहा ॥६९॥
ईषणात्रयकल्पान्त ईहामात्रविवर्जितः ।
उपेन्द्र उडुभृन्मौलिरुण्डेरकबलिप्रियः ॥७०॥
उन्नतानन उत्तुङ्ग उदारत्रिदशाग्रणीः ।
ऊर्जस्वानूष्मलमद ऊहापोह-दुरासदः ॥७१॥
ऋग्-यजुः-साम-सम्भूति-ऋद्धि-सिद्धिप्रदायकः ।
ऋजुचित्तैकसुलभ ऋणत्रयविमोचकः ॥७२॥
लुप्तविघ्नः स्वभक्तानां लुप्तशक्तिः सुरद्विषाम् ।
लुप्तश्रीर्विमुखार्चानां लूता-विस्फोटनाशनः ॥७३॥

एकारपीठमध्यस्थ एकपादकृतासनः ।
एजिताखिल-दैत्यश्रीरेधिताखिल-संश्रयः ॥७४॥
ऐश्वर्यनिधिरैश्वर्य-मैहिका-ऽऽमुष्मिकप्रदः ।
ऐरम्मद-समोन्मेष ऐरावतनिभाननः ॥७५॥
ओङ्कारवाच्य ओङ्कार ओजस्वानोषधीपतिः ।
औदार्यनिधिरौद्धत्यधुर्य औन्नत्यनिस्वनः ॥७६॥
अङ्कुशः सुरनागानामङ्कुशः सुरविद्विषाम् ।
अःसमस्तविसर्गान्तपदेषु परिकीर्तितः ॥७७॥
कमण्डलुधरः कल्पः कपर्दी कलभाननः ।
कर्मसाक्षी कर्मकर्ता कर्माऽकर्मफलप्रदः ॥७८॥
कदम्बगोलकाकारः कूष्माण्डगणनायकः ।
कारुण्यदेहः कपिलः कथकः कटिसूत्रभृत् ॥७९॥
खर्वः खड्गप्रियः खड्ग-खान्तान्तस्थः-खनिर्मलः ।
खल्वाटशृङ्गनिलयः खट्वाङ्गी खदुरासदः ॥८०॥
गुणाढ्यो गहनो गस्थो गद्यपद्यसुधार्णवः ।
गद्यगानप्रियो गर्जो गीतगीर्वाणपूर्वजः ॥८१॥
गुह्याचाररतो गुह्यो गुह्यागमनिरूपितः ।
गुहाशयो गुहाब्धिस्थो गुरुगम्यो गुरोर्गुरुः ॥८२॥
घण्टाघर्घरिकामाली घटकुम्भो घटोदरः ।
चण्डश्चण्डेश्वर-सुहृच्चण्डीश-श्चण्डविक्रमः ॥८३॥
चराऽचरपति-श्चिन्तामणि-चर्वणलालसः ।
छन्दश्छन्दोवपुश्छन्दो दुर्लक्ष्यश्छन्दविग्रहः ॥८४॥
जगद्योनि-र्जगत्साक्षी जगदीशो जगन्मयः ।
जपो जपपरो जप्यो जिह्वासिंहासनप्रभुः ॥८५॥
झलज्झलोल्लसद्दान-झङ्कारि-भ्रमराकुलः ।
टङ्कार-स्फार-संरावष्टङ्कारि-मणिनूपुरः ॥८६॥
ठद्वयीपल्लवान्तस्थ-सर्वमन्त्रैक-सिद्धिदः ।
डिण्डिमुण्डो डाकिनीशो डामरो डिण्डिमप्रियः ॥८७॥

ढक्कानिनाद-मुदितो ढौको ढुण्ढिविनायकः ।
तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वंपद-निरूपितः ॥८८॥
तारकान्तरसंस्थान-स्तारकस्तारकान्तकः ।
स्थाणुः स्थाणुप्रियः स्थाता स्थावरं जङ्गमं जगत् ॥८९॥
दक्षयज्ञप्रमथनो दाता दानवमोहनः ।
दयावान् दिव्यविभवो दण्डभृद्दण्डनायकः ॥९०॥
दन्तप्रभिन्नाभ्रमालो दैत्यवारणदारणः ।
दंष्ट्रालग्नद्विपघटो देवार्थनृगजाकृतिः ॥९१॥
धन-धान्यपति-र्धन्यो धनदो धरणीधरः ।
ध्यानैकप्रकटो ध्येयो ध्यानं ध्यानपरायणः ॥९२॥
नन्द्यो नन्दिप्रियो नादो नादमध्य-प्रतिष्ठितः ।
निष्कलो निर्मलो नित्यो नित्याऽनित्यो निरामयः ॥९३॥
परं व्योम परं धाम परमात्मा परं पदम् ।
परात्परः पशुपतिः पशुपाशविमोचकः ॥९४॥
पूर्णानन्दः परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः ।
पद्मप्रसन्ननयनः प्रणताज्ञानमोचनः ॥९५॥
प्रमाण-प्रत्ययातीतः प्रणतार्तिनिवारणः ।
फलहस्तः फणिपतिः फेत्कारः फाणितप्रियः ॥९६॥
बाणार्चिताङ्घ्रियुगलो बालकेलि-कुतूहली ।
ब्रह्म ब्रह्मार्चितपदो ब्रह्मचारी बृहस्पतिः ॥९७॥
बृहत्तमो ब्रह्मपरो ब्रह्मण्यो ब्रह्मवित्-प्रियः ।
बृहन्नादाग्र्यचीत्कारो ब्रह्माण्डावलिमेखलः ॥९८॥
भ्रूक्षेपदत्तलक्ष्मीको भर्गो भद्रो भयापहः ।
भगवान् भक्तिसुलभो भूतिदो भूतिभूषणः ॥९९॥
भव्यो भूतालयो भोगदाता भ्रूमध्यगोचरः ।
मन्त्रो मन्त्रपतिर्मन्त्री मदमत्तमनोरमः ॥१००॥
मेखलावान् मन्दगतिर्मतिमत्कमलेक्षणः ।
महाबलो महावीर्यो महाप्राणो महामनाः ॥१०१॥

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्ञगोप्ता यज्ञफलप्रदः ।
यशस्करो योगगम्यो याज्ञिको याजकप्रियः ॥१०२॥
रसो रसप्रियो रस्यो रञ्जको रावणार्चितः ।
रक्षोरक्षाकरो रत्नगर्भो राज्यसुखप्रदः ॥१०३॥
लक्ष्यं लक्ष्यप्रदो लक्ष्यो लयस्थो लड्डुकप्रियः ।
लानप्रियो लास्यपरो लाभकृल्लोकविश्रुतः ॥१०४॥
वरेण्यो वह्निवदनो वन्द्यो वेदान्तगोचरः ।
विकर्ता विश्वतश्चक्षुर्विधाता विश्वतोमुखः ॥१०५॥
वामदेवो विश्वनेता वज्रिवज्रनिवारणः ।
विश्वबन्धन-विष्कम्भाधारो विश्वेश्वरप्रभुः ॥१०६॥
शब्दब्रह्म शमप्रायः शम्भुशक्तिगणेश्वरः ।
शास्ता शिखाग्रनिलयः शरण्यः शिखरीश्वरः ॥१०७॥
षडृतुकुसुमस्रग्वी षडाधारः षडक्षरः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम् ॥१०८॥
सृष्टि-स्थिति-लयक्रीडः सुरकुञ्जरभेदनः ।
सिन्दूरितमहाकुम्भः सदसद्व्यक्तिदायकः ॥१०९॥
साक्षी समुद्रमथनः स्वसंवेद्यः स्वदक्षिणः ।
स्वतन्त्रः सत्यसङ्कल्पः सामगानरतः सुखी ॥११०॥
हंसो हस्तिपिशाचीशो हवनं हव्यकव्यभुक् ।
हव्यो हुतप्रियो हर्षो हृल्लेखामन्त्रमध्यगः ॥१११॥
क्षेत्राधिपः क्षमाभर्ता क्षमापरपरायणम् ।
क्षिप्रक्षेमकरः क्षेमानन्दः क्षोणीसुरद्रुमः ॥११२॥
धर्मप्रदोऽर्थदः कामदाता सौभाग्यवर्धनः ।
विद्याप्रदो विभवदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥११३॥
आभिरूप्यकरो वीरश्रीपदो विजयप्रदः ।
सर्ववश्यकरो गर्भदोषहा पुत्रपौत्रदः ॥११४॥
मेधादः कीर्तिदः शोकहारी दौर्भाग्यनाशनः ।
प्रतिवादिमुखस्तम्भो रुष्टचित्तप्रसादनः ॥११५॥

पराभिचारशमनो दुःखभञ्जनकारकः ।
लवस्त्रुटिः कला काष्ठा निमेषस्तत्परः क्षणः ॥११६॥
घटी मुहूर्तः प्रहरो दिवा नक्तमहर्निशम् ।
पक्षो मासोऽयनं वर्षं युगं कल्पो महालयः ॥११७॥
राशिस्तारा तिथिर्योगो वारः करणमंशकम् ।
लग्न होरा कालचक्रं मेरुः सप्तर्षयो ध्रुवः ॥११८॥
राहुर्मन्दः कविर्जीवो बुधो भौमः शशी रविः ।
कालः सृष्टिः स्थितिर्विश्वं स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥११९॥
भूरापो-ऽग्नि-मरुद्-व्योमा-ऽहंकृतिः प्रकृतिः पुमान् ।
ब्रह्मा विष्णुः शिवो रुद्र ईशः शक्तिः सदाशिवः ॥१२०॥
त्रिदशाः पितरः सिद्धा यक्षा रक्षांसि किन्नराः ।
साद्धया विद्याधरा भूता मनुष्या पशवः खगाः ॥१२१॥
समुद्राः सरितः शैला भूतं भव्यं भवोद्भवः ।
साङ्ख्यं पातञ्जलं योगः पुराणानि श्रुतिः स्मृतिः ॥१२२॥
वेदाङ्गानि सदाचारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं काव्यनाटकम् ॥१२३॥
वैखानसं भागवतं सात्वतं पाञ्चरात्रकम् ।
शैवं पाशुपतं कालामुखं भैरवशासनम् ॥१२४॥
शाक्तं वैनायकं सौरं जैनमार्हतसंहिता ।
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं सचेतनमचेतनम् ॥१२५॥
बन्धो मोक्षः सुखं भोगो-ऽयोगः सत्यमणुर्महान् ।
स्वस्ति हुंफट् स्वधा स्वाहा श्रौषड्-वौषड्-वषण्णमः ॥१२६॥
ज्ञानं विज्ञानमानन्दो बोधः संविच्छमो यमः ।
एक एकाक्षराधार एकाक्षरपरायणः ॥१२७॥
एकाग्रधीरेकवीर एकाऽनेकस्वरूपधृक् ।
द्विरूपो द्विभुजो द्व्यक्षो द्विरदो द्विपरक्षकः ॥१२८॥
द्वैमातुरो द्विवदनो द्वन्द्वातीतो द्वयातिगः ।
त्रिधामा त्रिकरस्त्रेता-त्रिवर्ग-फलदायकः ॥१२९॥

त्रिगुणात्मा त्रिलोकादि-स्त्रिशक्तीश-स्त्रिलोचनः ।
चतुर्बाहुश्चतुर्दन्तश्चतुरात्मा चतुर्मुखः ॥१३०॥
चतुर्विधोपायमय-श्चतुर्वर्णाश्रमाश्रयः ।
चतुर्विध-वचोवृत्ति-परिवृत्ति-प्रवर्तकः ॥१३१॥
चतुर्थीपूजनप्रीत-श्चतुर्थीतिथिसम्भवः ।
पञ्चाक्षरात्मा पञ्चात्मा पञ्चास्यः पञ्चकृत्यकृत् ॥१३२॥
पञ्चाधारः पञ्चवर्णः पञ्चाक्षरपरायणः ।
पञ्चतालः पञ्चकरः पञ्चप्रणवभावितः ॥१३३॥
पञ्चब्रह्ममयस्फूर्तिः पञ्चावरणवारितः ।
पञ्चभक्ष्यप्रियः पञ्चबाणः पञ्चशिवात्मकः ॥१३४॥
षट्कोणपीठः षट्चक्रधामा षड्ग्रन्थिभेदकः ।
षडध्वध्वान्तविध्वंसी षडङ्गुलमहाह्रदः ॥१३५॥
षण्मुखः षण्मुखभ्राता षट्शक्तिपरिवारितः ।
षड्वैरिवर्गविध्वंसी षडूर्मिभयभञ्जनः ॥१३६॥
षट्तर्कदूरः षट्कर्मनिरतः षड्रसाश्रयः ।
सप्तपातालचरणः सप्तद्वीपोरुमण्डलः ॥१३७॥
सप्तस्वर्लोकमुकुटः सप्तसप्तिवरप्रदः ।
सप्ताङ्गराज्यसुखदः सप्तर्षिगणमण्डितः ॥१३८॥
सप्तच्छन्दोनिधिः सप्तहोता सप्तस्वराश्रयः ।
सप्ताब्धिकेलिकासारः सप्तमातृनिषेवितः ॥१३९॥
सप्तच्छन्दोमोदमदः सप्तच्छन्दोमखप्रभुः ।
अष्टमूर्ति-र्ध्येयमूर्तिरष्टप्रकृति-कारणम् ॥१४०॥
अष्टाङ्गयोगफलभूरष्टपत्राम्बुजासनः ।
अष्टशक्ति-समृद्धश्रीरष्टैश्वर्य-प्रदायकः ॥१४१॥
अष्टपीठोपपीठश्रीरष्टमातृसमावृतः ।
अष्टभैरव-सेव्योऽष्ट-वसुवन्द्यो-ऽष्टमूर्तिभृत् ॥१४२॥
अष्टचक्रः-स्फुरन्मूर्तिरष्टद्रव्य-हविःप्रियः ।
नवनागासनाध्यासी नवनिध्यनुशासिता ॥१४३॥

नवद्वारपुराधारो नवधारनिकेतनः ।
नवनारायणस्तुत्यो नवदुर्गानिषेवितः ॥१४४॥
नवनाथमहानाथो नवनागविभूषणः ।
नवरत्नविचित्राङ्गो नवशक्तिशिरोद्धृतः ॥१४५॥
दशात्मको दशभुजो दशदिक्पतिवन्दितः ।
दशाध्यायो दशप्राणो दशेन्द्रिय-नियामकः ॥१४६॥
दशाक्षर-महामन्त्रो दशाशाव्यापिविग्रहः ।
एकादशादिभी रुद्रैः स्तुत एकादशाक्षरः ॥१४७॥
द्वादशोद्दण्डदोर्दण्डो द्वादशान्तनिकेतनः ।
त्रयोदशभिदाभिन्न-विश्वेदेवाधिदैवतम् ॥१४८॥
चतुर्दशेन्द्रवरद-श्चतुर्दशमनु-प्रभुः ।
चतुर्दशादि-विद्याढ्य-श्चतुर्दश-जगत्प्रभुः ॥१४९॥
सामपञ्चदशः पञ्चदशीशीतांशुनिर्मलः ।
षोडशाधारनिलयः षोडशस्वरमातृकः ॥१५०॥
षोडशान्तपदावासः षोडशेन्दुकलात्मकः ।
कलासप्तदशी सप्तदशः सप्तदशाक्षरः ॥१५१॥
अष्टादशद्वीपपतिरष्टादशपुराणकृत् ।
अष्टादशौषधीसृष्टिरष्टादशविधिस्मृतः ॥१५२॥
अष्टादशलिपिव्यष्टि-समष्टि-ज्ञान-कोविदः ।
एकविंशः पुमानेक-विंशत्यङ्गुलि-पल्लवः ॥१५३॥
चतुर्विंशति-तत्त्वात्मा पञ्चविंशाख्यपूरुषः ।
सप्तविंशतितारेशः सप्तविंशतियोगकृत् ॥१५४॥
द्वात्रिंशद्-भैरवाधीश-श्चतुस्त्रिंशन्महाह्रदः ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्भूतिरष्टात्रिंशत्कलातनुः ॥१५५॥
नमदेकोनपञ्चाशन्-मरुद्वर्ग-निरर्गलः ।
पञ्चाशदक्षरश्रेणी पञ्चाशद्रुद्रविग्रहः ॥१५६॥
पञ्चाशद्विष्णुशक्तीशः पञ्चाशन्मातृकालयः ।
द्विपञ्चाशद्वपुःश्रेणी त्रिषष्टयक्षरसंश्रयः ॥१५७॥

चतुःषष्टयर्णनिर्णेता चतुःषष्टिकलानिधिः ।
चतुःषष्टिमहासिद्ध-योगिनीवृन्द-वन्दितः ॥१५८॥
अष्टषष्टि-महातीर्थ-क्षेत्रभैरवभावनः ।
चतुर्नवति-मन्त्रात्मा षण्णवत्यधिकप्रभुः ॥१५९॥
शतानन्दः शतधृतिः शतपत्रायतेक्षणः ।
शतानीकः शतमखः शतधारावरायुधः ॥१६०॥
सहस्रपत्रनिलयः सहस्रफणभूषणः ।
सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१६१॥
सहस्रनामसंस्तुत्यः सहस्राक्षबलापहः ।
दशसाहस्रफणभृत्-फणिराज-कृतासनः ॥१६२॥
अष्टाशीतिसहस्राद्य-महर्षिस्तोत्र-यन्त्रितः ।
लक्षाधीशप्रियाधारो लक्षाधारमनोमयः ॥१६३॥
चतुर्लक्षजपप्रीत-श्चतुर्लक्षप्रकाशितः ।
चतुरशीतिलक्षाणां जीवानां देहसंस्थितः ॥१६४॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशः कोटिचन्द्रांशुनिर्मलः ।
शिवाभवाध्युष्टकोटि-विनायक-धुरन्धरः ॥१६५॥
सप्तकोटि-महामन्त्र-मन्त्रितावयवद्युतिः ।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिसुर-श्रेणिप्रणतपादुकः ॥१६६॥
अनन्त-नामानन्तश्रीरनन्ता-ऽनन्त-सौख्यदः ॐ ॥१६७॥

पुनः ऋष्यादिक-न्यासम्, उत्तरन्यासं मानसपूजां च कृत्वा,

इति वैनायकं नाम्नां सहस्रमिदमीरितम् ।
इदं ब्राह्मे मुहूर्ते यः पठति प्रत्यहं नरः ॥ १ ॥
करस्थं तस्य सकलमैहिकाऽऽमुष्मिकं सुखम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं धैर्यं शौर्यं बलं यशः ॥ २ ॥
मेधा प्रज्ञा धृतिः कान्तिः सौभाग्यमतिरूपता ।
सत्यं दया क्षमा शान्ति-र्दाक्षिण्यं धर्मशालिता ॥ ३ ॥
जगत्संयमनं विश्वसवादो वादपाटवम् ।
सभापाण्डित्यमौदार्यं गाम्भीर्यं ब्रह्मवर्चसम् ॥ ४ ॥

औन्नत्यं च कुलं शीलं प्रतापो वीर्यमार्यता ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं स्थैर्यं विश्वातिशायिता ॥ ५ ॥
धन-धान्या-ऽभिवृद्धिश्च सकृदस्य जपाद् भवेत् ।
वश्यं चतुर्विधं नृणां जपादस्य प्रजायते ॥ ६ ॥
राज्ञो राजकलत्रस्य राजपुत्रस्य मन्त्रिणः ।
जप्यते यस्य वश्यार्थं स दासस्तस्य जायते ॥ ७ ॥
धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षाणामनायासेन साधनम् ।
शाकिनी-डाकिनी-रक्षो-यक्षोरग-भयापहम् ॥ ८ ॥
साम्राज्यसुखदं चैव समस्त-रिपुमर्दनम् ।
समस्त-कलहध्वंसि-दग्धबीज-प्ररोहणम् ॥ ९ ॥
दुःस्वप्ननाशनं क्रुद्धस्वामि-चित्त-प्रसादनम् ।
षट्कर्मा-ऽष्ट-महासिद्धि-त्रिकालज्ञान-साधनम् ॥ १० ॥
परकृत्याप्रशमनं परचक्रविमर्दनम् ।
सङ्ग्रामरङ्गे सर्वेषामिदमेकं जयावहम् ॥ ११ ॥
सर्ववन्ध्यात्वदोषघ्नं गर्भरक्षैककारणम् ।
पठ्यते प्रत्यहं यत्र स्तोत्रं गणपतेरिदम् ॥ १२ ॥
देशे तत्र न दुर्भिक्षमीतयो दुरितानि च ।
न तद्गृहं जहाति श्रीर्यत्राऽयं पठ्यते स्तवः ॥ १३ ॥
क्षय-कुष्ठ-प्रमेहार्श-भगन्दर-विसूचिकाः ।
गुल्मं प्लीहानमश्मानमतिसारं महोदरम् ॥ १४ ॥
कासं श्वासं गुदावर्तं शूलं शोफादिसम्भवम् ।
शिरोरोगं वमिं हिक्कां गण्डमालामरोचकम् ॥ १५ ॥
वात-पित्त-कफ-द्वन्द्व-त्रिदोष-जनित-ज्वरम् ।
आगन्तुविषमं शीतमुष्णं चैकाहिकादिकम् ॥ १६ ॥
इत्याद्युक्तमनुक्तं वा रोगं दोषादिसम्भवम् ।
सर्वं प्रशमयत्याशु स्तोत्रस्याऽस्य सकृज्जपः ॥ १७ ॥
सकृत्पाठेन संसिद्धः स्त्रीशूद्रपतितैरपि ।
सहस्रनाममन्त्रोऽयं जपितव्यः शुभाप्तये ॥ १८ ॥

महागणपतेः स्तोत्रं सकामः प्रजपन्निदम् ।
इच्छया सकलान् भोगाननुभूयेह पार्थिवान् ॥ १९ ॥
मनोरथफलै-र्दिव्यै-र्व्योमयानै-र्मनोरमैः ।
चन्द्रेन्द्र-भास्करोपेन्द्र-ब्रह्म-शर्वादिसद्मसु ॥ २० ॥
कामरूपः कामगतिः कामतो विचरन्निह ।
भुक्त्वा यथेप्सितान् भोगानभीष्टान् सहबन्धुभिः ॥ २१ ॥
गणेशानुचरो भूत्वा महागणपतेः प्रियः ।
नन्दीश्वरादि-सानन्दी नन्दितः सकलैर्गणैः ॥ २२ ॥
शिवाभ्यां कृपया पुत्रनिर्विशेषं च लालितः ।
शिवभक्तः पूर्णकामो गणेश्वरवरात् पुनः ॥ २३ ॥
जातिस्मरो धर्मपरः सार्वभौमोऽभिजायते ।
निष्कामस्तु जपन्नित्यं भक्त्या विघ्नेशतत्परः ॥ २४ ॥
योगसिद्धिं परां प्राप्य ज्ञान-वैराग्य-संस्थितः ।
निरन्तरोदितानन्दे परमानन्दसंविदि ॥ २५ ॥
विश्वोत्तीर्णे परेपारे पुनरावृत्तिवर्जिते ।
लीनो वैनायके धाम्नि रमते नित्यनिर्वृतः ॥ २६ ॥
यो नामभिर्हुनेदेतैरर्चयेत् पूजयेन्नरः ।
राजानो वश्यतां यान्ति रिपवो यान्ति दासताम् ॥ २७ ॥
मन्त्राः सिध्यन्ति सर्वेऽपि सुलभास्तस्य सिद्धयः ।
मूलमन्त्रादपि स्तोत्रमिदं प्रियतरं मम ॥ २८ ॥
नभस्ये मासि शुक्लायां चतुर्थ्यां मम जन्मनि ।
दूर्वाभिर्नामभिः पूजा तर्पणं विधिवच्चरेत् ॥ २९ ॥
अष्टद्रव्यैर्विशेषेण जुहुयाद् भक्तिसंयुतः ।
तस्येप्सितानि सर्वाणि सिध्यन्त्यत्र न संशयः ॥ ३० ॥
इदं प्रजप्तं पठितं पाठितं श्रावितं श्रुतम् ॥ ३१ ॥
व्याकृतं चर्चितं ध्यातं विमृष्टमभिनन्दितम् ।
इहाऽमुत्र च सर्वेषां विश्वैश्वर्यं प्रदायकम् ॥ ३२ ॥

स्वच्छन्दचारिणाऽप्येष येनाऽयं धार्यते स्तवः ।
स रक्ष्यते शिवोद्भूतैर्गणैरध्युष्टकोटिभिः ॥ ३३ ॥
पुस्तके लिखितं यत्र गृहे स्तोत्रं प्रपूजयेत् ।
तत्र सर्वोत्तमा लक्ष्मीः सन्निधत्ते निरन्तरम् ॥ ३४ ॥
दानैरशेषैरखिलैर्व्रतैश्च तीर्थैरशेषैरखिलैर्मखैश्च ।
न तत्फलं विन्दति यद्गणेशं सहस्रनाम्नां स्मरणेन सद्यः ॥ ३५ ॥
एतन्नाम्नां सहस्रं पठति दिनमणौ प्रत्यहं प्रोज्जिहाने
सायं मध्यंदिने वा त्रिषवणमथवा सन्ततं वा जनो यः ।
स स्यादैश्वर्यधुर्यः प्रभवति च सतां कीर्तिमुच्चैस्तनोति
प्रत्यूहं हन्ति विश्वं वशयति सुचिरं वर्धते पुत्र-पौत्रैः ॥ ३६ ॥
अकिञ्चनोऽपि मत्प्राप्तिश्चिन्तको नियताशनः ।
जपेत्तु चतुरो मासान् गणेशार्चनतत्परः ॥ ३७ ॥
दरिद्रतां समुन्मूल्य सप्तजन्मानुगामपि ।
लभते महतीं लक्ष्मीमित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥ ३८ ॥
आयुष्यं वीतरोगं कुलमतिविमलं सम्पदश्चार्तदानाः
कीर्तिर्नित्यावदाता भणितिरभिनवाकान्तिरव्याधिभव्या ।
पुत्राः सन्तः कलत्रं गुणवदभिमतं यद्यदेतच्च सत्यं
नित्यं यः स्तोत्रमेतत् पठति गणपतेस्तस्य हस्ते समस्तम् ॥ ३९ ॥
ॐ गणञ्जयो गणपतिर्हेरम्बो धरणीधरः ।
महागणपतिर्लक्षप्रदः क्षिप्रप्रसादनः ॥ ४० ॥
अमोघसिद्धिरमृतो मन्त्रश्चिन्तामणिर्निधिः ।
सुमङ्गलो बीजमाशापूरको वरदः शिवः ॥ ४१ ॥
काश्यपो नन्दनो वाचासिद्धो ढुण्ढिविनायकः ।
मोदकैरेभिरत्रैकविंशत्या नामभिः पुमान् ॥ ४२ ॥
यः स्तौति मद्गतमनो मदाराधनतत्परः ।
स्तुतो नाम्नां सहस्रेण तेनाऽहं नाऽत्र संशयः ॥ ४३ ॥
नमो नमः सुरवर-पूजिताङ्घ्रये
नमो नमो निरुपममङ्गलात्मने ।

नमो नमो विपुलपदैकसिद्धये
नमो नमः करिकलभाननाय ते ॥४४॥

इति श्रीगणेशपुराणे उपासनाखण्डे महागणपतिप्रोक्तं गणेशसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

१०. गणेशस्तोत्रम्

अधुना शृणु देवस्य साधनं योगदं परम्।
साधयित्वा स्वयं योगी भविष्यसि न संशयः ॥ १ ॥
स्वानन्दः स्वविहारेण संयुक्तश्च विशेषतः।
सर्वसंयोगकारित्वाद् गणेशो मायया युतः ॥ २ ॥
विहारेण विहीनश्चाऽयोगो निर्मायिकः स्मृतः।
संयोगाभेद-हीनत्वाद् भवहा गणनायकः ॥ ३ ॥
संयोगाऽयोगयोर्योगः पूर्णयोगस्त्वयोगिनः।
प्रह्लादगणनाथस्तु पूर्णो ब्रह्ममयः परः ॥ ४ ॥
योगेन तं गणाधीशं प्राप्नुवन्तश्च दैत्यपः।
बुद्धिः सा पञ्चधा जाता चित्तरूपा स्वभावतः ॥ ५ ॥
तस्य माया द्विधा प्रोक्ता प्राप्नुवन्तीह योगिनः।
तं विद्धि पूर्णभावेन संयोगाऽयोगवर्जितः ॥ ६ ॥
क्षिप्तं मूढं च विक्षिप्तमेकाग्रं च निरोधकम्।
पञ्चधा चित्तवृत्तिश्च सा माया गणपस्य वै ॥ ७ ॥
क्षिप्तं मूढं च चित्तं च यत्कर्मणि च विकर्मणि।
संस्थितं तेन विश्वं वै चलति स्व-स्वभावतः ॥ ८ ॥
अकर्मणि च विक्षिप्तं चित्तं जानीहि मानद!।
तेन मोक्षमवाप्नोति शुक्लगत्या न संशयः ॥ ९ ॥
एकाग्रमष्टधा चित्तं तदेवैकात्मधारकम्।
संप्रज्ञात-समाधिस्थं जानीहि साधुसत्तम! ॥१०॥
निरोधसंज्ञितं चित्तं निवृत्तिरूपधारकम्।
असंप्रज्ञातयोगस्थं जानीहि योगसेवया ॥११॥

सिद्धिर्नानाविधा प्रोक्ता भ्रान्तिदा तत्र सम्मता ।
माया सा गणनाथस्य त्यक्तव्या योगसेवया ॥१२॥
पञ्चधा चित्तवृत्तिश्च बुद्धिरूपा प्रकीर्तिता ।
सिद्ध्यर्थं सर्वलोकश्च भ्रमयुक्ता भवन्त्यतः ॥१३॥
धर्मा-ऽर्थं-काम-मोक्षाणां सिद्धिर्भिन्ना प्रकीर्तिता ।
ब्रह्मभूतकरी सिद्धिस्त्यक्तव्या पञ्चधा सदा ॥१४॥
मोहदा सिद्धिरत्यन्तमोहधारकतां गता ।
बुद्धिश्चैव स सर्वत्र ताभ्यां खेलति विघ्नपः ॥१५॥
बुद्ध्या यद् बुद्ध्यते तत्र पश्चान् मोहः प्रवर्तते ।
अतो गणेशभक्त्या स मायया वर्जितो भवेत् ॥१६॥
पञ्चधा चित्तवृत्तिश्च पञ्चधा सिद्धिमादरात् ।
त्यक्त्वा गणेशयोगेन गणेशं भज भावतः ॥१७॥
ततः स गणराजस्य मन्त्रं तस्मै ददौ स्वयम् ।
गणानां त्वेति वेदोक्तं स विधिं मुनिसत्तम ॥१८॥
तेन सम्पूजितो योगी प्रह्लादेन महात्मना ।
ययौ गृत्समदो दक्षः स्वर्गलोकं विहायसा ॥१९॥
प्रह्लादश्च तथा साधुः साधयित्वा विशेषतः ।
योगं योगीन्द्रमुख्यं स शान्तिसद्धारकोऽभवत् ॥२०॥
विरोचनाय राज्यं स ददौ पुत्राय दैत्यपः ।
गणेशभजने योगी स सक्तः सर्वदाऽभवत् ॥२१॥
सगुणं विष्णुरूपं च निर्गुणं ब्रह्मवाचकम् ।
गणेशेन धृतं सर्वं कलांशेन न संशयः ॥१२॥
एवं ज्ञात्वा महायोगी प्रह्लदोऽभेदमाश्रितः ।
हृदि चिन्तामणिं ज्ञात्वाऽभजदन्यभावनः ॥२३॥
स्वल्पकालेह दैत्येन्द्रः शान्तियोगपरायणः ।
शान्तिं प्राप्तो गणेशेनैकभावोऽभवतत्परः ॥२४॥
शापश्चैव गणेशेन प्रह्लादस्य निराकृतः ।
न पुनर्दुष्टसङ्गेन भ्रान्तोऽभून्मयि मानद ! ॥२५॥

एवं मदं परित्यज्य ह्येकदन्तसमाश्रयात् ।
असुरोऽपि महायोगी प्रह्लादः स बभूव ह ॥२६॥
एतत् प्रह्लादमाहात्म्यं यः शृणोति नरोत्तमः ।
पठेद् वा तस्य सततं भवेदोप्सितदायकम् ॥२७॥
इति मुद्गलपुराणोक्तं प्रह्लादकृतं गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०॥

●

११. गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रम्

मुदा करात्तमोदकं सदा विमुक्तिसाधकं
कलाधरावतंसकं विलासिलोकरञ्जकम् ।
अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं
नताऽशुभा-ऽऽशुनाशकं नमामि तं विनायकम् ॥ १ ॥
नतेतरातिभीकरं नवोदितार्कभास्वरं
नमत्सुरारिनिर्जरं नताधिकापदुद्धरम् ।
सुरेश्वरं निधीश्वरं गजेश्वरं गणेश्वरं
महेश्वरं तमाश्रये परात्परं निरन्तरम् ॥ २ ॥
समस्तलोकशङ्करं निरस्तदैत्यकुञ्जरं
दरेतरोदरं वरं वरेभ-वक्त्रमक्षरम् ।
कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं
मनस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम् ॥ ३ ॥
अकिञ्चनार्तिमार्जनं चिरन्तनोक्तिभाजनं
पुरारिपूर्वनन्दनं सुरारि-गर्व-चर्वणम् ।
प्रपञ्चनाश-भीषणं धनञ्जयादिभूषणं
कपोलदानवारणं भजे पुराणवारणम् ॥ ४ ॥
नितान्त-कान्तदन्त-कान्तिमन्त-कान्तकात्मज-
मचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम् ।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि सन्ततम् ॥ ५ ॥

महागणेशपञ्चरत्नमादरेण योऽन्वहं
प्रगायति प्रभातके हृदि स्मरन् गणेश्वरम् ।
अरोगतामदोषतां सुसाहितीं सुपुत्रतां
समाहितायुरष्टभूतिमभ्युपैति सोऽचिरात् ॥ ६ ॥

इति श्रीशङ्करभगवतः कृतौ गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ११ ॥

१२. गणेशपञ्चचामरस्तोत्रम्

ललाट-पट्टलुण्ठितामलेन्दु-रोचिरुद्भटे
वृताति-वर्चरस्वरोत्सरत्किरीट-तेजसि ।
फटाफटत्फटत्स्फुरत्फणाभयेन भोगिनां
शिवाङ्कतः शिवाङ्कमाश्रयच्छिशौ रतिर्मम ॥ १ ॥
अदभ्र-विभ्रम-भ्रमद्-भुजाभुजङ्गफूत्कृती-
र्निजाङ्कमानिनीषतो निशम्य नन्दिनः पितुः ।
त्रसत्सुसंकुचन्तमम्बिका-कुचान्तरं यथा
विशन्तमद्य बालचन्द्रभालबालकं भजे । २ ॥
विनादिनन्दिने सविभ्रमं पराभ्रमन्मुख-
स्वमातृवेणिमागतां स्तनं निरीक्ष्य सम्भ्रमात् ।
भुजङ्ग-शङ्कया परेत्यपित्र्यमङ्कमागतं
ततोऽपि शेषफूत्कृतैः कृतातिचीत्कृतं नुमः ॥ ३ ॥
विजृम्भमाणनन्दि-घोरघोण-घुर्घुरध्वनि-
प्रहास-भासिताशमम्बिका-समृद्धि-वर्धिनम् ।
उदित्वर-प्रसृत्वर-क्षरत्तर-प्रभाभर-
प्रभातभानु-भास्वरं भवस्वसम्भवं भजे ॥ ४ ॥
अलङ्गृहीत-चामरामरीजनार्तिवीजन-
प्रवातलोलि-तालकं नवेन्दुभालबालकम् ।
विलोलदुल्ललल्ललाम-शुण्डदण्ड-मण्डितं
सतुण्ड-मुण्डमालि-वक्रतुण्डमीड्यमाश्रये ॥ ५ ॥

प्रफुल्ल-मौलिमाल्य-मल्लिकामरन्द-लेलिहा
मिलन् त्रिलिन्द-मण्डलोच्छलेन यं स्तवीत्यलम् ।
त्रयोसमस्तवर्णमालिका शरोरिणीव तं
सुतं महेशितुर्मतङ्गजाननं भजाम्यहम् ॥ ६ ॥
प्रचण्ड-विघ्न-खण्डनैः प्रबोधने सदोद्धुरः
समर्द्धि-सिद्धिसाधनाविधा-विधानबन्धुरः ।
सबन्धुरस्तु मे विभूतये विभूतिपाण्डुरः
पुरस्सरः सुरावलेर्मुखानुकारि सिन्धुरः ॥ ७ ॥
अराल-शैलबालिका-ऽलकान्तकान्त-चन्द्रमो-
जकान्तिसौध-माधयन् मनोऽनुराधयन् गुरोः ।
सुसाध्य-साधवं धियां धनानि साधयन्नय-
नशेषलेखनायको विनायको मुदेऽस्तु नः ॥ ८ ॥
रसाङ्गयुङ्-नवेन्दु-वत्सरे शुभे गणेशितु-
स्तिथौ गणेशपञ्चचामरं व्यधादुमापतिः ।
पतिः कविव्रजस्य यः पठेत् प्रतिप्रभातकं
स पूर्णकामनो भवेदिभानन-प्रसादभाक् ॥ ९ ॥
छात्रत्वे वसता काश्यां विहितेयं यतः स्तुतिः ।
ततश्छात्रैरधीतेयं वैदुष्यं वर्द्धयेद्धिया ॥१०॥

इति श्रीकविपत्युपनामक-उमापतिशर्मद्विवेदि-विरचितं
गणेशपञ्चचामरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १२ ॥

●

१३. ढुण्ढिराजभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्

उमाङ्गोद्भवं दन्तिवक्त्रं गणेशं भजे कङ्कणैः शोभितं धूम्रकेतुम् ।
गले हारमुक्तावलीशोभितं तं नमो ज्ञानरूपं गणेश नमस्ते ॥ १ ॥
गणेशैकदन्तं शुभं सर्वकार्ये स्मरन् मन्मुखं ज्ञानदं सर्वसिद्धिम् ।
मनश्चिन्तितं कार्यसिद्धिर्भवेत्तं नमो बुद्धिकल्पं गणेशं नमस्ते ॥ २ ॥

कुठारं धरन्तं कृतं विघ्नराजं चतुर्भिर्नखैरेकदन्तैकवर्णम् ।
इदं देवरूपं गणं सिद्धिनाथं नमो भालचन्द्रं गणेशं नमस्ते ॥ ३ ॥
शिरःसिन्दुरं कुङ्कुमं देहवर्णं शुभैभादिकं प्रीयते विघ्नराजम् ।
महासङ्कटच्छेदने धूम्रकेतुं नमो गौरिपुत्रं गणेशं नमस्ते ॥ ४ ॥
तथा पातकं छेदितुं विष्णुनाम तथा ध्यायतां शङ्करं पापनाशम् ।
यथा पूजितं षण्मुखं शोकनाशं नमो विघ्ननाशं गणेशं नमस्ते ॥ ५ ॥
सदा सर्वदा ध्यायतामेकदन्तं सदा पूजितं सिन्दुरारक्तपुष्पैः ।
सदा चर्चितं चन्दनैः कुङ्कुमाक्तं नमो ज्ञानरूपं गणेशं नमस्ते ॥ ६ ॥
नमो गौरिदेह-मलोत्पन्न तुभ्यं नमो ज्ञानरूपं नमः सिद्धिपं तम् ।
नमो ध्यायतामर्चतां बुद्धिदं तं नमो गौर्यपत्यं गणेशं नमस्ते ॥ ७ ॥
भुजङ्गप्रयातं पठेद् यस्तु भक्त्या प्रभाते नरस्तन्मयैकाग्रचित्तः ।
क्षयं यान्ति विघ्ना दिशः शोभयन्तं नमो ज्ञानरूपं गणेशं नमस्ते ॥ ८ ॥

इति श्रीढुण्ढिराजभुजङ्गप्रयातस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १३ ॥

★

१४. गणपतिस्तवः

ऋषिरुवाच

अजं निर्विकल्पं निराहारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम् ।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥ १ ॥
गुणातीतमानं चिदानन्दरूपं चिदाभासकं सर्वगं ज्ञानगम्यम् ।
मुनिध्येयमाकाशरूपं परेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥ २ ॥
जगत्कारणं कारणज्ञानरूपं सुरादिं सुखादिं गुणेशं गणेशम् ।
जगद्-व्यापिनं विश्ववन्द्यं सुरेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥ ३ ॥
रजोयोगतो ब्रह्मरूपं श्रुतिज्ञं सदा कार्यसक्तं हृदाऽचिन्त्यरूपम् ।
जगत्कारणं सर्वविद्यानिदानं परब्रह्मरूपं गणेशं नताः स्मः ॥ ४ ॥
सदा सत्ययोग्यं मुदा क्रीडमानं सुरारीन् हरन्तं जगत्पालयन्तम् ।
अनेकावतारं निजज्ञानहारं सदा विश्वरूपं गणेशं नमामः ॥ ५ ॥
तमोयोगिनं रुद्ररूपं त्रिनेत्रं जगद्धारकं तारकं ज्ञानहेतुम् ।
[illegible]मैः स्वं जनं बोधयन्तं सदा सर्वरूपं गणेशं नमामः ॥ ६ ॥

नमः स्तोमहारं जनाऽज्ञानहारं त्रयीवेदसारं परब्रह्मसारम् ।
मुनिज्ञानकारं विदूरे विकारं सदा ब्रह्मरूपं गणेशं नमामः ॥ ७ ॥

निजैरोषधीस्तर्पयन्तं कराद्यैः सुरौघान् कलाभिः सुधास्राविणीभिः ।
दिनेशांशु-सन्तापहारं द्विजेशं शशाङ्क-स्वरूपं गणेशं नमामः ॥ ८ ॥

प्रकाशस्वरूपं नमो वायुरूपं विकारादिहेतुं कलाधारभूतम् ।
अनेकक्रिया-ऽनेकशक्तिस्वरूपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः ॥ ९ ॥

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम् ।
असत्-सत्-स्वरूपं जगद्धेतुरूपं सदा विश्वरूपं गणेशं नताःस्मः ॥१०॥

त्वदीये मनः स्थापयेदङ्घ्रियुग्मे स नो विघ्नसङ्घातपीडां लभेत ।
लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं जनोध्वान्तपीडां कथं वा लभेत ॥११॥

वयं भ्रामिताः सर्वथाऽज्ञानयोगादलब्धस्तवाङ्घ्रिं बहून् वर्षपूगान् ।
इदानीमवाप्तस्तवैव प्रसादात् प्रपन्नान् सदा पाहि विश्वम्भराद्य ॥१२॥

एवं स्तुतो गणेशस्तु सन्तुष्टोऽभून् महामुने ।
कृपया परयोपेतोऽभिधातुमुपचक्रमे ॥ १३ ॥

इति श्रीमद्-ऋषिप्रणीतो गणपतिस्तवः सम्पूर्णः ॥ १४ ॥

●

१५ गणेशस्तवराजः

भगवानुवाच

गणेशस्य स्तवं वक्ष्ये कलौ झटिति सिद्धिदम् ।
न न्यासो न च संस्कारो न होमो न च तर्पणम् ॥ १ ॥

न मार्जनं च पञ्चाशत्सहस्रजपमात्रतः ।
सिद्ध्यत्यर्चनतः पञ्चशत-ब्राह्मणभोजनात् ॥ २ ॥

अस्य श्रीगणेशस्तवराजमन्त्रस्य भगवान् सदाशिवऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहागणपतिर्देवता, श्रीमहागणपतिप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

विनायकैक-भावना-समर्चना-समर्पितं
　　प्रमोदकैः　प्रमोदकैः　प्रमोद-मोद-मोदकम् ।
यदर्पितं　सदर्पितं नवान्यधान्यनिर्मितं
　　न कण्डितं न खण्डितं न खण्डमण्डनं कृतम् ॥ १ ॥
सजातिकृद्-विजातिकृत्-स्वनिष्ठभेदवर्जितं
　　निरञ्जनं च निर्गुणं निराकृतिं ह्यनिष्क्रियम् ।
सदात्मकं चिदात्मकं सुखात्मकं परं पदं
　　भजामि तं गजाननं स्वमाययात्तविग्रहम् ॥ २ ॥
गणाधिप ! त्वमष्टमूर्तिरीशसूनुरीश्वर-
　　स्त्वमम्बरं च शम्बरं धनञ्जयः प्रभञ्जनः ।
त्वमेव दीक्षितः क्षितिर्निशाकरः प्रभाकर-
　　श्चराऽचर-प्रचार-हेतुरन्तराय-शान्तिकृत्　॥ ३ ॥
अनेकदं　तमाल-नीलमेकदन्त-सुन्दरं
　　गजाननं　नमोऽगजानना-ऽमृताब्धि-चन्दिरम् ।
समस्त-वेदवादसत्कला-कलाप-मन्दिरं
　　महान्तराय-कृत्तमोऽर्कमाश्रितोऽन्दरुं　परम् ॥ ४ ॥
सरत्नहेम-घण्टिका-निनाद-नुपुरस्वनै-
　　र्मृदङ्ग-तालनाद-भेदसाधनानुरूपतः　।
धिमि-द्धिमि-त्तथोङ्ग-थोङ्ग-थैयि-थैयिशब्दतो
　　विनायकः शशाङ्कशेखरः प्रहृष्य नृत्यति ॥ ५ ॥
सदा　नमामि　नायकैकनायकं
　　कलाकलाप-कल्पना-निदानमादिपरुषम्　।
गणेश्वरं गुणेश्वरं महेश्वरात्मसम्भवं
　　स्वपादपद्म-सेविना-मपार-वैभवप्रदम्　॥ ६ ॥
भजे प्रचण्ड-तुन्दिलं सदन्दशूकभूषणं
　　सनन्दनादि-वन्दितं　समस्त-सिद्धसेवितम् ।
सुराऽसुरौकयोः सदा जयप्रदं भयप्रदं
　　समस्तविघ्न-घातिनं　स्वभक्त-पक्षपातिनम् ॥ ७ ॥

कराम्बुजात-कङ्कणः पदाब्ज-किङ्किणीगणो
गणेश्वरो गुणार्णवः फणीश्वराङ्गभूषणः ।
जगत्त्रयान्तराय-शान्तिकारकोऽस्तु तारको
भवार्णवस्थ-घोरदुर्गहा चिदेकविग्रहः ॥ ८ ॥

यो भक्तिप्रवणश्चरा-ऽचर-गुरोः स्तोत्रं गणेशाष्टकं
शुद्धः संयतचेतसा यदि पठेन्नित्यं त्रिसन्ध्यं पुमान् ।
तस्य श्रीरतुला स्वसिद्धि-सहिता श्रीशारदा सर्वदा
स्यातां तत्परिचारिके किल तदा काः कामनानां कथाः ॥ ९ ॥

इति श्रीरुद्रयामलतो गणेशस्तवराजः सम्पूर्णः ॥ १५ ॥

१६. महागणपतिस्तोत्रम्

योगं योगविदां विधूत-विविध-व्यासङ्गशुद्धाशय-
प्रादुर्भूत-सुधारस-प्रसृमर-ध्यानास्पदाध्यासिनाम् ।
आनन्दप्लवमान-बोधमधुरा-ऽऽमोदच्छटामेदुरं
तं भूमानमुपास्महे परिणतं दन्तावलास्यात्मना ॥ १ ॥

तारश्री-परशक्तिकामरसुधा-रूपानुगं यं विदु-
स्तस्मै स्यात् प्रणतिर्गुणाधिपतये यो रागिणाऽभ्यर्थ्यते ।
आमन्त्र्य प्रथमं वरेति वरदेत्यार्तेन सर्वं जनं
स्वामिन् मे वशमानयेति सततं स्वाहादिभिः पूजितः ॥ २ ॥

कल्लोलाञ्चल-चुम्बिताम्बुद-तताविक्षुद्रवाम्भोनिधौ
द्वीपे रत्नमये सुरद्रुमवनामोदैकमेदस्विनि ।
मूले कल्पतरोर्महामणिमये पीठेऽक्षराम्भोरुहे
षट्कोणाकलित-त्रिकोणरचना-सत्कीर्णकेऽमुं भजे ॥ ३ ॥

चक्रप्रास-रसाल-कार्मुक-गदा-सद्बीजपुरद्विज-
व्रीह्यग्रोत्पल-पाशपङ्कजकरं शुण्डाग्रजाग्रद्घटम् ।
आश्लिष्टं प्रियया सरोजकरया रत्नस्फुरद्भूषया
माणिक्यप्रतिमं महागणपतिं विश्वेशमाशास्महे ॥ ४ ॥

दानाम्भःपरिमेदुर-प्रसृमर-व्यालम्बिरोलम्बभृत्
सिन्दूरारुण-गण्डमण्डलयुग-व्याजात् प्रशस्तिद्वयम् ।
त्रैलोक्येष्ट-विधानवर्णसुभगं यः पद्मरागोपमं
धत्ते स श्रियमातनोतु सततं देवो गणानां पतिः ॥ ५ ॥
भ्राम्यन् मन्दरघूर्णनापरवश-क्षीराब्धिवीचिच्छटा-
सच्छायाश्चल-चामर-व्यतिकर-श्रीगर्वसर्वङ्कषाः ।
दिक्कान्ताघन-सारचन्दनरसा-साराश्रयन्तां मनः
स्वच्छन्दप्रसर-प्रलिप्तवियतो हेरम्बदन्तत्विषः ॥ ६ ॥
मुक्ताजालकरम्बित-प्रविकसन्-माणिक्यपुञ्जच्छटा-
कान्ताः कम्बुकदम्ब-चुम्बितघनाम्भोज-प्रवालोपमाः ।
ज्योत्स्नापूर-तरङ्ग-मन्थरतरत्-सन्ध्यावयस्याश्चिरं
हेरम्बस्य जयन्ति दन्तकिरणाकीर्णाः शरीरत्विषः ॥ ७ ॥
शुण्डाग्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेन क्षरन्
नानारत्नचयेन साधकजनान् सम्भावयन् कोटिशः ।
दानामोद-विनोदलुब्ध-मधुप-प्रोत्सारणाविर्भवत्
कर्णान्दोलनखेलनो विजयते देवो गणग्रामणीः ॥ ८ ॥
हेरम्बं प्रणमामि यस्य पुरतः शाण्डिल्यमूले श्रिया
बिभ्रत्याम्बुरुहे समं मधुरिपुस्ते शङ्खचक्रे वहन् ।
न्यग्रोधस्य तले सहाद्रिसुतया शम्भुस्तथा दक्षिणे
बिभ्राणः परशुं त्रिशूलमितया देव्या धरण्या सह ॥ ९ ॥
पश्चात् पिप्पलमाश्रितो रतिपतिर्देवस्य रत्योत्पले
बिभ्रत्या सममैक्षवं धनुरिपून् पौष्पान् वहन् पञ्च च ।
वामे चक्रगदाधरः स भगवान् क्रीडः प्रियङ्गोस्तले
हस्तोद्यच्छुकशालिमञ्जरिकया देव्या धरण्या सह ॥१०॥
षट्कोणाश्रिषु षट्सु षड्गजमुखाः पाशांकुशाभीवरान्
बिभ्राणाः प्रमदासखाः पृथुमहाशोणाश्म-पुञ्जत्विषः ।
आमोदः पुरतः प्रमोदसुमुखौ तं चाऽभितो दुर्मुखः
पश्चात् पार्श्वगतोऽस्य विघ्न इति यो यो विघ्नकर्तेति च ॥११॥

आमोदादिगणेश्वर-प्रियतमास्तत्रैव नित्यं स्थिताः
कान्ताश्लेष-रसज्ञ-मन्थरदृशः सिद्धिः समृद्धिस्ततः।
कान्तिर्या मदनावतीत्यपि तथा कल्पेषु या गीयते
साऽन्या याऽपि मदद्रवा तदपरा द्राविण्यशू: पूजिताः ॥१२॥
आश्लिष्टौ वसुधेत्यथो वसुमती ताभ्यां सितालोहितौ
वर्षन्तौ वसुपार्श्वयोर्विलसतस्तौ शङ्खपद्मौ निधी।
अङ्गान्यन्वथ मातरश्च परितः शुक्रादयोऽब्जाश्रया-
स्तद्बाह्ये कुलिशादयः परिपतत्कालानलंज्योतिषः ॥१३॥
इत्थं विष्णु-शिवादि-तत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुं-
काराक्षिप्त-समस्तदैत्य-पृतनाव्राताय दीप्तत्विषे।
आनन्दैक-रसावबोधलहरी-विध्वस्तशर्वोर्मये
सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥१४॥
सेवाहेवाकिदेवा-सुरनरनिकर-स्फार-कोटीर-कोटी-
कोटिव्याटीकमान-द्युमणिसममणि-श्रेणिभात्रेणिकानाम्।
राजन्नीराजनश्री-मुखचरणनख-द्योतविद्योतमानः
श्रेयः स्थेयः स देयान् मम विमलदृशो बन्धुरं सिन्धुरास्यः ॥१५॥
एतेन प्रकटरहस्यमन्त्रमाला-गर्भेण स्फुटतरसंविदा स्तवेन।
यः स्तौति प्रचुरतरं महागणेशं तस्येयं भवति वशंवदा त्रिलोकी ॥१६॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीराघवचैतन्यविरचितं
महागणपतिस्तोत्रं समाप्तम् ॥ १६ ॥



७. एकदन्तगणेशस्तोत्रम्

महासुरं सुशान्तं वै दृष्ट्वा विष्णुमुखाः सुराः।
भृग्वादयश्च मुनय एकदन्तं समाययुः ॥ १ ॥
प्रणम्य तं प्रपूज्यादौ पुनस्तं नेमुरादरात्।
तुष्टुवुर्हर्षसंयुक्ता एकदन्तं गणेश्वरम् ॥ २ ॥

त्वदाज्ञया भान्ति ग्रहाश्च सर्वे नक्षत्ररूपाणि विभान्ति खे वै।
आधारहीनानि त्वया धृतानि तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१६॥
त्वदाज्ञया सृष्टिकरो विधाता त्वदाज्ञया पालक एव विष्णुः।
त्वदाज्ञया संहरते हरोऽपि तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१७॥
यदाज्ञया भूर्जलमध्यसंस्था यदाज्ञयाऽऽपः प्रवहन्ति नद्यः।
सीमां सदा रक्षति वै समुद्रस्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१८॥
यदाज्ञया देवगणो दिविष्ठो ददाति वै कर्मफलानि नित्यम्।
यदाज्ञया शैलगणोऽचलो वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१९॥
यदाज्ञया शेष इलाधरो वै यदाज्ञया मोहप्रदश्च कामः।
यदाज्ञया कालधरोऽर्यमा च तमेकदन्तं शरणं व्रजामः।२०॥
यदाज्ञया वाति विभाति वायुर्यदाज्ञयाऽग्निर्यठरादिसंस्थः।
यदाज्ञया वै सचराऽचरं च तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥२१॥
सर्वान्तरे संस्थितमेकगूढं यदाज्ञया सर्वमिदं विभाति।
अनन्तरूपं हृदि बोधकं वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥२२॥
यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन स्तौति।
अतः प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥२३॥

गृत्समद उवाच

एवं स्तुत्वा च प्रह्लादं देवाः समुनयश्च वै।
तूष्णींभावं प्रपद्यैव ननृतुर्हर्षसंयुताः ॥२४॥
स तानुवाच प्रीतात्मा ह्येकदन्तः स्तवैव वै।
जगाद तान् महाभागान् देवर्षीन् भक्तवत्सलः ॥२५॥

एकदन्त उवाच

प्रसन्नोऽस्मि च स्तोत्रेण सुराः सर्षिगणाः किल।
वृणुध्वं वरदोऽहं वो दास्यामि मनसीप्सितम् ॥२६॥
भवत्कृतं मदीयं वै स्तोत्रं प्रीतिप्रदं मम।
भविष्यति न सन्देहः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२७॥
यं यमिच्छति तं तं वै दास्यामि स्तोत्रपाठतः।
पुत्र-पौत्रादिकं सर्वं लभते धन-धान्यकम् ॥२८॥

देवर्षय ऊचुः

सदात्मरूपं सकलादि-भूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम् ।
अनादि-मध्यान्त-विहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ ३ ॥

अनन्त-चिद्रूप-मयं गणेशं ह्यभेद-भेदादि-विहीनमाद्यम् ।
हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ ४ ॥

विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम् ।
सदा निरालम्ब-समाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ ५ ॥

स्वबिम्बभावेन विलासयुक्तं बिन्दुस्वरूपा रचिता स्वमाया ।
तस्यां स्ववीर्यं प्रददाति यो वं तमेकदन्तं शरण व्रजामः ॥ ६ ॥

त्वदीय-वीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम् ।
नादात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ ७ ॥

त्वदीय-सत्ताधरमेकदन्त गणेशमेकं त्रयबोधितारम् ।
सेवन्त आपुस्तमजं त्रिसंस्थास्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ ८ ॥

ततस्त्वया प्रेरित एव नादस्तेनेदमेवं रचित जगद् वै ।
आनन्दरूपं समभावसंस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ ९ ॥

तदेव विश्वं कृपया तवैव सम्भूतमाद्य तमसाविभातम् ।
अनेकरूपं ह्यजमेकभूतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१०॥

ततस्त्वया प्रेरितमेव तेन सृष्टं सुसूक्ष्मं जगदेकसंस्थम् ।
सत्त्वात्मकं श्वेतमनन्तमाद्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥११॥

तदेव स्वप्नं तपसा गणेशं स-सिद्धिरूपं विविधं बभूव ।
सदैकरूपं कृपया तवाऽपि तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१२॥

सम्प्रेरितं तच्च त्वया हृदिस्थं तथा सुसृष्टं जगदंशरूपम् ।
तेनैव जाग्रन्मयमप्रमेयं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१३॥

जाग्रत्स्वरूपं रजसा विभातं विलोकितं तत्कृपया यदैव ।
तदा विभिन्नं भवदेकरूपं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१४॥

एवं च सृष्ट्वा प्रकृतिस्वभावात्तदन्तरे त्वं च विभासि नित्यम् ।
बुद्धिप्रदाता गणनाथ एकस्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१५॥

गजा-ऽश्वादिकमत्यन्तं राज्यभोग लभेद् ध्रुवम् ।
भुक्ति मुक्तिं च योग वै लभते शान्तिदायकम् ॥२९॥
मारणोच्चाटनादीनि राज्यबन्धादिकं च यत् ।
पठतां शृण्वतां नृणां भवेच्च बन्धहीनता ॥३०॥
एकविंशतिवारं च श्लोकांश्चैवैकविंशतिम् ।
पठते नित्यमेवं च दिनानि त्वेकविंशतिम् ॥३१॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु वै भवेत् ।
असाध्यं साधयेन् मर्त्यः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥३२॥
नित्यं यः पठते स्तोत्रं ब्रह्मभूतः स वं नरः ।
तस्य दर्शनतः सर्वे देवाः पूता भवन्ति वै ॥३३॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टा देवतर्षयः ।
ऊचुः करपुटाः सर्वे भक्तियुक्ता गजाननम् ॥३४॥

इत्येकदन्त-गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १७ ॥

●

१८. शङ्करादिकृतं गजाननस्तोत्रम् [१]

देवा ऊचुः

गजाननाय पूर्णाय सांख्यरूपमयाय ते ।
विदेहेन च सर्वत्र संस्थिताय नमो नमः ॥ १ ॥
अमेयाय च हेरम्ब परशुधारकाय ते ।
मूषकवाहनायैव विश्वेशाय नमो नमः ॥ २ ॥
अनन्तविभवायैव परेशां पररूपिणे ।
शिवपुत्राय देवाय गुहाग्रजाय ते नमः ॥ ३ ॥
पार्वतीनन्दनायैव देवानां पालकाय ते ।
सर्वेषां पूज्यदेहाय गणेशाय नमो नमः ॥ ४ ॥
स्वानन्दवासिने तुभ्यं शिवस्य कुलदैवत ।
विष्णवादीनां विशेषेण कुलदेवाय ते नमः ॥ ५ ॥

योगाकाराय सर्वेषां योगशान्तिप्रदाय च।
ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मभूतप्रदाय ते ॥ ६ ॥
सिद्धि-बुद्धिपते नाथ! सिद्धि-बुद्धिप्रदायिने।
मायिने मायिकेभ्यश्च मोहदाय नमो नमः ॥ ७ ॥
लम्बोदराय वै तुभ्यं सर्वोदरगताय च।
अमायिने च मायाया आधाराय नमो नमः ॥ ८ ॥
गजः सर्वस्य बीजं यत्तेन चिह्नेन विघ्नप!।
योगिनस्त्वां प्रजानन्ति तदाकारा भवन्ति ते ॥ ९ ॥
तेन त्व गजवक्त्रश्च किं स्तुमस्त्वां गजानन।
वेदादयो विकुण्ठाश्च शङ्कराद्याश्च देवपाः ॥१०॥
शुक्रादयश्च मेषाद्याः स्तोतुं शक्ता भवन्ति नः।
तथापि संस्तुतोऽसि त्वं स्फूर्त्या त्वद्दर्शनात्मना ॥११॥
एवमुक्त्वा प्रणेमुस्तं गजाननं शिवादयः।
स तानुवाच प्रीतात्मा भक्तिभावेन तोषितः ॥१२॥

गजानन उवाच

भवत्कृतमिदं स्तोत्रं मदीयं सर्वदं भवेत्।
पठते श्रृण्वते चैव ब्रह्मभूत-प्रदायकम् ॥१३॥
इति मौद्गलोक्तं गजाननस्तोत्रं समाप्तम् ॥ १८ ॥

●

१९. देवर्षिकृतं गजाननस्तोत्रम् [२]

देवर्षय ऊचुः

विदेहरूपं भवबन्धहारं सदा स्वनिष्ठं स्वसुखप्रदन्तम्।
अमेयसांख्येन च लक्ष्यमीशं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ १ ॥
मुनीन्द्रवन्द्यं विधिबोधहीनं सुबुद्धिदं सुद्धिधरं प्रशान्तम्।
विकारहीनं सकलाङ्गकं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ २ ॥

अमेयरूपं हृदि संस्थितं तं ब्रह्माऽहमेकं भ्रमनाशकारम् ।
अनादि-मध्यान्तमपाररूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ३ ॥
जगत्प्रमाणं जगदीशमेवमगम्यमाद्यं जगदादिहीनम् ।
अनात्मनां मोहप्रदं पुराणं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ४ ॥
न पृथ्विरूपं न जलप्रकाशनं न तेजसंस्थं न समीरसंस्थम् ।
न खे गतं पञ्चविभूतिहीनं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ५ ॥
न विश्वगं तैजसगं न प्राज्ञं समष्टि-व्यष्टिस्थ-मनन्तगं तम् ।
गुणैर्विहीनं परमार्थभूतं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ६ ॥
गुणेशगं नैव च बिन्दुसंस्थं न देहिनं बोधमयं न ढुण्ढी ।
सुयोगहीनं प्रवदन्ति तत्स्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ७ ॥
अनागतं ग्रैवगतं गणेशं कथं तदाकारमयं वदामः ।
तथापि सर्वं प्रतिदेहसंस्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ८ ॥
यदि त्वया नाथ ! धृतं न किञ्चित्तदा कथं सर्वमिदं भजामि ।
अतो महात्मानमचिन्त्यमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥ ९ ॥
सुसिद्धिदं भक्तजनस्य देवं सकामिकानामिह सौख्यदं तम् ।
अकामिकानां भवबन्धहारं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१०॥
सुरेन्द्रसेव्यं ह्यसुरैः सुसेव्यं समानभावेन विराजयन्तम् ।
अनन्तबाहुं मूषकध्वजं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥११॥
सदा सुखानन्दमयं जले च समुद्रजे इक्षुरसे निवासम् ।
द्वन्द्वस्य यानेन च नाशरूपे गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१२॥
चतुःपदार्था विविधप्रकाशस्तदेव हस्तं सुचतुर्भुजं तम् ।
अनाथनाथं च महोदरं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१३॥
महाखुमारूढमकालकालं विदेहयोगेन च लभ्यमानम् ।
अमायिनं मायिकमोहदं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१४॥
रविस्वरूपं रविभासहीनं हरिस्वरूपं परिबोधहीनम् ।
शिवस्वरूपं शिवभासनाशं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१५॥
महेश्वरीस्थं च सुशक्तिहीनं प्रभुं परेशं परवन्द्यमेवम् ।
अचालकं चालकबीजरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१६॥

शिवादि-देवैश्च खगैश्च वन्द्यं नरैर्लता-वृक्ष-पशुप्रमुख्यैः।
चराऽचरैर्लोक-विहीनमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१७॥
मनोवचोहीनतया सुसंस्थं निवृत्तिमात्रं ह्यजमव्ययं तम्।
तथाऽपि देवं पुरसंस्थितं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१८॥
वयं सुधन्या गणपस्तवेन तथैव मर्त्यार्चनतस्तथैव।
गणेशरूपाश्च कृतास्त्वया तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१९॥
गजाख्यबीजं प्रवदन्ति वेदास्तदेव चिह्नेन च योगिनस्त्वाम्।
गच्छन्ति तेनैव गजाननं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥२०॥
पुराणवेदाः शिवविष्णुकाद्यामराः शुकाद्या गणपस्तवे वै।
विकुण्ठिताः किं च वयं स्तवामो गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥२१॥

मुद्गल उवाच

एवं स्तुत्वा गणेशानं नेमुः सर्वे पुनः पुनः।
तानुत्थाप्य वचो रम्यं गजानन उवाच ह ॥२२॥

गजानन उवाच

वरं ब्रूत महाभागा देवाः सर्षिगणाः परम्।
स्तोत्रेण प्रीतिसंयुक्तो दास्यामि वाञ्छितं परम् ॥२३॥
गजाननवचः श्रुत्वा हर्षयुक्ता सुरर्षयः।
जगुस्तं भक्तिभावेन साश्रुनेत्राः प्रजापते ॥२४॥

देवर्षय ऊचुः

यदि गजानन स्वामिन्! प्रसन्नो वरदोऽसि मे।
तदा भक्तिं दृढां देहि लोभहीनां त्वदीयकाम् ॥२५॥
लोभासुरस्य देवेश! कृता शान्तिसुखप्रदा।
तया जगदिदं सर्वं वरयुक्तं कृतं त्वया ॥२६॥
अधुना देवदेवेश! कर्मयुक्ता द्विजातयः।
भविष्यन्ति धरायां वै वयं स्वस्थानगास्तथा ॥२७॥
स्व-स्वधर्मरताः सर्वे कृतास्त्वया गजानन!।
अतः परं वरं ढुण्ढे याचमानः किमप्यहो! ॥२८॥

यदा ते स्मरणं नाथ करिष्यामो वयं प्रभो ।
तदा सङ्कटहीनान् वै कुरु त्वं भो गजानन ! ॥२९॥

एवमुक्त्वा प्रणेमुस्तं गजाननमनामयम् ।
तानुवाच च प्रीत्यात्मा भक्ताधीनः स्वभावतः ॥३०॥

गजानन उवाच

यद्यच्च प्रार्थितं देवा मुनयः सर्वमञ्जसा ।
भविष्यति न सन्देहो मत्स्मृत्या सर्वदा हि वः ॥३१॥

भवत्कृतं मदीयं वै स्तोत्रं सर्वत्र सिद्धिदम् ।
भविष्यति विशेषेण मम भक्ति-प्रदायकम् ॥३२॥

पुत्र-पौत्र-प्रदं पूर्णं धन-धान्य-प्रवर्धनम् ।
सर्वसम्पत्करं देवाः पठनाच्छ्रवणान्नृणाम् ॥३३॥

मारणोच्चाटनादीनि नश्यन्ति स्तोत्रपाठतः ।
परकृत्यं च विप्रेन्द्रा अशुभं नैव बाधते ॥३४॥

संग्रामे जयदं चैव यात्राकाले फलप्रदम् ।
शत्रूच्चाटनादिषु च प्रशस्तं तद् भविष्यति ॥३५॥

कारागृहगतस्यैव बन्धनाशकरं भवेत् ।
असाध्यं साधयेत् सर्वमनेनैव सुरर्षयः ॥३६॥

एकविंशतिवारं वै चैकविंशद्दिनावधिम् ।
प्रयोगं यः करोत्येव सर्वसिद्धिभाक् स भवेत् ॥३७॥

धर्मार्थकाम-मोक्षाणां ब्रह्मभूतस्य दायकम् ।
भविष्यति न सन्देहः स्तोत्रं मद्भक्तिवर्धनम् ॥३८॥

एवमुक्त्वा गणाधीशस्तत्रैवान्तरधीयत ।

इति मुद्गलपुराणान्तर्गतं गजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९॥

२०. गजाननस्तोत्रम् [३]

देवर्षय ऊचुः

नमस्ते गजवक्त्राय गजाननसुरूपिणे ।
पराशरसुतायैव वत्सलासूनवे नमः ॥ १ ॥
व्यासभ्रात्रे शुकस्यैव पितृव्याय नमो नमः ।
अनादिगणनाथाय स्वानन्दावासिने नमः ॥ २ ॥
रजसा सृष्टिकर्त्रे ते सत्त्वतः पालकाय वै ।
तमसा सर्वसंहर्त्रे गणेशाय नमो नमः ॥ ३ ॥
सुकृतेः पुरुषस्यापि रूपिणे परमात्मने ।
बोधाकाराय वै तुभ्यं केवलाय नमो नमः ॥ ४ ॥
स्वसंवेद्याय देवाय योगाय गणपाय च ।
शान्तिरूपाय तुभ्यं वै नमस्ते ब्रह्मनायक ॥ ५ ॥
विनायकाय वीराय गजदैत्यस्य शत्रवे ।
मुनिमानसनिष्ठाय मुनीनां पालकाय च ॥ ६ ॥
देवरक्षकरायैव विघ्नेशाय नमो नमः ।
वक्रतुण्डाय धीराय चैकदन्ताय ते नमः ॥ ७ ॥
त्वयाऽयं निहतो दैत्यो गजनामा महाबलः ।
ब्रह्माण्डे मृत्युसंहीनो महाश्चर्यं कृतं विभो ! ॥ ८ ॥
हते दैत्येऽधुना कृत्स्नं जगत्सन्तोषमेष्यति ।
स्वाहा-स्वधायुतं पूर्णं स्वधर्मस्थं भविष्यति ॥ ९ ॥
एवमुक्त्वा गणाधीशं सर्वे देवर्षयस्ततः ।
प्रणम्य तूष्णीभावं ते सम्प्राप्ता विगतज्वराः ॥१०॥
कर्णौ सम्पीड्य गणप-चरणे शिरसो ध्वनिः ।
मधुरः प्रकृतस्तैस्तु तेन तुष्टो गजाननः ॥११॥
तानुवाच मदीया ये भक्ताः परमभाविताः ।
तैश्च नित्यं प्रकर्तव्यं भवद्भिर्नमनं यथा ॥१२॥

तेभ्योऽहं प्ररमप्रीतो दास्यामि मनसीप्सिताम् ।
एतादृशं प्रियं मे च नमनं नाऽत्र संशयः ॥१३॥
एवमुक्त्वा स तान् सर्वान् सिद्धि-बुद्ध्यादि-संयुतः ।
अन्तर्दधे ततो देवा मुनयः स्वस्थलं ययुः ॥१४॥

इति श्रीमदान्त्ये मौद्गल्ये द्वितीयखण्डे गजासुरवधे गजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२०॥

२१· विनायक-विनतिः

हेरम्बमम्बामवलम्बमानं लम्बोदरं लम्ब-वितुण्ड-मुण्डम् ।
उत्सङ्गमारोपयितुं ह्यपर्णां हसन्तमन्तर्हरिरूपमीडे ॥ १ ॥
मिलिन्द-वृन्द-गुञ्जनोल्लसत्कपोल-मण्डलं
श्रुति-प्रचालन-स्फुरत्समीरवीजिताननम् ।
वितुण्ड-शुण्डमण्डल-प्रसार-शोभिविग्रहं
निवारिताघ-विघ्नराशिमङ्कलालपं भजे ॥ २ ॥
गजेन्द्र-मौक्तिकालि-लग्न-कम्बुकण्ठ-पीठकं
सुवर्णवल्लि-मण्डली-विधानबद्ध-दन्तकम् ।
प्रमोदि-मोदकाञ्चितं करण्डकं कराम्बुजे
दधानमम्बिकामनो विनोद-मोद-दायकम् ॥ ३ ॥
गभीर-नाभि-तुन्दिलं सुपीत-पाट-धौतकं
प्रतप्त-हाटकोपवीत-शोभिताङ्ग-संग्रहम् ।
सुरा-ऽसुरार्चिताङ्घ्रिकं शुभक्रिया-सहायकं
महेशचित्त-चायकं विनायकं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥
गजाननं गणेश्वरं गिरीशजाकुमारकं
महेश्वरात्मजं मुनीन्द्रमानसाधिधावकम् ।
मतिप्रकर्ष-मण्डितं सुभक्त-चित्त-मोदकं
भजज्जनालिघोर-विघ्नघातकं भजाम्यहम् ॥ ५ ॥

लसल्ललाट-चन्द्रकं क्रियाकृतेऽस्ततन्द्रकं
महेन्द्रवन्द्य-पादुकं षडाननाग्रजानुजम् ।
अहिं निवार्य मूषकाधिरक्षकं मयूरकं
विलोक्य सुप्रसन्नमानसं गणाधिपं भजे ॥ ६ ॥
हरिं निरीक्ष्य भीतिचञ्चलाक्षमेत्य मातरं
निजावनाय पार्श्वमागतां विलोक्य सत्वरम् ।
तदीय-वक्षसि प्रविश्य सुस्थिरं परे वरे
नमामि सेवकालिशोक-शोषकं निरन्तरम् ॥ ७ ॥
निलिम्प-लोकमण्डली-प्रपूर्ण-पूजनीयकं
सुभक्त-भक्तिभावना विभाविताखिलप्रदम् ।
प्रभूत-भूति-भावकं दुरूह-दुःख-पावकं
व्रजेश्वरांश-सम्भवं विधुप्रभासितालिकम् ॥ ८ ॥
गिरीन्द्र-नन्दिनी-कराम्बुज-प्रसाधिताऽलकं
विलोल-शुण्ड-चुम्बितोग्र-भालचन्द्र-बालकम् ।
निजाखु-खेलनापरं कखन्त-मस्तचापलं
नमामि सिद्धि-बुद्धि-हस्त-चालि-पञ्चचामरम् ॥ ९ ॥
विनायकस्य विनतिं पठतां शृण्वतां सताम् ।
सिद्धि-बुद्धि-प्रदां सन्ति मङ्गलानि पदे पदे ॥१०॥
इति पण्डित-श्रीशिवप्रसादद्विवेदि-विरचिता विनायक-विनतिः समाप्ता ॥ २१ ॥

२२. गणेशमानसपूजा

गृत्समद उवाच

विघ्नेशवीर्याणि विचित्रकाणि बन्दीजनैर्मागधकैः स्मृतानि ।
श्रुत्वा समुत्तिष्ठ गजानन त्वं ब्राह्मे जगन्मङ्गलकं कुरुष्व ॥ १ ॥
एवं मया प्रार्थित-विघ्नराजश्चित्तेन चोत्थाय बहिर्गणेशः ।
तं निर्गतं वीक्ष्य नमन्ति देवाः शम्भ्वादयो योगिमुखास्तथाऽहम् ॥ २ ॥

शौचादिकं ते परिकल्पयामि हेरम्ब वै दन्तविशुद्धिमेवम् ।
वस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य मुखारविन्दं देवं सभायां विनिवेशयामि ॥ ३ ॥
द्विजादिसर्वैरभिवन्दितं च शुकादिभिर्मोद-समोदकाद्यैः ।
सम्भाष्य चालोक्य समुत्थितं तं सुमण्डपं कल्प्य निवेशयामि ॥ ४ ॥
रत्नैः सुदीप्तैः प्रतिबिम्बितं तं पश्यामि चित्तेन विनायकं च ।
तत्रासनं रत्नसुवर्णयुक्तं सङ्कल्प्य देवं विनिवेशयामि ॥ ५ ॥
सिद्धया च बुद्धया सह विघ्नराज ! पाद्यं कुरु प्रेमभरेण सर्वैः ।
सुवासितं नीरमथो गृहाण चित्तेन दत्तं च सुखोष्णभावम् ॥ ६ ॥
ततः सुवस्त्रेण गणेशपादौ सम्प्रोक्ष्य दूर्वादिभिरर्चयामि ।
चित्तेन भावप्रिय दीनबन्धो मनो विलीनं कुरु ते पदाब्जे ॥ ७ ॥
कर्पूर-एलादि-सुवासितं तु सुकल्पितं तोयमथो गृहाण ।
आचम्य तेनैव गजानन ! त्वं कृपाकटाक्षेण विलोकयाशु ॥ ८ ॥
प्रवाल-मुक्ताफल-हारकाद्यैः सुसंस्कृतं ह्यन्तरभावकेन ।
अनर्घ्यमर्घ्यं सफलं कुरुष्व मया प्रदत्तं गणराज ढुण्ढे ॥ ९ ॥
सौधं त्रियुक्तं मधुपर्कमाद्यं सङ्कल्पितं भावयुतं गृहाण ।
पुनस्तथाऽऽचम्य विनायक त्वं भक्तांश्च भक्तेश सुरक्षयाशु ॥१०॥
सुवासितं चम्पक-जातिकाद्यैस्तैलं मया कल्पितमेव ढुण्ढे ।
गृहाण तेन प्रविमर्दयामि सर्वाङ्गमेवं तव सेवनाय ॥११॥
ततः सुखोष्णेन जलेन चाऽहमनेकतीर्थाहृतकेन ढुण्ढिम् ।
चित्तेन शुद्धेन च स्नापयामि स्नानं मया दत्तमथो गृहाण ॥१२॥
ततः पयःस्नानमचिन्त्यभावं गृहाण तोयस्य तथा गणेश ।
पुनर्दधिस्नानमनामयत्वं चित्तेन दत्तं च जलस्य चैवम् ॥१३॥
ततो घृतस्नानमपारवन्द्य सुतीर्थजो विघ्नहर प्रसीद ।
गृहाण चित्तेन सुकल्पितं तु ततो मधुस्नानमथो जलस्य ॥१४॥
सुशर्करायुक्तमथो गृहाण स्नानं मया कल्पितमेव ढुण्ढे ।
ततो जलस्नानमघापहर्तृ विघ्नेश मायां हि निवारयाशु ॥१५॥
सुदक्षपङ्कस्तमथो गृहाण स्नानं परेशाधिपते ततश्च ।
कौमण्डलीसम्भवजं कुरुष्व विशुद्धमेवं परिकल्पितं तु ॥१६॥

ततस्तु सूक्तैर्मनसा गणेशं सम्पूज्य दूर्वादिभिरल्पभावैः।
अपारकैर्मण्डलभूतब्रह्मणस्पत्यादिकैस्त्वं ह्यभिषेचयामि ॥१७॥
ततः सुवस्त्रेण तु प्रोञ्छनं त्वं गृहाण चित्तेन मया सुकल्पितम्।
ततो विशुद्धेन जलेन ढुण्ढे ह्याचान्तमेवं कुरु विघ्नराज ॥१८॥
अग्नौ विशुद्धे तु गृहाण वस्त्रे ह्यनर्घमौल्ये मनसा मया ते।
दत्ते परिच्छाद्य निजात्मदेहं ताभ्यां मयूरेश जनांश्च रक्ष ॥१९॥
आचम्य विघ्नेश पुनस्तथैव चित्तेन दत्तं सुखमुत्तरीयम्।
गृहाण भक्तप्रतिपालक त्वं नमो यथा तारकसंयुतं तु ॥२०॥
यज्ञोपवीतं त्रिगुणस्वरूपं सौवर्णमेवं ह्यहिनाथभूतम्।
भावेन दत्तं गुणनाथ तत्त्वं गृहाण भक्तोद्धरकारणाय ॥२१॥
आचान्तमेवं मनसा प्रदत्तं कुरुष्व शुद्धेन जलेन ढुण्ढे।
पुनश्च कौमण्डलकेन पाहि विश्वं प्रभो खेलकरं सदा ते ॥२२॥
उद्यद्दिनेशाभमथो गृहाण सिन्दूरकं ते मनसा प्रदत्तम्।
सर्वाङ्गसंलेपनमादराद् वै कुरुष्व हेरम्ब च तेन पूर्णम् ॥२३॥
सहस्रशीर्षं मनसाश्रयं त्वद्दत्तं किरीटं तु सुवर्णजं वै।
अनेकरत्नैः खचितं गृहाण ब्रह्मेश ते मस्तकशोभनाय ॥२४॥
विचित्ररत्नैः कनकेन ढुण्ढे युतानि चित्तेन मया परेश।
दत्तानि नानापदकुण्डलानि गृहाण शूर्पश्रुतिभूषणाय ॥२५॥
शुण्डाविभूषार्थमनन्तखेलिन् सुवर्णजं कञ्चुकमागृहाण।
रत्नैश्च युक्तं मनसा मया यद्दत्तं प्रभो तत् सफलं कुरुष्व ॥२६॥
सुवर्णरत्नैश्च युतानि ढुण्ढे सदैकदन्ताभरणानि कल्प्य।
गृहाण चूडाकृतये परेश दत्तानि दन्तस्य च शोभनार्थम् ॥२७॥
रत्नैः सुवर्णेन कृतानि तानि गृहाण चत्वारि मया प्रकल्प्य।
सम्भूषय त्वं कटकानि नाथ चतुर्भुजेषु ह्यज विघ्नहारिन् ॥२८॥
विचित्ररत्नैः खचितं सुवर्ण-सम्भूतकं गृह्य मया प्रदत्तम्।
तथाङ्गुलीष्वांगुलिकं गणेश चित्तेन संशोभय तत्परेश ॥२९॥
विचित्ररत्नैः खचितानि ढुण्ढे केयूरकाणि ह्यथ कल्पितानि।
सुवर्णजानि प्रथमाधिनाथ गृहाण दत्तानि च बाहुषु त्वम् ॥३०॥

प्रवाल-मुक्ताफल-रत्नजांस्त्वं सुवर्णसूत्रैश्च गृहाण कण्ठे ।
चित्तेन दत्ता विविधाश्च माला उरोदरे शोभय विघ्नराज ॥३१॥
चन्द्रं ललाटे गणनाथ पूर्णं बृद्धि-क्षयाभ्यां तु विहीनमाद्यम् ।
संशोभय त्वं वरसंयुतं ते • भक्तप्रियत्वं प्रकटीकुरुष्व ॥३२॥
चिन्तामणिं चिन्तितदं परेश हृद्देशगं ज्योतिमयं कुरुष्व ।
मणिं सदानन्दसुखप्रदं च विघ्नेश दीनानथ पालयस्व ॥३३॥
नाभौ फणीशं च सहस्रशीर्षं संवेष्टनेनैव गणाधिनाथ ।
भक्तं सुभूषं कुरु भूषणेन वरप्रदानं सफलं परेश ॥३४॥
कटीतटे रत्नसुवर्णयुक्तां काञ्चीं सुचित्तेन च धारयामि ।
विघ्नेश ज्योतिर्गणदीपनं ते प्रसीद भक्तं कुरु मां दयाब्धे ॥३५॥
हेरम्ब ते रत्नसुवर्णयुक्ते सुनूपुरे मञ्जिरके तथैव ।
सुकिङ्किणीनादयुते सुबुद्धया सुपादयोः शोभय मे प्रदत्ते ॥३ ॥
इत्यादि-नानाविध-भूषणानि तवेच्छया मानसकल्पितानि ।
सम्भूषयाम्येव त्वदङ्गकेषु विचित्रधातुप्रभवाणि ढुण्ढे ॥३७॥
सुचन्दनं रक्तममोघवीर्यं सुघर्षितं ह्यष्टकगन्धमुख्यैः ।
युक्तं मया कल्पितमेकदन्त गृहाण ते त्वङ्गविलेपनार्थम् ॥३८॥
लिप्तेषु वैचित्र्यमथाष्टगन्धैरङ्गेषु तेऽहं प्रकरोमि चित्रम् ।
प्रसीद चित्तेन विनायक त्वं ततः सुरक्तं रविमेव भाले ॥३९॥
घृतेन वै कुङ्कुमकेन रक्तान् सुतन्दुलांस्ते परिकल्पयामि ।
भाले गणाध्यक्ष गृहाण पाहि भक्तान् सुभक्तिप्रिय दीनबन्धो ॥४०॥
गृहाण भो चम्पकमालतीनि सुपङ्कजानि स्थलपङ्कजानि ।
चित्तेन दत्तानि च मल्लिकानि पुष्पाणि नानाविधवृक्षजानि ॥४१॥
पुष्पोपरि त्वं मनसा गृहाण हेरम्ब मन्दारशमीदलानि ।
मया सुचित्तेन प्रकल्पितानि ह्यपारकाणि प्रणवाकृते तु ॥४२॥
दूर्वाङ्कुरान् वै मनसा प्रदत्तांस्त्रिपञ्चपत्रैर्युतकांश्च स्निग्धान् ।
गृहाण विघ्नेश्वर संख्यया त्वं हीनांश्च सर्वोपरि वक्रतुण्ड ॥४३॥
दशाङ्गभूतं मनसा मया ते धूपं प्रदत्तं गणराज ढुण्ढे ।
गृहाण सौरभ्यकरं परेश सिद्धया च बुद्धया सह भक्तपाल ॥४४॥

दीपं सुबत्यी युतमादरात्ते दत्तं मया मानसकं गणेश ।
गृहाण नानाविधजं घृतादि-तैलादि-सम्भूतममोघदृष्टे ॥४५॥
भोज्यं तु लेह्यं गणराज पेयं चोष्यं च नानाविध-षड्रसाढ्यम् ।
गृहाण नैवेद्यमथो मया ते सुकल्पितं पुष्टिपते महात्मन् ॥४६॥
सुवासितं भोजनमध्यभागे जलं मया दत्तमथो गृहाण ।
कमण्डलुस्थं मनसा गणेश पिबस्व विश्वादिकतृप्तिकारिन् ॥४७॥
ततः करोद्वर्तनकं गृहाण सौगन्ध्युक्तं मुखमार्जनाय ।
सुवासितेनैव सुतीर्थजेन सुकल्पितं नाथ गृहाण ढुण्ढे ॥४८॥
पुनस्तथाऽऽचम्य सुवासितं च दत्तं मया तीर्थजलं पिबस्व ।
प्रकल्प्य विघ्नेश ततः परं ते सम्प्रोञ्छनं हस्तमुखे करोमि ॥४९॥
द्राक्षादि-रम्भाफल-चूतकानि खार्जूर-कार्कन्धुक-दाडिमानि ।
सुस्वादयुक्तानि मया प्रकल्प्य गृहाण दत्तानि फलानि ढुण्ढे ॥५०॥
पुनर्जलेनैव करादिकं ते संक्षालयामि मनसा गणेश ।
सुवासितं तोयमथो पिबस्व मया प्रदत्तं मनसा परेश ॥५१॥
अष्टाङ्गयुक्तं गणनाथ दत्तं ताम्बूलकं ते मनसा मया वै ।
गृहाण विघ्नेश्वर भावयुक्तं सदाऽसकृत्तुण्डविशोधनार्थम् ॥५२॥
ततो मया कल्पितके गणेश महासने रत्नसुवर्णयुक्ते ।
मन्दार-कूर्पासकयुक्त-वस्त्रैरनर्घ्य-सञ्छादितके प्रसीद ॥५३॥
ततस्त्वदीयावरणं परेश सम्पूजयामि मनसा यथावत् ।
नानापचारैः परमप्रियैस्तु त्वत्प्रीतिकामार्थमनाथबन्धो ॥५४॥
गृहाण लम्बोदर दक्षिणां ते ह्यसंख्यभूतां मनसा प्रदत्ताम् ।
सौवर्ण-मुद्रादिक-मुख्यभावां पाहि प्रभो विश्वमिदं गणेश ॥५५॥
राजोपचारान् विविधान् गृहाण हस्त्यश्व-छत्रादिकमादराद् वै ।
चित्तेन दत्तान् गणनाथ ढुण्ढे ह्यपारसंख्यान् स्थिरजङ्गमांस्ते ॥५६॥
दानस्य नानाविधरूपकांस्ते गृहाण दत्तान् मनसा मया वै ।
पदार्थभूतान् स्थिर-जङ्गमांश्च हेरम्ब मां तारय मोहभावात् ॥५७॥
मन्दारपुष्पाणि शमीदलानि दूर्वाङ्कुरांस्ते मनसा ददामि ।
हेरम्ब लम्बोदर दीनपाल गृहाण भक्तं कुरु मां पदे ते ॥५८॥

ततो हरिद्रामविरं गुलालं सिन्दूरकं ते परिकल्पयामि ।
सुवासितं वस्तुसुवासभूतैर्गृहाण ब्रह्मेश्वर-शोभनार्थम् ॥५९॥
ततः शुकाद्याः शिव-विष्णुमुख्या इन्द्रादयः शेषमुखास्तथाऽन्ये ।
मुनीन्द्रकाः सेवकभावयुक्ताः सभासनस्थं प्रणमन्ति ढुण्ढिम् ॥६०॥
वामाङ्गके भक्तियुता गणेशं सिद्धिस्तु नानाविधसिद्धिभिस्तम् ।
अत्यन्तभावेन सुसेवते तु मायास्वरूपा परमार्थभूता ॥६१॥
गणेश्वरं दक्षिणभागसंस्था बुद्धिः कलाभिश्च सुबोधिकाभिः ।
विद्याभिरेवं भजते परेशा मायासु सांख्यप्रदचित्तरूपा ॥६२॥
प्रमोदमोदाः खलु पृष्ठभागे गणेश्वरं भावयुतो भजन्ते ।
भक्तेश्वरा मुद्गलशम्भुमुख्याः शुकादयस्तस्य पुरो भजन्ते ॥६३॥
गन्धर्वमुख्या मधुरं जगुश्च गणेशगीतं विविधस्वरूपम् ।
नृत्यं कलायुक्तमथो पुरस्ताच्छत्रुस्तथा ह्यप्सरसो विचित्रम् ॥६४॥
इत्यादि-नानाविध-भावयुक्तैः संसेवितं विघ्नपतिं भजामि ।
चित्तेन ध्यात्वा तु निरञ्जनं वै करोमि नानाविधदीपयुक्तम् ॥६५॥
चतुर्भुजं पाशधरं गणेशं तथाङ्कुशं दन्तयुतं तमेवम् ।
त्रिनेत्रयुक्तं त्वभयङ्करं तं महोदरं चैकरदं गजास्यम् ॥६६॥
सर्वोपवीतं गणकर्णधारं विभूतिभिः सेवितपादपद्मम् ।
ध्याये गणेशं विविधप्रकारैः सुपूजितं शक्तियुतं परेशम् ॥६७॥
ततो जपं वै मनसा करोमि स्वमूलमन्त्रस्य विधानयुक्तम् ।
असंख्यभूतं गणराजहस्ते समर्पयाम्येव गृहाण ढुण्ढे ॥६८॥
आरार्तिकां कर्पुरकादिभूतामपारदीपां प्रकरोमि पूर्णाम् ।
चित्तेन लम्बोदर तां गृहाण ह्यज्ञानध्वान्तौघहरां निजानाम् ॥६९॥
वेदेषु वैघ्नेश्वरकैः सुमन्त्रैः सुमन्त्रितं पुष्पदलं प्रभूतम् ।
गृहाण चित्तेन मया प्रदत्तमपारवृत्त्या त्वथ मन्त्रपुष्पम् ॥७०॥
अपारवृत्त्या स्तुतिमेकदन्तं गृहाण चित्तेन कृतां गणेश ।
युक्तां श्रुतिस्मार्तभवैः पुराणैः सर्वैः परेशाधिपते मया ते ॥७१॥
प्रदक्षिणा मानसकल्पितारता गृहाण लम्बोदर भावयुक्ताः ।
संख्याविहीना विविधस्वरूपा भक्तान् सदा रक्ष भवार्णवाद् वै ॥७२॥

नतिं ततो विघ्नपते गृहाण साष्टाङ्गकाद्या विविधत्वरूपाम् ।
संख्याविहीनां मनसा कृतां ते सिद्धया च बुद्धया परिपालयाशु ॥७३॥
न्यूनातिरिक्तं तु मया कृतं चेत्तदर्थमन्ते मनसा गृहाण ।
दूर्वांकुरान् विघ्नपते प्रदत्तान् सम्पूर्णमेवं कुरु पूजनं मे ॥७४॥
क्षमस्व विघ्नाधिपते मदीयान् सदापराधान् विविधस्वरूपान् ।
भक्तिं मदीयां सफलां कुरुष्व सम्प्रार्थयामि मनसा गणेश ॥७५॥
ततः प्रसन्नेन गजानेन दत्तं प्रसादं शिरसाऽभिवन्द्य ।
स्वमस्तके तं परिधारयामि चित्तेन विघ्नेश्वरमानतोऽस्मि ॥७६॥
उत्थाय विघ्नेश्वर एव तस्मादतस्ततस्त्वन्तरधानशक्त्या ।
शिवादयस्तं प्रणिपत्य सर्वे गताः सुचित्तेन च चिन्तयामि ॥७७॥
सर्वान्नमस्कृत्य ततोऽहमेव भजामि चित्तेन गणाधिपं तम् ।
स्वस्थानमागत्य महानुभावैर्भक्तैर्गणेशस्य च खेलयामि ॥७८॥
एवं त्रिकालेषु गणाधिपं तं चित्तेन नित्यं परिपूजयामि ।
तेनैव तुष्टः प्रददातु भावं विघ्नेश्वरो भक्तिमयं तु मह्यम् ॥७९॥
गणेशपादोदकपानकं च ह्युच्छिष्टगन्धस्य सुलेपनं तु ।
निर्माल्य-सन्धारणकं सुभोज्यं लम्बोदरस्यास्तु हि भुक्तशेषम् ॥८०॥
यद्यत्करोम्येव तदेव दीक्षा गणेश्वरस्यास्तु सदा गणेश ।
प्रसीद नित्यं तव पादभक्तं कुरुष्व मां ब्रह्मपते दयालो ॥८१॥
ततस्तु शय्यां परिकल्पयामि मन्दार-कूर्पासक-वस्त्रयुक्ताम् ।
सुवास-पुष्पादिभिरर्चितां ते गृहाण निद्रां कुरु विघ्नराज ॥८२॥
सिद्धया च बुद्धया सहितं गणेश सुनिद्रितं वीक्ष्य तथाऽहमेव ।
गत्वा स्ववासं च करोमि निद्रां ध्यात्वा हृदि ब्रह्मपतिं तदीयः ॥८३॥
एतादृशं सौख्यमयोघशक्ते देहि प्रभो मानसजं गणेशम् ।
मह्यं च तेनैव कृतार्थरूपो भवामि भक्त्या रसलालसोऽहम् ॥८४॥

गार्ग्य उवाच

एवं नित्यं महाराज गृत्समादो महायशाः ।
चकार मानसीं पूजां योगीन्द्राणां गुरुः स्वयम् ॥८५॥

य एतां मानसीं पूजां करिष्यति नरोत्तमः ।
पठिष्यति सदा सोऽपि गाणपत्यो भविष्यति ॥८६॥
श्रावयिष्यति यो मर्त्यः श्रोष्यते भावसंयुतः ।
स क्रमेण महीपाल ब्रह्मभूतो भविष्यति ॥८७॥
यद्यदिच्छति तत्तद् वै सफलं तस्य जायते ।
अन्ते स्वानन्दगः सोऽपि योगिवन्द्यो भविष्यति ॥८८॥

इति श्रीमदान्त्ये मौद्गल्ये गणेशमानसपूजा समाप्ता ॥२२॥

२३. गणेशबाह्यपूजा

ऐल उवाच

बाह्यपूजां वद विभो ! गृत्समदप्रकीर्तिताम् ।
येन मार्गेण विघ्नेशं भजिष्यसि निरन्तरम् ॥१॥

गार्ग्य उवाच

आदौ च मानसीं पूजां कृत्वा गृत्समदो मुनिः ।
बाह्यां चकार विधिवत्तां श्रृणुष्व सुखप्रदाम् ॥२॥
हृदि ध्यात्वा गणेशानं परिवारादिसंयुतम् ।
नासिकारन्ध्रमार्गेण तं बाह्याङ्गं चकार ह ॥३॥
आदौ वैदिकमन्त्रं स गणानां त्वेति सम्पठन् ।
पश्चाच्छ्लोकं समुच्चार्य पूजयामास विघ्नपम् ॥४॥

गृत्समद उवाच

चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं च गजास्यं रक्तवर्णकम् ।
पाशाऽङ्कुशादि-संयुक्तं मायायुक्तं प्रचिन्तयेत् ॥५॥
आगच्छ ब्रह्मणां नाथ सुरा-ऽसुर-वरार्चित ।
सिद्धि-बुद्ध्यादि-संयुक्त ! भक्तिग्रहणलालस ! ॥६॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं तवागमनतः प्रभो ।
विघ्नेशाऽनुगृहीतोऽहं सफलो मे भवोऽभवत् ॥७॥

रत्नसिंहासनं स्वामिन् गृहाण गणनायक।
तत्रोपविश्य विघ्नेश रक्ष भक्तान् विशेषतः ॥ ८ ॥
सुवासिताभिरद्भिश्च पादप्रक्षालनं प्रभो!।
शीतोष्णाम्भः करोमि ते गृहाण पाद्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सर्वतीर्थाहृतं तोयं सुवासितं सुवस्तुभिः।
आचमनं च तेनैव कुरुष्व गणनायक ॥१०॥
रत्न-प्रवाल-मुक्ताद्यैरनर्घ्यैः संस्कृतं प्रभो।
अर्घ्यं गृहाण हेरम्ब द्विरदानन तोषकम् ॥११॥
दधि-मधु-घृतैर्युक्तं मधुपर्कं गजानन।
गृहाण भावसंयुक्तं मया दत्तं नमोऽस्तु ते ॥१२॥
पाद्ये च मधुपर्के च स्नाने वस्त्रोपधारणे।
उपवीते भोजनान्ते पुनराचमनं कुरु ॥१३॥
चम्पकाद्यै-र्गणाध्यक्ष वासितं तैलमुत्तमम्।
अभ्यङ्गं कुरु सर्वेश! लम्बोदर! नमोऽस्तु ते ॥१४॥
यक्ष-कर्दमकाद्यैश्च विघ्नेश भक्तवत्सल!।
उद्वर्तनं कुरुष्व त्वं मया दत्तं महाप्रभो ॥१५॥
नानातीर्थजलैर्ढुण्ढे! सुखोष्णभावरूपकैः।
कमण्डलूद्भवैः स्नानं कुरु ढुण्ढे समर्पितैः ॥१६॥
कामधेनु-समुद्भूतं पयः परमपावनम्।
तेन स्नानं कुरुष्व त्वं हेरम्ब परमार्थवित् ॥१७॥
पञ्चामृतानां मध्ये तु जलैः स्नानं पुनः पुनः।
कुरु त्वं सर्वतीर्थेभ्यो गङ्गादिभ्यः समाहृतैः ॥१८॥
दधि धेनुपयोद्भूतं मलापहरणं परम्।
गृहाण स्नानकार्यार्थं विनायक दयानिधे ॥१९॥
धेनुदुग्धोद्भवं ढुण्ढे घृतं सन्तोषकारकम्।
महामलापघातार्थं तेन स्नानं कुरु प्रभो ॥२०॥
सारघं संस्कृतं पूर्णं मधु मधुरसोद्भवम्।
गृहाण स्नानकार्यार्थं विनायक नमोऽस्तु ते ॥२१॥

इक्षुदण्डसमुद्भूतां शर्करां मलनाशिनीम् ।
गृहाण गणनाथ त्वं तया स्नानं समाचर ॥२२॥
यक्षकर्दमकाद्यैश्च स्नानं कुरु गणेश्वर ।
अन्त्यं मलहरं शुद्धं सर्वसौगन्ध्यकारकम् ॥२३॥
ततो गन्धाक्षतादींश्च दूर्वाङ्कुरान् गजानन ।
समर्पयामि स्वल्पांस्त्वं गृहाण परमेश्वर ॥२४॥
ब्रह्मणस्पत्यसूक्तैश्च ह्येकविंशतिवारकैः ।
अभिषेकं करोमि ते गृहाण द्विरदानन ॥२५॥
तत आचमनं देव सुवासितजलेन च ।
कुरुष्व गणनाथ त्वं सर्वतीर्थभवेन वै ॥२६॥
वस्त्रयुग्मं गृहाण त्वमनर्घ्यं रक्तवर्णकम् ।
लोकलज्जाहरं चैव विघ्ननाथ नमोऽस्तु ते ॥२७॥
उत्तरीयं सुचित्रं वै नभस्ताराङ्कितं यथा ।
गृहाण सर्वसिद्धीश मया दत्तं सुभक्तितः ॥२८॥
उपवीतं गणाध्यक्ष गृहाण च ततः परम् ।
त्रैगुण्यमयरूपं तु प्रणवग्रन्थिबन्धनम् ॥२९॥
ततः सिन्दूरकं देव गृहाण गणनायक ।
अङ्गलेपनभावार्थं सदानन्दविवर्धनम् ॥३०॥
नानाभूषणकानि त्वमङ्गेषु विविधेषु च ।
भासुरस्वर्णरत्नैश्च निर्मितानि गृहाण भो ॥३१॥
अष्टगन्ध-समायुक्तं गन्धं रक्तं गजानन ।
द्वादशाङ्गेषु ते ढुण्ढे लेपयामि सुचित्रवत् ॥३२॥
रक्तचन्दनसंयुक्तानथ वा कुङ्कुमैर्युतान् ।
अक्षतान् विघ्नराज त्वं गृहाण भालमण्डले ॥३३॥
चम्पकादि-सुवृक्षेभ्यः सम्भूतानि गजानन ।
पुष्पाणि शमी-मन्दार-दूर्वादीनि गृहाण च ॥३४॥
दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं सर्वसौरभकारकम् ।
गृहाण त्वं मया दत्तं विनायक महोदर ॥३५॥

नानाजातिभवं दीपं गृहाण गणनायक।
अज्ञानमलजं दोषं हरन्तं ज्योतिरूपकम् ॥३६॥
चतुर्विधान्नसम्पन्नं मधुरं लड्डुकादिकम्।
नैवेद्यं ते मया दत्तं भोजनं कुरु विघ्नप ॥३७॥
सुवासितं गृहाणेदं जलं तीर्थसमाहृतम्।
भुक्तिमध्ये च पानार्थं देवदेवेश ते नमः ॥३८॥
भोजनान्ते करोद्वर्तं यक्षकर्दमकेन च।
कुरुष्व त्वं गणाध्यक्ष पिब तोयं सुवासितम् ॥३९॥
दाडिमं खर्जुरं द्राक्षां रम्भादीनि फलानि वै।
गृहाण देवदेवेश नानामधुरकाणि तु ॥४०॥
अष्टाङ्गं देव ताम्बूलं गृहाण मुखवासनम्।
असकृद्विघ्नराज त्वं मया दत्तं विशेषतः ॥४१॥
दक्षिणां काञ्चनाद्यां तु नानाधातुसमुद्भवाम्।
रत्नाद्यैः संयुतां ढुण्ढे गृहाण सकलप्रिय ॥४२॥
राजोपचारकाद्यानि गृहाण गणनायक।
दानानि तु विचित्राणि मया दत्तानि विघ्नप ॥४३॥
तत आभरणं तेऽहमर्पयामि विधानतः।
विविधैरुपचारैश्च तेन तुष्टो भव प्रभो ॥४४॥
ततो दूर्वाङ्कुरान् ढुण्ढे एकविंशतिसंख्यकान्।
गृहाण कार्यसिद्ध्यर्थं भक्तवात्सल्यकारणात् ॥४५॥
नानादीपसमायुक्तं नीराजनं गजानन।
गृहाण भावसंयुक्तं सर्वाज्ञानादिनाशन ॥४६॥
गणानां त्वेति मन्त्रस्य जपं साहस्रकं परम्।
गृहाण गणनाथ त्वं सर्वसिद्धिप्रदो भव ॥४७॥
आर्तिक्यं च सुकर्पूरं नानादीपमयं प्रभो।
गृहाण ज्योतिषां नाथ तथा नीराजयाम्यहम् ॥४८॥
पादयोस्ते तु चत्वारि नाभौ द्वे वदने प्रभो।
एकं तु सप्तवारं वै सर्वाङ्गेषु निरञ्जनम् ॥४९॥

चतुर्वेदभवैर्मन्त्रैर्गाणपत्यैर्गजानन ।
मन्त्रितानि गृहाण त्वं पुष्पपत्राणि विघ्नप ॥५०॥
पञ्चप्रकारकैः -स्तोत्रैर्गाणपत्यैर्गणाधिप ।
स्तौमि त्वां तेन सन्तुष्टो भव भक्तिप्रदायक ॥५१॥
एकविंशतिसंस्थं वा त्रिसंस्थं वा गजानन ।
प्रादक्षिण्यं गृहाण त्वं ब्रह्मन् ब्रह्मेशभावन ॥५२॥
साष्टाङ्गां प्रणतिं नाथ एकविंशतिसम्मिताम् ।
हेरम्ब सर्वपूज्य त्वं गृहाण तु मया कृताम् ॥५३॥
न्यूनातिरिक्तभावार्थं किञ्चिद् दुर्वाङ्कुरान् प्रभो ।
समर्पयामि तेन त्वं साङ्गां पूजां कुरुष्व ताम् ॥५४॥
त्वया दत्तं स्वहस्तेन निर्माल्यं चिन्तयाम्यहम् ।
शिखायां धारयाम्येव सदा सर्वप्रदं च तत् ॥५५॥
अपराधानसंख्यातान् क्षमस्व गणनायक ।
भक्तं कुरु च मां ढुण्ढे तव पादप्रियं सदा ॥५६॥
त्वं माता त्वं पिता मे वै सुहृत्सम्बन्धिकादयः ।
त्वमेव कुलदेवश्च सर्वं त्वं मे न संशयः ॥५७॥
जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिभिर्देह-वाङ् मनसैः कृतम् ।
सांसर्गिकेण यत्कर्म गणेशाय समर्पये ॥५८॥
बाह्यं नानाविधं पापं महोग्रं तल्लयं व्रजेत् ।
गणेशपादतीर्थस्य मस्तके धारणात् किल ॥५९॥
पादोदकं गणेशस्य पीतं मर्त्येण तत्क्षणात् ।
सर्वान्तर्गतजं पापं नश्यति गणनातिगम् ॥६०॥
गणेशोच्छिष्टगन्धं वै द्वादशाङ्गेषु चर्चयेत् ।
गणेशतुल्यरूपः स दर्शनात् सर्वपापहा ॥६१॥
यदि गणेशपूजादौ गन्धभस्मादिकं चरेत् ।
अथवोच्छिष्टगन्धं तु नो चेत्तत्र विधिं चरेत् ॥६२॥
द्वादशाङ्गेषु विघ्नेशं नाममन्त्रेण चाऽर्चयेत् ।
तेन सोऽपि गणेशेन समो भवति भूतले ॥६३॥

आदौ गणेश्वरं मूर्ध्नि ललाटे विघ्ननायकम् ।
दक्षिणे कर्णमूले तु वक्रतुण्डं समर्चयेत् ॥ ६४ ॥

वामे कर्णस्य मूले वै चैकदन्तं समर्चयेत् ।
कण्ठे लम्बोदरं देवं हृदि चिन्तामणिं तथा ॥ ६५ ॥

बाहौ दक्षिणके चैव हेरम्बं बामबाहुके ।
विकटं नाभिदेशे तु विघ्नाथं समर्चयेत् ॥ ६६ ॥

कुक्षौ दक्षिणगायां तु मयूरेशं समर्चयेत् ।
वामकुक्षौ गजास्यं वै पृष्ठे स्वानन्दवासिनम् ॥ ६७ ॥

सर्वाङ्गलेपनं शस्तं चित्रितं चाऽष्टगन्धकैः ।
गाणेशानां विशेषेण सर्वभद्रस्य कारणात् ॥ ६८ ॥

ततोच्छिष्टं तु नैवेद्यं गणेशस्य भुनज्म्यहम् ।
भुक्ति-मुक्तिप्रदं पूर्णं नानापापनिकृन्तनम् ॥ ६९ ॥

गणेशस्मरणेनैव करोमि कालखण्डनम् ।
गाणपत्यैश्च संवासः सदाऽस्तु मे गजानन ॥ ७० ॥

गार्ग्य उवाच

एवं गृत्समदश्चैव चकार बाह्यपूजनम् ।
त्रिकालेषु महायोगी सदा भक्तिसमान्वितः ॥ ७१ ॥

तथा कुरु महीपाल गाणपत्यो भविष्यसि ।
यथा गृत्समदः साक्षात्तथा त्वमपि निश्चितम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीमदान्त्ये मुद्गलपुराणे गणेशबाह्यपूजा समाप्ता ॥ २३ ॥

इति गणेशस्तोत्राणि ।

*

२. ब्रह्मस्तोत्राणि

२४. ब्रह्मस्तोत्रम्[1]

हिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम् ।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंजोतिः स्वरोचिषा ॥ १ ॥

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।
रजः-सत्त्व-तमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २ ॥

नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।
प्राणेन्द्रिय-मनो-बुद्धि-विकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ ३ ॥

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।
चित्तस्य चित्तेर्मन इन्द्रियाणां पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥४॥

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तत्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ।
त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपाराः कविरन्तरात्मा ॥५॥

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥६॥

त्वत्तः परं नाऽपरमप्यनेजदेजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।
विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत् त्रिपृष्ठः ॥७॥

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रिय-प्राण-मनो गुणांस्त्वम् ।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्ये अव्यक्त आतमा पुरुषः पुराणः ॥८॥

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ।
चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ९ ॥

इति हिरण्यकशिपुक्तं ब्रह्मस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ २४ ॥

●

---

१. विष्णुपुराणोक्तवचनेन ब्रह्मणः पूजाया विधानं नास्ति, किन्तु आर्षपरम्परया स्तुतेरुपलभ्यमानत्वादिहोल्लिख्यते ।

२५. परब्रह्मस्तोत्रम्

अद्य स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने ।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ॥ १ ॥

अनन्तनामधेयाय सर्वाकारविधायिने ।
समस्तमन्त्रवाच्याय विश्वैकपतये नमः ॥ २ ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्ना-ऽनन्त-चिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ ३ ॥

कर्णिकादिष्विव स्वर्णमर्णवादिष्विवोदकम् ।
भेदिष्वभेदि यत्तस्मै परस्मै महसे नमः ॥ ४ ॥

नमो वाङ्मनसातीत-महिम्ने परमेष्ठिने ।
त्रिगुणाष्टगुणानन्त-गुणनिर्गुणमूर्तये ॥ ५ ॥

यथा तथाऽपि यः पूज्यो यत्र तत्रापि योऽर्चितः ।
योऽपि वासोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्यै नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

नमः स्वतन्त्रचिच्छक्तिमुद्रितस्वविभूतये ।
अव्यक्त-व्यक्तरूपाय कस्मैचिन्मन्त्रमूर्तये ॥ ७ ॥

चरा-ऽचर-जगत्-स्फार-स्फुरत्तामात्रधर्मिणे ।
दुर्विज्ञेयरहस्याय युक्तैरप्यात्मने नमः ॥ ८ ॥

इति परब्रह्मस्तोत्रं समाप्तम् ॥ २५ ॥

इति ब्रह्मस्तोत्राणि ।

३. विष्णुस्तोत्राणि

२६. नारायणकवचम्

राजोवाच

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥

भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायाऽनुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥

विश्वरूप उवाच

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥
नारायणमयं वर्म सन्नह्येद् भय आगते ।
देवभूतात्मकर्मभ्यो नारायणमयः पुमान् ॥ ५ ॥
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ।
मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ॥ ६ ॥
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ।
करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ७ ॥
प्रणवादि-यकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठ-पर्वसु ।
न्यसेद् हृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि ॥ ८ ॥
षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया न्यसेत् ।
वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ॥ ९ ॥
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्र-मूर्तिर्भवेद् बुधः ।
सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

ॐ विष्णवे नमः। इत्यात्मानं परं ध्यायेद्धयेयं षट्शक्तिभिर्युतम्।
विद्या-तेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥
ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे।
दरा-ऽरि-चर्मा-ऽसि-गदेषु-चाप-पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः॥१२॥
जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायाबटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः॥१३॥
दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः॥१४॥
रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान्॥१५॥
मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात्।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात्॥१६॥
सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयाननो मां पथि देवहेलनात्।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात्॥१७॥
धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः॥१८॥
द्वैपायनो भगवान् प्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात्।
कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः॥१९॥
मां केशवो गदया प्रातरव्यात् गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः।
नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः॥२०॥
देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायंत्रिधामाऽवतु माधवो माम्।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः॥२१॥
श्रीवत्सधामा-ऽपररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः।
दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः॥२२॥
चक्रं युगान्तानल-तिग्मनेमि भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम्।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः॥२३॥
गदेऽश-निस्पर्शन-विस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि।
कूष्माण्ड-वैनायक-यक्ष-रक्षो-भूत-ग्रहांश्चूर्णय चूर्णयाऽरीन्॥२४॥

त्वं यातुधान-प्रथम-प्रेत-मातृ-पिशाच-विप्रग्रह-घोरदृष्टीन् ।
नरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥
त्वं तिग्मधारासि-वरारि-सैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हरपापचक्षुषाम् ॥२६॥
यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽंहोभ्य एव च ॥२७॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥२८॥
गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभच्छन्दोमयः प्रभुः ।
रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनस्य वाहनम् ॥२९॥
सर्वापद्भ्यो हरेर्नाम-रूप-याना-ऽऽयुधानि नः ।
बुद्धीन्द्रिय-मनः-प्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥
यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।
सत्येनाऽनेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥
यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।
भूषणा-ऽऽयुध-लिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥
तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥
विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त-समस्ततेजाः ॥३४॥
मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुर-यूथपान् ॥३५॥
एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥
न कुतश्चिद् भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
राज-दस्यु-ग्रहादिभ्यो व्याध्यादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥
इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।
योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९ ॥
गगनान् न्यपतत् सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ।
स बालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥ ४० ॥
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ।

श्रीशुक उवाच

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति चादृतः ।
तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ४१ ॥
एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते षष्ठस्कन्धेऽष्टमेऽध्याये नारायणधर्म(कवचं)सम्पूर्णम् ॥२६॥



२७. नारायणहृदयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीनारायणहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीलक्ष्मीनारायणो देवता, श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

करन्यासः—ॐ नारायणः परं ज्योतिरित्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परं ब्रह्मेति तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नारायणः परो देव इति मध्यमाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परं धामेति अनामिकाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परो धर्म इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ विश्वं नारायणः पर इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः ।

ध्यानम्

उद्यदादित्यसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।
शङ्ख-चक्र-गदापाणिं ध्यायेल्लक्ष्मीपतिं हरिम् ॥
'ॐ नमो भगवते नारायणाय' इति मन्त्रं जपेत् ।

श्रीवेदव्यास उवाच

श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः।
नारायणः परं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते॥ १॥

नारायणः परो देवो दाता नारायणः परः।
नारायणः परो ध्याता नारायण नमोऽस्तु ते॥ २॥

नारायणः परं धाम ध्याता नारायणः परः।
नारायणः परो धर्मो नारायण नमोऽस्तु ते॥ ३॥

नारायणपरो बोधो विद्या नारायणः परा।
विश्वं नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते॥ ४॥

नारायणाद् विधिर्जातो जातो नारायणाच्छिवः।
जातो नारायणादिन्द्रो नारायण नमोऽस्तु ते॥ ५॥

रविर्नारायणं तेजश्चन्द्रो नारायणं महः।
वह्निर्नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते॥ ६॥

नारायण उपास्यः स्याद् गुरुर्नारायणः परः।
नारायणः परो बोधो नारायण नमोऽस्तु ते॥ ७॥

नारायणः फलं मुख्यं सिद्धिर्नारायणः सुखम्।
सर्वं नारायणः शुद्धो नारायण नमोऽस्तु ते॥ ८॥

नारायणस्त्वमेवाऽसि नारायण हृदि स्थितः।
प्रेरकः प्रेर्यमाणानां त्वया प्रेरितमानसः॥ ९॥

त्वदाज्ञां शिरसा धृत्वा जपामि जनपावनम्।
नानोपासनमार्गाणां भावकृद्भावबोधकः॥ १०॥

भावकृद्-भावभूतस्त्वं मम सौख्यप्रदो भव।
त्वन्मायामोहितं विश्वं त्वयैव परिकल्पितम्॥ ११॥

त्वदधिष्ठानमात्रेण सैव सर्वार्थकारिणी।
त्वमेवैतां पुरस्कृत्य मम कामाद् समर्पय॥ १२॥

न मे त्वदन्यः सन्त्राता त्वदन्यं न हि दैवतम्।
त्वदन्यं न हि जानामि पालकं पुण्यरूपकम्॥ १३॥

यावत् सांसारिको भावो नमस्ते भावनात्मने ।
तत्सिद्धिदो भवेत् सद्यः सर्वथा सर्वदा विभो ॥ १४ ॥

पापिनामहमेकाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः ।
दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये ॥ १५ ॥

त्वयाऽप्यहं न सृष्टश्चेन्न स्यात्तव दयालुता ।
आमयो वा न सृष्टश्चेदौषधस्य वृथोदयः ॥ १६ ॥

पापसङ्घपरिक्रान्तः पापात्मा पापरूपधृक् ।
त्वदन्यः कोऽत्र पापेभ्यस्त्राता मे जगतीतले ॥ १७ ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या च गुरुस्त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ! ॥१८॥

प्रार्थनादशकं चैव मूलाष्टकमथापि वा ।
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ १९ ॥

नारायणस्य हृदयं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।
लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं यदि चैतद् विनाशकृत् ॥ २० ॥

तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं लक्ष्मीः क्रुध्यति सर्वतः ।
एतत् सङ्कलितं स्तोत्रं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं तथा नारायणात्मकम् ।
जपेद् यः सङ्कलीकृत्य सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

नारायणस्य हृदयमादौ जप्त्वा ततः परम् ।
लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं यदि जपेन्नारायणं पुनः ॥ २३ ॥

पुनर्नारायणं जप्त्वा पुनर्लक्ष्मीहृदं जपेत् ।
पुनर्नारायणहृदं सम्पुटीकरणं जपेत् ।
एवं मध्ये द्विवारेण जपेल्लक्ष्मीहृदं हि तत् ॥ २४ ॥

लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं सर्वमेतत् प्रकाशितम् ।
तद्वज्जपादिकं कुर्यादेतत् सङ्कलितं शुभम् ॥ २५ ॥

स सर्वकाममाप्नोति आधि-व्याधि-भयं हरेत् ।
गोप्यमेतत् सदा कुर्यान्न सर्वत्र प्रकाशयेत् ॥ २६ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमुक्तं ब्रह्मादिकैः पुरा ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोपयेत् साधयेत् सुधीः ।। २७ ।।
यत्रैतत् पुस्तकं तिष्ठेल्लक्ष्मीनारायणात्मकम् ।
भूत-प्रेत-पिशाचांश्च वेतालान्नाशयेत् सदा ।. २८ ।।
लक्ष्मीहृदयप्रोक्तेन विधिना साधयेत् सुधीः ।
भृगुवारे च रात्रौ तु पूजयेत् पुस्तकद्वयम् ।। २९ ।।
सर्वदा सर्वथा सत्यं गोपयेत् साधयेत् सुधीः ।
गोपनात् साधनाल्लोके धन्यो भवति तत्त्ववित् ।
नारायणहृदं नित्यं नारायण नमोऽस्तु ते ।। ३० ।।
इत्यथर्वणरहस्योत्तरभागे नारायणहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।। २७ ।।



२८. श्रीनारायणाष्टोत्तर-शतनामस्तोत्रम्

नारायणाय सुरमण्डनमण्डनाय नारायणाय सकलस्थितिकारणाय ।
नारायणाय भवभीतिनिवारणाय नारायणाय प्रभवाय नमो नमस्ते ।।१।।
नारायणाय शतचन्द्रनिभाननाय नारायणाय मणिकुण्डलधारणाय ।
नारायणाय निजभक्तपरायणाय नारायणाय सुभगाय नमो नमस्ते ।।२।।
नारायणाय सुरलोकप्रपोषकाय नारायणाय खलदुष्टविनाशकाय ।
नारायणाय दितिपुत्रविमर्दनाय नारायणाय सुलभाय नमो नमस्ते ।।३।।
नारायणाय रविमण्डल-संस्थिताय नारायणाय परमार्थ-प्रदर्शनाय ।
नारायणाय अतुलाय अतीन्द्रियाय नारायणाय विरजायनमोनमस्ते ।।४।।
नारायणाय रमणाय रमावराय नारायणाय रसिकाय रसोत्सुकाय ।
नारायणाय रसवर्जितनिर्मलाय नारायणाय वरदाय नमो नमस्ते ।।५।।
नारायणाय वरदाय सुरोत्तमाय नारायणाय अखिलान्तरसंस्थिताय ।
नारायणाय भय-शोक-विवर्जिताय नारायणाय प्रबलायनमोनमस्ते ।।६।।
नारायणाय निगमाय निरञ्जनाय नारायणाय च हराय नरोत्तमाय ।
नारायणाय कटिसूत्रविभूषणाय नारायणाय हरये महते नमस्ते ।।७।।

नारायणाय कटकाङ्गदभूषणाय नारायणाय मणिकौस्तुभशोभनाय।
नारायणाय तुलमौक्तिकभूषणाय नारायणाय च यमाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥
नारायणाय रविकोटिप्रतापनाय नारायणाय शशिकोटिसुशीतलाय।
नारायणाय यमकोटिदुरासदाय नारायणाय करुणाय नमो नमस्ते ॥ ९ ॥
नारायणाय मुकुटोज्ज्वलसोज्ज्वलाय नारायणाय मणिनूपुरभूषणाय।
नारायणाय ज्वलिताग्निशिखप्रभाय नारायणाय हरये गुरवे नमस्ते ॥१०॥
नारायणाय दशकण्ठविमर्दनाय नारायणाय विनतात्मजवाहनाय।
नारायणाय मणिकौस्तुभभूषणाय नारायणाय परमाय नमो नमस्ते ॥११॥
नारायणाय विदुराय च माधवाय नारायणाय कमठाय महीधराय।
नारायणाय उरगाधिपमञ्चकाय नारायणाय विरजापतये नमस्ते ॥१२॥
नारायणाय रविकोटिसमाम्बराय नारायणाय च हराय मनोहराय।
नारायणाय निजधर्मप्रतिष्ठिताय नारायणाय च मखाय नमो नमस्ते ॥१३॥
नारायणाय भवरोगरसायनाय नारायणाय शिवचापप्रतोटनाय।
नारायणाय निजवानरजीवनाय नारायणाय सुभुजाय नमो नमस्ते ॥१४॥
नारायणाय सुरथाय सुहृच्छिताय नारायणाय कुशलाय धुरन्धराय।
नारायणाय गजपाश-विमोक्षणाय नारायणाय जनकाय नमो नमस्ते ॥१५॥
नारायणाय निजभृत्यप्रपोषकाय नारायणाय शरणागतपञ्जराय।
नारायणाय पुरुषाय पुरातनाय नारायणाय सुपथाय नमो नमस्ते ॥१६॥
नारायणाय मणिस्वासनसंस्थिताय नारायणाय शतवीयशताननाय।
नारायणाय पवनाय च केशवाय नारायणाय रविभाय नमो नमस्ते ॥१७॥
श्रियःपतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः।
पतिर्गति-श्चाऽन्धक-वृष्णि-सात्त्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतांपतिः ॥१८॥
त्रिभुवनैकमनं तमालवर्णं रविकरगौर-वराम्बरं दधाने।
वपुरलक-कुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥१९॥
अष्टोत्तराधिकशतानि सुकोमलानि नामानि ये सुकृतिनः सततं स्मरन्ति।
तेऽनेकजन्मकृत-पापचयाद्विमुक्ता नारायणे व्यवहितांगतिमाप्नुवन्ति ॥२०॥

इति नारायणाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ २८ ॥

२९. विष्णुपञ्जरस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीविष्णुपञ्जरस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीविष्णुः परमात्मा देवता, अहं बीजम्, सोऽहं शक्तिः, ह्रीं कीलकम् मम सर्वदेहरक्षणार्थं जपे विनियोगः ।

करन्यासः

ॐ नारदऋषये नमः, शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे । श्रीविष्णुपरमात्मदेवतायै नमः, हृदये । अहं बीजाय नमः, गुह्ये । सोऽहं शक्त्यै नमः, पादयोः । ॐ ह्रीं कीलकाय नमः, पादाग्रे । ॐ 'ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौ ह्रः' इति मन्त्रः । ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । इति करन्यासः ।

ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ ह्रूं शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुम् । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् । इति अङ्गन्यासः ।

अहं बीजादिमन्त्रत्रयेण प्राणायाम कुर्यात् ।

ध्यानम्

परं परस्मात् प्रकृतेरनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहायाम् ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं नमामि विष्णुं जगदेकनाथम् ॥ १ ॥
विष्णुपञ्जरकं दिव्यं सर्वदुष्टनिवारणम् ।
उग्रतेजो महावीर्यं सर्वशत्रु-निकृन्तनम् ॥ २ ॥
त्रिपुरं दहमानस्य हरस्य ब्रह्मणोदितम् ।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि आत्मरक्षाकरं नृणाम् ॥ ३ ॥
पादौ रक्षतु गोविन्दो जङ्घे चैव त्रिविक्रमः ।
ऊरू मे केशवः पातु कटिं चैव जनार्दनः ॥ ४ ॥
नाभिं चैवाऽच्युतः पातु गुह्यं चैव तु वामनः ।
उदरं पद्मनाभश्च पृष्ठे चैव तु माधवः ॥ ५ ॥
वामपार्श्वं तथा विष्णुर्दक्षिणं मधुसूदनः ।
बाहू वै वासुदेवश्च हृदि दामोदरस्तथा ॥ ६ ॥

कण्ठं रक्षतु वाराहः कृष्णश्च मुखमण्डलम् ।
माधवः कर्णमूले तु हृषीकेशश्च नासिके ॥ ७ ॥
नेत्रे नारायणो रक्षेल्ललाटं गरुडध्वजः ।
कपोलौ केशवो रक्षेद् वैकुण्ठः सर्वतोदिशम् ॥ ८ ॥
श्रीवत्साङ्कश्च सर्वेषामङ्गानां रक्षको भवेत् ।
पूर्वस्यां पुण्डरीकाक्ष आग्नेय्यां श्रीधरस्तथा ॥ ९ ॥
दक्षिणे नारसिंहश्च नैर्ऋत्यां माधवोऽवतु ।
पुरुषोत्तमो मे वारुण्यां वायव्यां च जनार्दनः ॥ १० ॥
गदाधरस्तु कौबेर्यामीशान्यां पातु केशवः ।
आकाशे च गदा पातु पाताले च सुदर्शनम् ॥ ११ ॥
सन्नद्धः सर्वगात्रेषु प्रविष्टो विष्णुपञ्जरः ।
विष्णुपञ्जरविष्टोऽहं विचरामि महीतले ॥ १२ ॥
राजद्वारेऽपथे घोरे सङ्ग्रामे शत्रुसङ्कटे ।
नदीषु च रणे चैव चोर-व्याघ्र-भयेषु च ॥ १३ ॥
डाकिनी-प्रेत-भूतेषु भयं तस्य न जायते ।
रक्ष रक्ष महादेव रक्ष रक्ष जनेश्वरः ॥ १४ ॥
रक्षन्तु देवताः सर्वा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः ॥ १५ ॥
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ।
दिवा रक्षतु मां सूर्यो रात्रौ रक्षतु चन्द्रमाः ॥ १६ ॥
पन्थानं दुर्गमं रक्षेत् सर्वमेव जनार्दनः ।
रोग-विघ्नहतश्चैव ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ १७ ॥
स्त्रीहन्ता बालघाती च सुरापो वृषलीपतिः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यः पठेन्नाऽत्र संशयः ॥ १८ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥ १९ ॥
आपदो हरते नित्यं विष्णुस्तोत्रार्थसम्पदा ।
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं विष्णुपञ्जरमुत्तमम् ॥ २० ॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
गोसहस्रफलं तस्य वाजपेयशतस्य च ॥ २१ ॥
अश्वमेध-सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
सर्वकामं लभेदस्य पठनान्नाऽत्र संशयः ॥ २२ ॥
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ २३ ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे इन्द्र-नारदसंवादे विष्णुपञ्जरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९॥

●

३०. विष्णुमहिम्नः स्तोत्रम्

महिम्नस्ते पारं विधि-हर-फणीन्द्रप्रभृतयो
विदुर्नाद्याप्यज्ञश्चलमतिरहं नाथ नु कथम् ।
विजानीयामद्धा नलिननयनात्मीयवचसो
विशुद्ध्यै वक्ष्यामीषदपि तु तथापि स्वमतितः ॥ १ ॥
यदाहुर्ब्रह्मैके पुरुषमितरे कर्म च परे-
ऽपरे बुद्धं चाऽन्ये शिवमपि च धातारमपरे ।
तथा शक्तिं केचिद् गणपतिमुतार्कं च सुधियो
मतीनां वै भेदात्त्वमसि तदशेषं मम मतिः ॥ २ ॥
शिवः पादाम्भस्ते शिरसि धृतवानादरयुतं
तथा शक्तिश्चासौ तव तनुजतेजोमयतनुः
दिनेशं चैवामुं तव नयनमूचुस्तु निगमा-
स्त्वदन्यः को ध्येयो जगति किल देवो वद विभो ॥ ३ ॥
क्वचिन्मत्स्यः कूर्मः क्वचिदपि वराहो नरहरिः
क्वचित् खर्वो रामो दशरथसुतो नन्दतनयः ।
क्वचिद् बुद्धः कल्किर्विहरसि कुमारापहृतये
स्वतन्त्रोऽजो नित्यो विभुरपि तवाक्रीडनमिदम् ॥ ४ ॥
हृताम्नायेनोक्तं स्तवनवरमाकर्ण्य विधिना
द्रुतं मात्स्यं धृत्वा वपुरजरसाद्यासुरमथो ।

क्षयं नीत्वा मृत्योर्निगमगणमुद्धृत्य जलधे-
रशेषं संगुप्तं जगदपि च वेदैकशरणम् ॥ ५ ॥
निमज्जन्तं वार्धौ नगवरमुपालोक्य सहसा
हितार्थं देवानां कमठवपुषा-ऽऽविश्य गहनम् ।
पयोराशिं पृष्ठे तमजित-सलीलं धृतवतो
जगद्धातुस्ते-ऽभूत् किम सुलभभाराय गिरिकः ॥ ६ ॥
हिरण्याक्षः क्षोणीमविशदसुरो नक्रनिलयं
समादायामर्त्यैः कमलजमुखैरम्बरगतैः ।
स्तुतेनानन्तात्मन्न-चिरमवभाति स्म विधृता
त्वया दंष्टाग्रेऽसाववनिरखिला कन्दुक इव ॥ ७ ॥
हरिः क्वास्तीत्युक्ते दनुजपतिनाऽऽपूर्य निखिलं
जगन्नादैः स्तम्भान्नरहरि शरीरेण करजैः ।
समुत्पत्त्याशूरा-वसुरवरमादारितवत-
स्तवाख्याता भूमन् किमु जगति नो सर्वगतता ॥ ८ ॥
विलोक्याजं द्वार्गं कपटलघुकायं सुररिपु-
र्निषिद्धोऽपि प्रादादसुरगुरुणात्मीयमखिलम् ।
प्रसन्नस्तद्भक्त्या त्यजसि किल नाद्यापि भवनं
बलेर्भक्ताधीन्यं तव विदितमेवामरपते ॥ ९ ॥
समाधावासक्तं नृपतितनयैर्वीक्ष्य पितरं
हतं बाणै रोषादुरुतरमुपादाय परशुम् ।
विना क्षत्रं विष्णो क्षितितलमशेषं कृतवतो-
ऽसिंक भूभारोद्धरणपटुता ते न विदिता ॥ १० ॥
समाराध्योमेशं त्रिभुवनमिदं वासवमुखं
वशे चक्रे चक्रिन्नगणयदनीशं जगदिदम् ।
गतोऽसौ लङ्केशस्त्वचिरमथ ते बाणविषयं
न केनाप्तं त्वत्तः फलमविनयस्यासुररिपोः ॥ ११ ॥
क्वचिद्दिव्यं शौर्यं क्वचिदपि रणे कापुरुषता
क्वचिद् गीताज्ञानं क्वचिदपि परस्त्रीविहरणम् ।

क्वचिन्मृत्स्नाशित्वं क्वचिदपि च वैकुण्ठविभव-
श्चरित्रं ते नूनं शरणदविमोहाय कुधियाम् ॥ १२ ॥
न हिंस्यादित्येतद् ध्रुवमवितथं वाक्यमबुधै-
रथाग्नीषोमीयं पशुमिति तु विप्रैर्निगदितम् ।
तवैत्तत्रास्थानेऽसुरगणविमोहाय गदतः
समृद्धिर्नीचानां नयकर हि दुःखाय जगतः ॥ १३ ॥
विभागे वर्णानां निगमनिचये चावनितले
विलुप्ते सञ्जातो द्विजवरगृहे शम्भलपुरे ।
समारुह्याश्वं स्वं लसदसिकरो म्लेच्छनिकरान्
निहन्तास्युन्मत्तान् किल कलियुगान्ते युगपते ॥ १४ ॥
गभीरे कासारे जलचरवराकृष्टचरणो
रणेऽशक्तो मज्जन्नभयद जलेऽचिन्तयदसौ ।
यदा नागेन्द्रस्त्वां सपदि पदपाशादपगतो
गतः स्वर्गं स्थानं भवति विपदां ते किमु जनः ॥ १५ ॥
सुतैः पृष्टो वेधाः प्रतिवचनदानेऽप्रभुरसा-
वथात्मन्यात्मानं शरणमगमत्त्वां त्रिजगताम् ।
ततस्तेऽस्तातङ्का ययुरथ मुदं हंसवपुषा
त्वया ते सार्वज्ञं प्रथितममरेशेह किमु नो ॥ १६ ॥
समाविद्धो मातुर्वचनविशिखैराशु विपिनं
तपश्चक्रे गत्वा तव परमतोषाय परमम् ।
ध्रुवो लेभे दिव्यं पदमचलमल्पेऽपि वयसि
किमस्त्यस्मिंल्लोके त्वयि वरद तुष्टे दुरधिगम् ॥ १७ ॥
वृकाद्भीतस्तूर्णं स्वजनभयभित्त्वा पशुपति-
र्भ्रमँल्लोकान् सर्वान् शरणमुपयातोऽथ दनुजः ।
स्वयं भस्मीभूतस्तव वचनभङ्गोद्गतमती
रमेशाहो माया तव दुरनुमेयाऽखिलजनैः ॥ १८ ॥
हृतं दैत्यैर्दृष्ट्वाऽमृतघटमजय्यैस्तु नयतः
कटाक्षैः सम्मोहं युवतिवरवेषेण दितिजान् ।

समग्रं पीयूषं सुभग सुरपूगाय ददतः
समस्यापि प्रायस्तव खलु हि भृत्येष्वभिरतिः ॥१९॥
समाकृष्टा दुष्टैर्द्रुपदतनयाऽलब्धशरणा
सभायां सर्वात्मंस्तव शरणमुच्चैरुपगता ।
समक्षं सर्वेषामभवदचिरं चौरनिचयः
स्मृतेस्ते साफल्यं नयनविषयं नो किमु सताम् ॥२०॥
वदन्त्येके स्थानं तव वरद वैकुण्ठमपरे
गवां लोकं लोकं फणिनिलयपातालमितरे ।
तथाऽन्ये क्षीरोदं हृदयनलिनं चापि तु सतां
न मन्ये तत्स्थानं त्वहमिह च यत्राऽसि न विभो ॥२१॥
शिवोऽहं रुद्राणामहममरराजो दिविषदां
मुनीनां व्यासोऽहं सुरवरसमुद्रोऽस्मि सरसाम् ।
कुबेरो यक्षाणामिति तव वचो मन्दमतये
न जाने तज्जातं जगति ननु यन्नासि भगवन् ॥२२॥
शिरो नाको नेत्रे शशिदिनकरावम्बरमुरो
निशि श्रोत्रे वाणी निगमनिकरस्ते कटिरिला ।
अकूपारो बस्तिश्चरणमपि पातालमिति वं
स्वरूपं तेऽज्ञात्वा नृतनुमवजानन्ति कुधियः ॥२३॥
शरीरं वैकुण्ठं हृदयनलिनं वाससदनं
मनोवृत्तिस्ताक्ष्यों मतिरियमथो सागरसुता ।
विहारस्तेऽवस्थात्रितयमसवः पार्षदगणो
न पश्यत्यज्ञा त्वामिह बहिरहो याति जनता ॥२४॥
सुधीरं कान्तारं विशति च तडागं सुगहनं
तथोत्तुङ्गं श्रृङ्गं सपदि च समारोहति गिरेः ।
प्रसूनार्थं चेतोऽम्बुजममलमेकं त्वयि विभो
समर्प्याज्ञस्तूर्णं बत न च सुखं विन्दति जनः ॥२५॥
कृतैकान्तावासा विगतनिखिलाशाः शमपरा
जितश्वासोच्छ्वासास्त्रुटितभवपाशाः सुयमिनः ।

परं ज्योतिः पश्यन्त्यनघ यदि पश्यन्तु मम तु
श्रियाश्लिष्टं भूयान्नयनविषयं ते किल वपुः ॥२६॥
कदा गङ्गोत्तुङ्गामलतरतरङ्गाच्छपुलिने
वसन्नाशापाशादखिल-खलदाशादपगतः ।
अये लक्ष्मीकान्ताम्बुजनयन् तातामरपते
प्रसीदेत्याजल्पन्नमरवर नेष्यामि समयम् ॥२७॥
कदा शृङ्गैः स्फीते मुनिगणपरीते हिमनगे
द्रुमावीते शीते सुरमधुरगीते प्रतिवसन् ।
क्वचिद्ध्यानासक्तो विषयसुविरक्तो भवहरं
स्मरंस्ते पादाब्जं जनिहर समेष्यामि विलयम् ॥२८॥
सुधापानं ज्ञानं न च विपुलदानं न निगमो
न यागो नो योगी न च निखिलभोगोपरमणम् ।
जपो नो नो तीर्थं व्रतमिह न चोग्रं त्वयि तपो
विना भक्तिं तेऽलं भवभयविनाशाय मधुहन् ॥२९॥
नमः सर्वेष्टाय श्रुतिशिखरदृष्टाय च नमो
नमोऽसश्लिष्टाय त्रिभुवननिविष्टाय च नमः ।
नमो विस्पष्टाय प्रणवपरिमृष्टाय च नमो
नमस्ते सर्वात्मन् पुनरपि पुनस्ते मम नमः ॥३०॥
कणान् कश्चिद् वृष्टेर्गणन-निपुणस्तूर्णमवने-
स्तथाऽशेषान् पांसूनमत कलयेच्चापि तु जनः ।
नभः पिण्डीकुर्यादचिरमपि चेच्चर्मवदिदं
तथापीशासौ ते कलयितुमलं नाऽखिलगुणान् ॥३१॥
क्व माहात्म्यं सोमीज्झितमविषयं वेदवचसां
विभो ते मे चेतः क्व च विविधतापाहतमिदम् ।
मयेदं यत् किञ्चिद् गदितमथ बाल्येन तु गुरो
गृहाणैतच्छुद्धार्पितमिह न हेयं हि महताम् ॥३२॥
इति हरिस्तवनं सुमनोहरं परमहंसजनेन समीरितम् ।
सुगमसुन्दरसारपदास्पदं तदिदमस्तु हरेरनिशं मुदे ॥३३॥

गदारथाङ्गाम्बुजकम्बुधारिणो रमासमाश्लिष्टतनोस्तनोतु नः ।
बिलेशयाधीश-शरीरशायिनः शिवः स्तवोऽजस्रमयं परं हरेः ॥३४॥
पठेदिमं यस्तु नरः परं स्तवं समाहितोऽघौघ-घनप्रभञ्जनम् ।
स विन्दतेऽत्राखिल-भोगसम्पदो महीयते विष्णुपदे ततो ध्रुवम् ॥३५॥

इति श्रीमत्परमहंसब्रह्मानन्दविरचितं श्रीविष्णुमहिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३०॥

●

३१. सङ्कष्टनाशनं विष्णुस्तोत्रम्

नारद उवाच

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ।
भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १ ॥

देवा ऊचुः

नमो मत्स्य-कूर्मादि-नानास्वरूपैः
सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे ।
विधात्रादि-सर्गस्थिति-ध्वंसकर्त्रे
गदा-शङ्ख-पद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥ २ ॥
रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे
भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ।
मखादि-क्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे
शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ३ ॥
नमो दैत्य-सन्तापिता-मर्त्यदुःखा-
चलध्वंस-दम्भोलये विष्णवे ते ।
भुजङ्गेश-तल्पेशयायार्कचन्द्र-
द्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ४ ॥

नारद उवाच

सङ्कष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत् पठेन्नरः ।
स कदाचिन्न सङ्कष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥ ५ ॥

इति पद्मपुराणे पृथुनारदसंवादे सङ्कष्टनाशनं नाम विष्णुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३१॥

३२. विष्णोरष्टनामस्तोत्रम्

अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् ।
हंसं नारायणं चैवमेतन्नामाऽष्टकं पठेत् ॥ १ ॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं दारिद्र्यं तस्य नश्यति ।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःस्वप्नः सुखदो भवेत् ॥ २ ॥
गङ्गायां मरणं चैव दृढा भक्तिस्तु केशवे ।
ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च तस्मान्नित्यं पठेन्नरः ॥ ३ ॥

इति वामनपुराणे विष्णोर्नामाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३२॥

●

३३. विष्णोः षोडशनामस्तोत्रम्

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम् ।
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम् ॥ १ ॥
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम् ।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे ॥ २ ॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं सङ्कटे मधुसूदनम् ।
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम् ॥ ३ ॥
जलमध्ये वराहं च पर्वते रघुनन्दनम् ।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम् ॥ ४ ॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥

इति श्रीविष्णोः षोडशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३३॥

●

३४. विष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

अर्जुन उवाच

किं नु नामसहस्राणि जपन्ते च पुनः पुनः ।
यानि नामानि दिव्यानि तानि चाऽऽचक्ष्व केशव ॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

मत्स्यं कूर्मं वराहं च वामनं च जनार्दनम् ।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं माधवं मधुसूदनम् ॥ २ ॥
पद्मनाभं सहस्राक्षं वनमालिं हलायुधम् ।
गोवर्धनं हृषीकेशं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ॥ ३ ॥
विश्वरूपं वासुदेवं रामं नारायणं हरिम् ।
दामोदरं श्रीधरं च वेदाङ्गं गरुडध्वजम् ॥ ४ ॥
अनन्तं कृष्णगोपालं जपतो नास्ति पातकम् ।
गवां कोटिप्रदानस्य अश्वमेधशतस्य च ॥ ५ ॥
कन्यादानसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।
अमायां वां पौर्णमास्यामेकादश्यां तथैव च ॥ ६ ॥
सन्ध्याकाले स्मरेन्नित्यं प्रातःकाले तथैव च ।
मध्याह्ने च जपन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७ ॥

इति विष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ३४ ॥

●

३५. विष्णोः शतनामस्तोत्रम्

नारद उवाच

ॐ वासुदेवं हृषीकेशं वामनं जलशायिनम् ।
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवक्षं गरुडध्वजम् ॥ १ ॥
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम् ।
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमजमव्ययम् ॥ २ ॥
नारायणं गदाध्यक्षं गोविन्दं कीर्तिभाजनम् ।
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम् ॥ ३ ॥
वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम् ।
चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम् ॥ ४ ॥
वैकुण्ठं दुष्टदमनं भूगर्भं पीतवाससम् ।
त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नन्दिकेश्वरम् ॥ ५ ॥

रामं रामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम् ।
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मङ्गलं मङ्गलायुधम् ॥ ६ ॥
दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम् ।
वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वासुदेवजम् ॥ ७ ॥
हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
सकलं निष्फलं शुद्धं निर्गुणं गुणशाश्वतम् ॥ ८ ॥
हिरण्यतनुसङ्काशं सूर्यायुतसमप्रभम् ।
मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम् ॥ ९ ॥
ज्योतिरूपमरूपं च स्वरूपं रूपसंस्थितम् ।
सर्वज्ञं सर्वरूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम् ॥१०॥
ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम् ।
योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम् ॥११॥
ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम् ।
इति नामशतं दिव्यं वैष्णवं खलु पापहम् ॥१२॥
व्यासेन कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स भवेद् वैष्णवो नरः ॥१३॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
चान्द्रायणसहस्राणि कन्यादानशतानि च ॥१४॥
गवां लक्षसहस्राणि मुक्तिभागी भवेन्नरः ।
अश्वमेधायुतं पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः ॥१५॥

इति विष्णुपुराणे विष्णुशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ३५॥

•

३६. विष्णुस्तवराजः

पद्मोवाच

योगेन सिद्ध–विबुधैः परिभाव्यमानं
लक्ष्म्यालयं तुलसिकाचित-भक्तभृङ्गम् ।
प्रोत्तुङ्गरक्त-नखराङ्गुलि-पत्रचित्रं
गङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥ १ ॥

गुम्फन् मणिप्रचय-घट्टितराजहंस-
सिञ्जत्सुनूपुरयुतं पदपद्मवृन्दम् ।
पीताम्बराञ्चल-विलोल–चलत्पताकं
स्वर्णत्रिवक्रवलयं च हरेः स्मरामि ॥ २ ॥

जङ्घे सुपर्ण-गल-नीलमणि-प्रवृद्ध-
शोभास्पदारुण-मणिद्युति-चञ्चुमध्ये ।
आरक्त-पादतल-लम्बनशोभमाने
लोकेक्षणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ॥ ३ ॥

ते जानुनी मखपतेर्भुजमूलसङ्ग-
रङ्गोत्सवावृत-तडिद्वसने विचित्रे ।
चञ्चत्पतत्रिमुख-निर्गतसामगीत-
विस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ॥ ४ ॥

विष्णोः कटिं विधि-कृतान्त-मनोजभूमिं
जीवाण्डकोशगण-सङ्गदुकूलमध्याम् ।
नानागुणप्रकृति-पीतविचित्रवस्त्रां
ध्याये निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ॥ ५ ॥

शान्तोदरं भगवतस्त्रिवलि-प्रकाश-
मावर्तनाभिविकसद्-विधिजन्मपद्मम् ।
नाडीनदी-गणरसोत्थसितान्त्रसिन्धुं
ध्यायेऽण्डकोशनिलयं तनुलोमरेखम् ॥ ६ ॥

वक्षः पयोधितनयाकुचकुङ्कुमेन
हारेण कौस्तुभमणिप्रभया विभातम् ।
श्रीवत्सलक्ष्म हरिचन्दनजप्रसून-
मालोचितं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥ ७ ॥
बाहू सुवेषसदनौ वलयाङ्गदादि-
शोभास्पदौ दुरितदैत्य-विनाशदक्षौ ।
तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासुनाभ-
तेजोर्जितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ॥ ८ ॥
वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्मशङ्खौ
श्यामौ करीन्द्रकरवन्मणिभूषणाढ्यौ ।
रक्ताङ्गुलिप्रचय-चुम्बितजानुमध्यौ
पद्मालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ॥ ९ ॥
कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य
लेखात्रयेण वनमालिकया निवीतम् ।
किम्वा विमुक्तिवशमन्त्रक-सत्फलस्य
वृन्तं चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥१०॥
वक्त्राम्बुजं दशनहासविकास-रम्यं
रक्ताधरौष्ठ-वरकोमलवाक्सुधाढ्यम् ।
सन्मानसोद्भव-चलेक्षण-पत्रचित्रं
लोकाभिराममलं च हरेः स्मरामि ॥११॥
सूरात्मजावसथ-गन्धमिदं सुनासं
भ्रूपल्लवं स्थितिलयोदयकर्मदक्षम् ।
कामोत्सवं च कमलाहृदयप्रकाशं
सञ्चिन्तयामि हरिवक्त्रविलासदक्षम् ॥१२॥
कर्णौ लसन्मकर-कुण्डलगन्धलोलौ
नानादिशां च नभसश्च विकासगेहम् ।
लोलालक-प्रचयचुम्बन-कुञ्चिताग्रौ
लग्नौ हरेर्मणिकिरीटतटे स्मरामि ॥१३॥

भालं विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्ध-
गोरोचना-रचनया ललनाक्षिसख्यम् ।
ब्रह्मैकधाम-मणिकान्त-किरीटजुष्टं
ध्याये मनोनयनहारकमीश्वरस्य ॥१४॥
श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिलं निबद्धं
नानासुगन्धिकुसुमैः स्वजनादरेण ।
दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं
ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ॥१५॥
मेघाकारं सोमसूर्यप्रकाशं सुभ्रून्नासं शक्रचापैकमानम् ।
लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैलं चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् ॥१६॥
दीनं हीनं सेवया दैवगत्या पापैस्तापैः पूरितं मे शरीरम् ।
लोभाक्रान्तं शोकमोहादिविद्धं कृपादृष्ट्या पाहि मां वासुदेव ॥१७॥
ये भक्त्याऽऽद्यां ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः षोडशश्लोकपुष्पैः ।
स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ॥१८॥
पद्मेरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥१९॥
पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेंऽहसोऽखिलात् ।
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ॥२०॥

इति कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्मप्रोक्तो विष्णुस्तवराजः सम्पूर्णः ॥३६॥

●

३७. विष्ण्वष्टकम्

पुरा सृष्ट्वाऽऽविष्टः पुरुष इति तत्प्रेक्षणमुखः
सहस्राक्षो भुक्त्वा फलमनुशयी शास्ति तमुत ।
स्वयं शुद्धं शान्तं निरवधिसुखं नित्यमचलं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनया-सेवितपदम् ॥ १ ॥
अनन्तं सत्सत्यं भवभयहरं ब्रह्म परमं
सदा भातं नित्यं जगदिदमितः कल्पितपरम् ।

मुहुर्ज्ञानं यस्मिन् रजतमिव शुक्तौ भ्रमहरं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ २ ॥

मतौ यत्सद्रूपं मृगयति बुधोऽतन्निरसनान्
न रज्जौ सर्पोऽपि मुकुरजठरे नास्ति वदनम् ।
अतोऽपार्थं सर्वं न हि भवति यस्मिंश्च तमहं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ ३ ॥

भ्रमद्धीविक्षिप्तेन्द्रियपथमनुष्यैर्हृदि विभुं
नयं वै वेद स्वेन्द्रियमपि वसन्तं निजमुखम् ।
सदा सेव्यं भक्तैर्मुनिमनसि दीप्तं मुनिनुतं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ ४ ॥

बुधा यत्तद्रूपं न हि तु नैर्गुण्यममलं
यथा येऽव्यक्तं ते सततमकलङ्कं श्रुतिनुतम् ।
यदाहुः सर्वत्रास्खलितगुणसत्ताकमतुलं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ ५॥

लयादौ यस्मिन् यद् विलयमपि उद्यत् प्रभवति
तथा जीवोपेतं गुरुकरुणया बोधजनने ।
गतं चाऽत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुनदवन्
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ ६ ॥

जडं सङ्घातं यन्निमिषलवलेशेन चपलं
यथा स्वं स्वं कार्यं प्रथयति महामोहजनकम् ।
मनोवाग्जीवानां न निर्विशति यं निर्भयपदं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ ७ ॥

गुणाख्याने यस्मिन् प्रभवति न वेदोऽपि नितरां
निषिध्यद्वाक्यार्थैश्चकित-चकितं योऽस्य वचनम् ।
स्वरूपं यद् गत्वा प्रभुरपि च तूष्णीं भवति तं
नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥ ८ ॥

विष्णवष्टकं यः पठति प्रभाते नरोऽप्यखण्डं सुखमश्नुते च ।
यन्नित्यबोधाय सुबुद्धिनोक्तं रघूत्तमाख्येन विचार्य सम्यक् ॥९॥

इति विष्णवष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ३७ ॥

●

३८. विष्णुभुजगंप्रयातस्तोत्रम्

चिदंशं विभुं निर्मलं निर्विकल्पं निरीहं निराकारमोङ्कारगम्यम् ।
गुणातीतमव्यक्तमेकं तुरीयं परं ब्रह्म यं वेद तस्मै नमस्ते ॥ १ ॥
विशुद्धं शिवं शान्तमाद्यन्तशून्य जगज्जीवनं ज्योतिरानन्दरूपम् ।
अदिग्देश-काल-व्यवच्छेदनीयं त्रयी वक्ति यं वेद तस्मै नमस्ते ॥ २ ॥
महायोगपीठे परिभ्राजमाने धरण्यादितत्त्वात्मके शक्तियुक्ते ।
गुणाहस्करे वह्निबिम्बार्धमध्ये समासीनमोङ्कर्णिकेऽष्टाक्षराब्जे ॥ ३ ॥
समानोदितानेकयेन्दुकोटिप्रभापूरतुल्यद्युतिं दुर्निरीक्षम् ।
न शीतं न चोष्णं सुवर्णावदातप्रसन्नं सदानन्दसंवित्स्वरूपम् ॥ ४ ॥
सुनासापुटं सुन्दरभ्रू ललाटं किरीटोचिताकुञ्चितस्निग्धकेशम् ।
स्फुरत्पुण्डरीकाभिरामायताक्षं समुत्फुल्लरत्नप्रसूनावतंसम् ॥ ५ ॥
लसत्कुण्डलामृष्ट-गण्डस्थलान्तं जपारागचोराधरं चारुहासम् ।
अलिव्याकुलामोदि-मन्दारमालं महोदेस्फुरत्कौस्तुभोदारहारम् ॥ ६ ॥
सुरत्नाङ्गदैरन्वितं बाहुदण्डैश्चतुर्भिश्चलत्कङ्कणालङ्कृताग्रैः ।
उदारोदरालंकृतं पीतवस्त्रं पदद्वन्द्व-निर्धूत-पद्माभिरामम् ॥ ७ ॥
स्वभक्तेषु सन्दर्शिताकारमेवं सदा भावयन् सन्निरुद्धेन्द्रियाश्वः ।
दुरापं नरो याति संसारपारं परस्मै परेभ्योऽपि तस्मै नमस्ते ॥ ८ ॥
श्रिया शातकुम्भद्युति-स्निग्धकान्त्या धरण्या च दूर्वादलश्यामलाङ्ग्या ।
कलत्रद्वयेनामुनातोषिताय त्रिलोकीगृहस्थाय विष्णो नमस्ते ॥ ९ ॥
शरीरं कलत्रं सुतं बन्धुवर्गं वयस्यं धनं सद्म भृत्यं भुवं च ।
समस्तं परित्यज्य हा कष्टमेको गमिष्यामि दुःखेन दूरं किलाहम् ॥१०॥
जरेयं पिशाचीव हा जीवतो मे वसामत्ति रक्तं च मांसं बलं च ।
अहो देव सीदामि दीनानुकम्पिन् किमद्यापि हन्त त्वयोदासितव्यम् ।११।

कफ-व्याहतोष्णोल्वणश्वासवेग-व्यथाविस्फुरत्सर्वमर्मास्थिबन्धाम् ।
विचिन्त्याहमन्त्यामसंख्यामवस्थां बिभेमि प्रभो किं करोमि प्रसीद।।१२।
लपन्नच्युतानन्त गोविन्द विष्णो मुरारे हरे नाथ नारायणेति ।
यथानुस्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं तथा मे दयाशील देव प्रसीद ।।१३।।
भुजङ्गप्रयातं पठेद्यस्तु भक्त्या समाधाय चित्ते भवन्तं मुरारे ।
स मोहं विहायाशु युष्मत्प्रसादात् समाश्रित्य योगं व्रजत्यच्युतं त्वाम् ।१४।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ

विष्णुभुजंगप्रयातस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।३८।।

●

३९. श्रीविष्णुस्तुतिः

बहुदुःखभरोदर्कस्तमसोग्रतमोधमः ।
नरको नर को वा तं मतिमानतिवर्तते ।। १ ।।
नरकान्तक-पादाब्ज-परिचर्यापरान्नरान् ।
विना विनायकाद्यर्चापरोऽप्युच्चतरोरितः ।। २ ।।
पतेत्तत्र न तत्त्राणं कुर्युस्ते पर्युपासिताः ।
पश्य दृश्यपदद्वन्द्वस्यार्थं न व्यर्थधीर्भव ।। ३ ।।
असुरो हि सुरक्लेशकरो नरकनामकः ।
तस्य हन्ता सतां चिन्तासन्तापाद्यन्तकृन्न किम् ।। ४ ।।
विशेषेण घ्नन्ति कार्यं विघ्नास्तेषामधीश्वरः ।
आरब्धशुभकार्याणां विरुद्धस्य हि नायकाः ।। ५ ।।
अजामिलो द्विजः पूर्वमतिचक्राम केन तान् ।
सासुराः कस्य भजकाः कुतो वा तत्र चक्रमुः ।। ६ ।।
इति चिन्तय तेनापि सन्देहं छिन्धि सन्मते ।
गङ्गासेतू पापभङ्गकरौ कः कुरुते प्रभुः ।। ७ ।।
हयाननस्य वाक्शेष्यो नाभिपुत्रः पदार्चकः ।
गुरुर्हि तस्य भ्रूभङ्गः शिवाय स्यात् सतां सदा ।। ८ ।।

वादिराजयतिप्रोक्तं स्तोत्रमेतत् पठन् सदा।
वादे विजयमाप्नोति नाऽधो याति कदाचन ॥ ९ ॥

इति श्रीवादिराजकृता विष्णुस्तुतिः समाप्ता ॥ ३९ ॥

४०. अच्युताष्टकस्तोत्रम् [१]

अच्युताऽच्युत हरे परमात्मन् राम कृष्ण पुरुषोत्तम विष्णो।
वासुदेव भगवन्ननिरुद्ध श्रीपति शमय दुःखमशेषम् ॥ १ ॥
विश्वमंगल विभो जगदीश नन्दनन्दन नृसिंह नरेन्द्र।
मुक्तिदायक मुकुन्द मुरारे श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ २ ॥
रामचन्द्र रघुनायक देव दीनानाथ दुरितक्षयकारिन्।
यादवेन्द्र यदुभूषण यज्ञ श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ३ ॥
देवकीतनय दुःखदवाग्ने राधिकारमण रम्यसुमूर्ते।
दुःखमोचन दयार्णव नाथ श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ४ ॥
गोपिकावदनचन्द्रचकोर नित्य निर्गुण निरञ्जन विष्णो।
पूर्णरूप जय शङ्कर सर्व श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ५ ॥
गोकुलेश गिरिधारणधीर यामुनाच्छतटखेलन वीर।
नारदादिमुनिवन्दितपाद श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ६ ॥
द्वारकाधिप दुरन्तगुणाब्धे प्राणनाथ परिपूर्ण भवारे।
ज्ञानगम्य गुणसागर ब्रह्मन् श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ७ ॥
दुष्टनिर्दलन देव दयालो पद्मनाभ धरणीधरधारिन्।
रावणान्तक रमेश मुरारे श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ८ ॥
अच्युताष्टकमिदं रमणीयं निर्मितं भव भयं विनिहन्तुम्।
यः पठेद् विषयवृत्ति-निवृत्ति-र्जन्मदुःखमखिलं स जहाति ॥ ९ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितमच्युताष्टकस्तोत्रं समाप्तम् ॥ ४० ॥

४१. अच्युताष्टकम् [२]

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ १ ॥
अच्युतं केशवं सत्य-भा-माधवं माधवं श्रीधरं राधिकाऽऽराधितम् ।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दनं सन्दधे ॥ २ ॥
विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ।
बल्लवीवल्लभायाऽर्चितायात्मने कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥ ३ ॥
कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे ।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक ॥ ४ ॥
राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः ।
लक्ष्मणेनाऽन्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम्।५।
धेनुकारिष्टकोऽनिष्टकृद्द्वेषिणां केशिहा कंसहृद्वंशिकावादिकः ।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥
विद्युदुद्द्योतवान् प्रस्फुरद्वाससं प्रावृडम्भोदवत् प्रोल्लसद्विग्रहम् ।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं लोहितांघ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे ॥७॥
कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः ।
हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥ ८ ॥
अच्युतस्याऽष्टकं यः पठेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम् ।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वम्भरं तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥९॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितमच्युताष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ४१ ॥

●

४२. मधुसूदनस्तोत्रम्

ॐमिति ज्ञानमात्रेण रोगाजीर्णेन निर्जितः ।
कालनिद्रां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ १ ॥
न गतिर्विद्यते चाऽन्या त्वमेव शरणं मम ।
पापपङ्के निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ २ ॥

मोहितो मोहजालेन पुत्र-दार-गृहादिषु ।
तृष्णया पीड्यमानोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ३ ॥
भक्तिहीनं च दीनं च दुःखशोकातुरं प्रभो ।
अनाश्रयमनाथं च त्राहि मां मधुसूदन ॥ ४ ॥
गताऽऽगतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसारवर्त्मसु ।
येन भूयो न गच्छामि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५ ॥
बहवो हि मया दृष्टा क्लेशश्चैव पृथक् पृथक् ।
गर्भवासे महद्दुःखं त्राहि मां मधुसूदन ॥ ६ ॥
तेन देव प्रपन्नोऽस्मि त्राणार्थं त्वत्परायणः ।
दुःखार्णव-परित्राणात् त्राहि मां मधुसूदन ॥ ७ ॥
वाचा यच्च प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् ।
सत्पापार्जितमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ८ ॥
सुकृतं न कृतं किञ्चिद् दुष्कृतं च कृतं मया ।
घोरे भवे निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ९ ॥
देहान्तरसहस्रेषु चाऽन्योन्यं भ्रामितो ह्यहम् ।
तिर्यक् त्वं मानुषत्वं च त्राहि मां मधुसूदन ॥१०॥
वाचयामि यथोन्मत्तः प्रलपामि तवाऽग्रतः ।
जरा-मरण-भीतोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥११॥
यत्र यत्र च यातोऽस्मि स्त्रीषु वा पुरुषेषु वा ।
तत्र तत्राऽचला भक्तिस्त्राहि मां मधुसूदन ॥१२॥
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
कदापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥१३॥
ऊर्ध्वं-पाताल-मर्त्येषु व्याप्तलोकजगत्त्रयम् ।
द्वादशाक्षरात् परं नास्ति वासुदेवेन भाषितम् ॥१४॥
द्वादशाक्षरं महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् ।
गर्भवास-निवासेन शुकेन परिभाषितम् ॥१५॥
द्वादशाक्षरं निराहारो यः पठेद् हरिवासरे ।
स गच्छेद् वैष्णवं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ॥१६॥

इति श्रीशुकदेवविरचितं मधुसूदनस्तोत्रं समाप्तम् ॥४२॥

४३. दीनबन्ध्वष्टकम्

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥
चक्रं सहस्रकरचारुकरारविन्दे गुर्वी गदा दरवरश्च विभाति यस्य।
पक्षीन्द्रपृष्ठ-परिरोपित-पादपद्मो दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥
येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना नग्ना चपाण्डववधूःस्थगितादुकूलैः
सम्मोचितो जलचरस्य मुखाद् गजेन्द्रो दृग्गोचरोभवतुमेऽद्यस दीनबन्धुः।
यस्यार्द्रदृष्टिवशतस्तु सुराः समृद्धिं कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजन्ति।
भीताश्चरन्ति च यतोऽर्कयमानिलाद्या दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः
गायन्ति सामकुशला यमजं मखेषु ध्यायन्ति वीरयतयो यतयो विविक्ते
पश्यन्ति योगिपुरुषाः पुरुषं शरीरे दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः
आकाररूपगुण-योग-विवर्जितोऽपि भक्तानुकम्पननिमित्तगृहीतमूर्तिः।
यः सर्वगोऽपि कृतशेषशरीरशय्यो दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥
यस्यांघ्रिपङ्कजमनिद्रमुनीन्द्र-वृन्दैराराध्यते भवदवानलदाहशान्त्यै।
सर्वापराधमविचिन्त्य ममाऽखिलात्मादृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः
यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं हित्वाऽखिलं कलिमलंभुवनं पुनाति।
दग्ध्वा ममाऽधमखिलं करुणेक्षणेन दृग्गोचरो भवतु मेऽद्यस दीनबन्धुः।

दीनबन्ध्वष्टकं पुण्यं ब्रह्मानन्देन भाषितम्।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति॥ ९॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं दीनबन्ध्वष्टकं सम्पूर्णम्॥ ४३॥

●

४४. गोविन्दाष्टकम्

चिदानन्दाकारं श्रुतिसरससारं समरसं
नीराधाराधारं भवजलधिपारं परगुणम्।
रमाग्रीवाहारं व्रजवनविहारं हरनुतं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे॥ १॥

महाम्भोधिस्थानं स्थिरचरनिदानं दिविजपं
सुधाधारापानं विहगपतियानं यमरतम् ।
मनोज्ञं सुज्ञानं मुनिजननिधानं ध्रुवपदम्
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ २ ॥
धिया धीरैर्ध्येयं श्रवणपुटपेयं यतिवरै-
र्महावाक्यैर्ज्ञेयं त्रिभुवनविधेयं विधिपरम् ।
मनोमानामेयं सपदि हृदि नेयं नवतनुं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ ३ ॥
महामायाजालं विमलवनमालं मलहरं
सुभालं गोपालं निहतशिशुपालं शशिमुखम् ।
गलातीतं कालं गतिहयमरालं मुररिपुं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ ४ ॥
नभोबिम्बस्फीतं निगमगणगीतं समगतिं
सुरौघैः सम्प्रीतं दितिजविपरीतं पुरिशयम् ।
गिरां पन्थातीतं स्वदितनवनीतं नयकरं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ ५ ॥
परेशं पद्मेशं शिवकमलजेशं शिवकरं
द्विजेशं देवेशं तनुकुटिलकेशं कलिहरम् ।
खगेशं नागेशं निखिलभुवनेशं नगधरं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ ६ ॥
रमाकान्तं कान्तं भवभयभयान्तं भवसुखम्
दुराशान्तं शान्तं निखिलहृदि भान्तं भुवनपम् ।
विवादान्तं दान्तं दनुजनिचयान्तं सुचरितं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ ७ ॥
जगज्जेष्ठं श्रेष्ठं सुरपतिकनिष्ठं क्रतुपतिं
बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवनवरिष्ठं वरवहम् ।
स्वनिष्ठं धर्मिष्ठं गुरुगुणगरिष्ठं गुरुवरं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥ ८ ॥

गदापाणेरेतद् दुरितदलनं दुःखशमनं
विशुद्धात्मा स्तोत्रं पठति मनुजो यस्तु सततम् ।
स भुक्त्वा भोगौघं चिरमिह ततोऽपास्तवृजिनो
वरं विष्णोः स्थानं व्रजति खलु वैकुण्ठभुवनम् ॥ ९ ॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं गोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ४४ ॥

●

४५. श्रीकमलापत्यष्टकम्

भुजगतल्पगतं घनसुन्दरं गरुडवाहनमम्बुजलोचनम् ।
नलिनचक्रगदाकरमव्ययं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥१॥
अलिकुलासितकोमलकुन्तलं विमलपीतदुकूलमनोहरम् ।
जलधिजाङ्कितवामकलेवरं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥२॥
किमु जपैश्च तपोभिरुताध्वरैरपि किमुत्तमतीर्थनिषेवणैः ।
किमुत शास्त्रकदम्बविलोकनैर्भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥३॥
मनुजदेहमिमं भुवि दुर्लभं समधिगम्य सुरैरपि वाञ्छितम् ।
विषयलम्पटतामपहाय वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥४॥
न वनिता न सुतो न सहोदरो न हि पिता जननी न च बान्धवः ।
व्रजति साकमनेन जनेन वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥५॥
सकलमेव चलं सचराचरं जगदिदं सुतरां धनयौवनम् ।
समवलोक्य विवेकदृशा द्रुतं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥६॥
विविधरोगयुतं क्षणभङ्गुरं परवशं नवमार्गमलाकुलम् ।
परिनिरीक्ष्य शरीरमिदं स्वकं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥७॥
मुनिवरैरनिशं हृदि भावितं शिवविरिञ्चिमहेन्द्रनुतं सदा ।
मरणजन्मजराभयमोचनं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥८॥
हरिपदाष्टकमेतदनुत्तमं परमहंसजनेन समीरितम् ।
पठति यस्तु समाहितचेतसा व्रजति विष्णुपदं स नरो ध्रुवम् ॥९॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीकमलापत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥४५॥

●

४६. श्रीरमापत्यष्टकम्

जगदादिमनादिमजं पुरुषं शरदम्बरतुल्यतनुं वितनुम् ।
धृतकञ्जरथाङ्गगदं विगदं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ १ ॥
कमलाननकञ्जरतं विरतं हृदि योगिजनैः कलितं ललितम् ।
कुजनैः सुजनैरलभं सुलभं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ २ ॥
मुनिवृन्द-हृदिस्थपदं सुपदं निखिला-ऽध्वरभागभुजं सुभुजम् ।
हृतवासवमुख्यमदं विमदं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ३ ॥
हृतदानव-दृप्तबलं सुबलं स्वजनास्त-समस्तमलं विमलम् ।
समपास्तगजेन्द्रदरं सुदरं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ४ ॥
परिकल्पितसर्वबलं विकलं सकलागमगीतगुणं विगुणम् ।
भवपाशनिराकरणं शरणं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ५ ॥
मृति-जन्म-जराशमनं कमनं शरणागतभीतिहरं दहरम् ।
परितुष्टरमाहृदयं सुदरं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ६ ॥
सकलावनिविम्बधरं स्वधरं परिपूरित-सर्वदिशं सुदृशम् ।
गतशोकमशोककरं सुकरं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ७ ॥
मथितार्णवराजरसं सरसं ग्रहिताऽखिललोकहृदं सुहृदम् ।
प्रथिताद्भुतशक्तिगणं सुगणं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥ ८ ॥
सुखराशिकरं भवबन्धहरं परमाष्टकमेतदनन्यमतिः ।
पठतीह तु योऽनिशमेव नरो लभते खलु विष्णुपदं स परम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीरमापत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ४६ ॥

●

४७. षट्पदीस्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥ १ ॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमल-परिभोग-सच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥ २ ॥

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाऽहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३ ॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवताऽवता सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥ ५ ॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द ।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ६ ॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ७ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं षट्पदीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ४७ ॥

●

४८. श्रीहरिस्तोत्रम्

जगज्जालपालं कचत्कण्ठमालं शरच्चन्द्रभालं महादैत्यकालम् ।
नभोनीलकायं दुरावारमायं सुपद्मासहायं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ १ ॥
सदाऽम्भोधिवासं गलत्पुष्पहासं जगत्सन्निवासं शतादित्यभासम् ।
गदाचक्रशस्त्रं लसत्पीतवस्त्रं हसच्चारुवक्त्रं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ २ ॥
रमाकण्ठहारं श्रुतिव्रातसारं जलान्तर्विहारं धराभारहारम् ।
सदानन्दरूपं मनोज्ञस्वरूपं धृतानेकरूपं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ३ ॥
जराजन्महीनं परानन्दपीनं समाधानलीनं सदैवानवीनम् ।
जगज्जन्महेतुं सुरानीककेतुं त्रिलोकैकसेतुं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ४ ॥
कृताम्नायगानं खगाधीशयानं विमुक्तेर्निदानं हरारातिमानम् ।
स्वभक्तानुकूलं जगद्वृक्षमूलं निरस्तार्तशूलं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ५ ॥
समस्तामरेशं द्विरेफाभकेशं जगद्बिम्बलेशं हृदाकाशदेशम् ।
सदा दिव्यदेहं विमुक्ताखिलेहं सुवैकुण्ठगेहं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ६ ॥
सुरालीबलिष्ठं त्रिलोकीवरिष्ठं गुरूणां गरिष्ठं स्वरूपैकनिष्ठम् ।
सदा युद्धधीरं महावीरवीरं भवाम्भोधितीरं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ७ ॥

रमावामभागं तलानग्ननागं कृताधीनयागं गतारागरागम् ।
मुनीन्द्रैः सुगीतं सुरैः सम्परीतं गुणौघैरतीतं भजेऽहं भजेऽहम् ॥८॥
इदं यस्तु नित्यं समाधाय चित्तं पठेदष्टकं कष्टहारं मुरारेः ।
स विष्णोर्विशोकं ध्रुवं याति लोकं जरा-जन्म-शोकं पुनर्विन्दते नो ॥९
इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीहरिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ४८ ॥

•

४९. श्रीहरिनामाष्टकम्

श्रीकेशवाच्युत मुकुन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द माधव जनार्दन दानवारे ।
नारायणामरपते त्रिजगन्निवास जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥१
श्रीदेवदेव मधुसूदन शार्ङ्गपाणे दामोदरार्णवनिकेतन कैटभारे ।
विश्वम्भराभरणभूषित भूमिपाल जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥२
श्रीपद्मलोचन गदाधर पद्मनाभ पद्मेश पद्मपद पावन पद्मपाणे ।
पीताम्बराम्बररुचे रुचिरावतारी जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥३
श्रीकान्त कौस्तुभधरार्तिहराब्जपाणे विष्णो त्रिविक्रम महीधर धर्मसेतो
वैकुण्ठवास वसुधाधिप वासुदेव जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥४।
श्रीनारसिंह नरकान्तक कान्तमूर्ते लक्ष्मीपते गरुडवाहन शेषशायिन् ।
केशिप्रणाशन सुकेश किरीटमौले जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥५
श्रीवत्सलाञ्छन सुरर्षभ शङ्खपाणे कल्पान्तवारिधिविहार हरे मुरारे ।
यज्ञेश यज्ञमय यज्ञभुगादिदेव जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥६॥
श्रीराम रावणरिपो रघुवंशकेतो सीतापते दशरथात्मज राजसिंह ।
सुग्रीवमित्र मृगवेधन चापपाणे जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥७॥
श्रीकृष्ण वृष्णिवर यादव राधिकेश गोवर्धनोद्धरण कंसविनाश शौरे ।
गोपाल वेणुधर पाण्डुसुतैकबन्धो जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥८
इत्यष्टकं भगवतः सततं नरो यो नामाङ्कितं पठति नित्यमनन्यचेताः ।
विष्णोः परं पदमुपैति पुनर्न जातु मातुः पयोधर-रसं पिबतीह सत्यम् ।९
इति श्रीसत्परह्महंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीहरिनामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥४९॥

•

५०. श्रीहरिशरणाष्टकम्

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै ।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेकस्तस्मात् त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे
नो सोदरो न जनको जननी न जाया नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा ।
संदृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे
नोपासिता मदमपास्य मया महान्तस्तीर्थानि चास्तिकधिया न हि सेवितानि
सेवार्चनं च विधिवन्न कृतं कदापि तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ३
दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति ।
सञ्जीवनं च परहस्तगतं सदैव तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥४॥
पूर्वं कृतानि दुरितानि मया तु यानि स्मृत्वाऽखिलानि हृदयं परिकम्पते मे
ख्याता च ते पतितपावनता तु यस्मात्तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ५
दुःखं जराजननज विविधाश्च रोगाः काक-श्व-सूकरजनिर्निरये च पातः ।
त्वद्विस्मृतेः फलमिदं विततं हि लोके तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ६
नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिन्दितोऽपि ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकवारम्
तं यच्छसीश निजलोकमिति व्रतं ते तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ।७
वेदेषु धर्मवचनेषु तथाऽऽगमेषु रामायणेऽपि च पुराणकदम्बके वा ।
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥८॥
इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीहरिशरणाष्टकं सम्पूर्णम् ॥५०॥

५१. हरिनाममालास्तोत्रम्

गोविन्दं गोकुलानन्दं गोपालं गोपिवल्लभम् ।
गोवर्धनोद्धरं धीरं तं वन्दे गोमतीप्रियम् ॥ १ ॥
नारायणं निराकारं नरवीरं नरोत्तमम् ।
नृसिंहं नागनाथं च तं वन्दे नरकान्तकम् ॥ २ ॥
पीताम्बरं पद्मनाभं पद्माक्षं पुरुषोत्तमम् ।
पवित्रं परमानन्दं तं वन्दे परमेश्वरम् ॥ ३ ॥

राघवं रामचन्द्रं च रावणाऽरिं रमापतिम् ।
राजीवलोचनं रामं तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥ ४ ॥
वामनं विश्वरूपं च वासुदेवं च विट्ठलम् ।
विश्वेश्वरं विभुं व्यासं तं वन्दे देवकीसुतम् ॥ ५ ॥
दामोदरं दिव्यसिंहं दयालुं दीननायकम् ।
दैत्यारिं देवदेवेशं तं वन्दे देवकीसुतम् ॥ ६ ॥
मुरारिं माधवं मत्स्यं मुकुन्दं मुष्टि-मर्दनम् ।
मुञ्जकेशं महाबाहुं तं वन्दे मधुसूदनम् ॥ ७ ॥
केशवं कमलाकान्तं कामेशं कौस्तुभप्रियम् ।
कौमोदकीधरं कृष्णं तं वन्दे कौरवान्तकम् ॥ ८ ॥
भूधरं भुवनानन्दं भूतेशं भूतनायकम् ।
भावनैकं भुजङ्गेशं तं वन्दे भवनाशनम् ॥ ९ ॥
जनार्दनं जगन्नाथं जगज्जाड्य-विनाशकम् ।
जामदग्निं वरं ज्योतिस्तं वन्दे जलशायिनम् ॥१०॥
चतुर्भुजं चिदानन्दं चाणूरमल्लमर्दनम् ।
चराऽचरगतं देवं तं वन्दे चक्रपाणिनम् ॥११॥
श्रियःकरं श्रियो नाथं श्रीधरं श्रीवरप्रदम् ।
श्रीवत्सलधरं सौम्यं तं वन्दे श्रीसुरेश्वरम् ॥१२॥
योगीश्वरं यज्ञपतिं यशोदानन्ददायकम् ।
यमुनाजल-कल्लोलं तं वन्दे यदुनायकम् ॥१३॥
शालिग्रामशिलाशुद्धं शङ्खचक्रोप-शोभितम् ।
सुरा-ऽसुर-सदासेव्यं तं वन्दे साधुवल्लभम् ॥१४॥
त्रिविक्रमं तपोमूर्तिं त्रिविधा-ऽघौघनाशनम् ।
त्रिस्थलं तीर्थराजेन्द्रं तं वन्दे तुलसीप्रियम् ॥१५॥
अनन्तमादि-पुरुषमच्युतं च वरप्रदम् ।
आनन्दं च सदाऽऽनन्दं तं वन्दे चाऽघनाशनम् ॥१६॥
लीलया धृतभूभारं लोकसत्त्वैकवन्दितम् ।
लोकेश्वरं च श्रीकान्तं तं वन्दे लक्ष्मणप्रियम् ॥१७॥

हरिं च हरिणाक्षं च हरिनाथं हरिप्रियम् ।
हलायुधसहायं च तं वन्दे हनुमत्पतिम् ॥१८॥
हरिनामकृता माला पवित्रा पापनाशिनी ।
बलिराजेन्द्रेण चोक्ता कण्ठे धार्या प्रयत्नतः ॥१९॥
इति बलिराजेन्द्रेणोक्तं हरिनाममालास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ५१ ॥

५२. हरिमीडेस्तोत्रम्

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
यस्मिन्नेतत् संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम् ।
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत्संसृतिचक्रं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १ ॥
यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेतत्
प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुनरित्थम् ।
येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुख-दुःखै-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २ ॥
सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वः सकलो यो
यश्चाऽऽनन्दोऽनन्तगुणो यो गुणधामा ।
यश्चाऽव्यक्तो व्यस्तसमस्तः सदसद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३ ॥
यस्मादन्यन्नास्त्यपि नैवं परमार्थं
दृश्यादन्यो निर्विशयज्ञानमयत्वात् ।
ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयविहीनोऽपि सदा ज्ञ-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ४ ॥
आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माऽच्युततत्त्वा
वैराग्येणाऽभ्यासबलाच्चैव द्रढिम्ना ।
भक्त्यैकाग्रध्यानपरा यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ५ ॥

प्राणानायम्योमिति चित्तं हृदि रुद्ध्वा
नान्यत् स्मृत्वा तत्पुनरत्रैव विलाप्य ।
क्षीणे चित्ते भादृशिरस्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ६ ॥
यं ब्रह्माख्यं देवमनन्यं परिपूर्णं
हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममतर्क्यम् ।
ध्यात्वाऽऽत्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ७ ॥
मात्राऽतीतं स्वात्मविकासात्मविबोधं
ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्यम् ।
भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ८ ॥
यद्यद् वेद्यं वस्तु सतत्त्वं विषयाख्यं
तत्तद् ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च ।
ध्यायन्त्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ९ ॥
यद्यद् वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय
स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमयाप्य ।
तस्मिन्नस्मीयात्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१०॥
हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं
मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं गगनाभम् ।
त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्ता-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥११॥
सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः सर्वं
वेत्त्यैवेह न यं वेत्ति च सर्वः ।
सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमनन्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१२॥

सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्वा जगदेतद्
दृष्ट्वाऽऽत्मानं चैवमजं सर्वजनेषु ।
सर्वात्मैकोऽस्मीति विदुर्यं जनहृत्स्थं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१३॥
सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते
प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिम यम् ।
साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चाऽन्ये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१४॥
पश्यन् शृण्वन्नत्र विजानन् रसयन् सन्
जिघ्रन् बिभ्रद् देहमिमं जीवतयेत्थम् ।
इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषयज्ञं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१५॥
जाग्रद् दृष्ट्वा स्थूलपदार्थानथ मायां
दृष्ट्वा स्वप्नेऽथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम् ।
इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदास्ते च तुरीये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१६॥
पश्यञ्शुद्धोऽप्यक्षर एको गुणभेदान्
नानाकारान् स्फाटिकवद् भाति विचित्रः ।
भिन्नश्छिन्नश्चाऽयमजः कर्मफलैर्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१७॥
ब्रह्मा-विष्णू रुद्र-हुताशौ रवि-चन्द्रा-
विन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य ।
एकं सन्तं यं बहुधाऽऽहुर्मतिभेदात्
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१८॥
सत्यं ज्ञानं शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं
शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम् ।
इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१९॥

कोशानेतान् पञ्चरसादीनतिहाय
ब्रह्माऽस्मीति स्वात्मनि निश्चित्य हृदिस्थः ।
पित्राऽऽदिष्टो भृगुर्यं यजुरन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२०॥

येनाऽऽविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः
क्षेत्रज्ञोयं कारयिता जन्तुषु कर्तुः ।
कर्ता भोक्ताऽऽत्माऽत्र हि चिच्छक्त्यधिरूढ-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२१॥

सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं
व्याप्याऽथान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम् ।
सच्च त्यच्चाऽभूत् परमात्मा स य एक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२२॥

वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च पुराणैः
शास्त्रैश्चाऽन्यैः सात्त्वततन्त्रैश्च यमीशम् ।
दृष्ट्वाऽथान्तश्चेतसि बुद्ध्या विविशुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२३॥

श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-शमाद्यैर्यतमानैर्ज्ञातुं
शक्यो देव इहैवाशु य ईशः ।
दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि विना तै-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२४॥

यस्याऽतर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं
सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः ।
तज्जातित्वादब्धितरङ्गाभमभिन्नं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२५॥

दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधिनाजं
भक्त्या गुर्व्या लभ्य हृदिस्थं दृशिमात्रम् ।
ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२६॥

क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पञ्चमुखैर्यो
भुङ्क्तेऽजस्रं भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः ।
क्षेत्रे क्षेत्रेष्विन्दुवदेको बहुधाऽऽस्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२७॥

युक्त्याऽऽलोड्य व्यास-वचांस्यत्र हि लभ्यः
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः पुरुषाख्यः ।
योऽहं सोऽसौ सौऽस्म्यहमेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२८॥

एकीकृत्याऽनेकशरीरस्थमिमं ज्ञं
यं विज्ञायेहैव स एवाशु भवति ।
यस्मिल्लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२९॥

द्वन्द्वैकत्वं यच्च मधुब्राह्मणवाक्यैः
कृत्वा शक्रोपासनमासाद्य विभूत्या ।
योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३०॥

योऽयं देहे चेष्टयिताऽन्तः करणस्थः
सूर्ये चाऽसौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव ।
इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३१॥

विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्याधिरूढो
बुद्धिर्बुद्ध्यत्यत्र बहिर्बोध्यपदार्थान् ।
नैवान्तःस्थं बुद्ध्यत्यति तं बोधयितारं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३२॥

कोऽयं देहे देव इतीत्थं सुविचार्यं ज्ञाता
श्रोताऽऽनन्दयिता चैष हि देवः ।
इत्यालोच्य ज्ञांशमिहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३३॥

को ह्येवान्यदात्मनि न स्यादयमेष ह्येवानन्दः
प्राणिति चापानिति चेति।
इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्त्या श्रुतिरेषा
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३४॥

प्राणो वाऽहं वाक्-श्रवणादीनि मनो वा
बुद्धिर्वाऽहं व्यस्त उताहोऽपि समस्तः।
इत्यालोक्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३५॥

नाऽहं प्राणो नैव शरीरं न मनोऽहं
नाऽहं बुद्धिर्नाऽहमहङ्कारधियौ च।
योऽत्र ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३६॥

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्
सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय।
नाम्नामन्ते प्राह पिता यं विभुमाद्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३७॥

मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ दृश्यं
सर्वं नेति च नेतीति विहाय।
चैतन्यांशे स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३८॥

ओतं प्रोतं यत्र च सर्गं गगनान्तं
यो स्थूलानण्वादिषु सिद्धोऽक्षरसंज्ञः।
ज्ञाताऽतोऽन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३९॥

तावत् सर्वं सत्यमिवाभाति यदेत-
द्यावत् सोऽस्मीत्यात्मनि यो ज्ञो न हि दृष्टः।
दृष्टे तस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३०॥

रागामुक्तं लोहयुतं हेम यथाऽग्नौ
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४१॥
यं विज्ञानज्योतिषमाद्यं सुविभान्तं
हृद्यर्केन्द्वग्न्योकसमीढ्यं तडिदाभम् ।
भक्त्याराध्येहैव विशन्त्यात्मनि
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४२॥
पायाद्भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो
भक्त्या स्तौत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम् ।
इत्यात्मानं स्वात्मनि संहृत्य सदैक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४३॥
इत्थं स्तोत्रं भक्तजनेड्यं भवभीति-
ध्वान्तार्काभं भगवत्पादीयमिदं यः ।
विष्णोर्लोकं पठति शृणोति व्रजति ज्ञानं
ज्ञेयं स्वात्मनि चाऽऽप्नोति मनुष्यः ॥४४॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं हरिमीडेस्तोत्रं समाप्तम् ॥ ५२ ॥

५३. शालिग्रामशिलास्तोत्रम्

अस्य श्रीशालिग्रामस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीभगवानृषिः, नारायणो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीशालिग्रामस्तोत्रमन्त्रजपे विनियोगः ।

युधिष्ठिर उवाच

श्रीदेवदेव ! देवेश ! देवतार्चनमुत्तमम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे पुरुषोत्तम ! ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

गण्डक्यां चोत्तरे तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे ।
दशयोजनविस्तीर्णा महाक्षेत्रवसुन्धरा ॥ २ ॥
शालिग्रामो भवेद् देवो देवी द्वारावती भवेत् ।
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥ ३ ॥

शालिग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ।
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥ ४ ॥
आजन्मकृतपापानां प्रायश्चित्तं य इच्छति ।
शालिग्रामशिलावारि पापहारि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधि-विनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥ ६ ॥
शङ्खमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि ।
अङ्गलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यादिकं दहेत् ॥ ७ ॥
स्नानोदकं पिबेन्नित्यं चक्राङ्कितशिलोद्भवम् ।
प्रक्षाल्य शुद्धं तत्तोयं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८ ॥
अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
सम्यक् फलमवाप्नोति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥ ९ ॥
नैवेद्ययुक्तां तुलसीं च मिश्रितां विशेषतः पादजलेन विष्णोः ।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञाऽयुतकोटिपुण्यम् ॥१०॥
खण्डिताः स्फुटिता भिन्ना वह्निदग्धास्तथैव च ।
शालिग्रामशिला यत्र तत्र दोषो न विद्यते ॥११॥
न मन्त्रः पूजनं नैव न तीर्थं न च भावना ।
न स्तुतिर्नोपचारश्च शालिग्रामशिलार्चने ॥१२॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं मनो-वाक्-कार्य-सम्भवम् ।
शीघ्रं नश्यति तत्सर्वं शालिग्रामशिलार्चनात् ॥१३॥
नानावर्णमयं चैव नानाभोगेन वेष्टितम् ।
तथा वरप्रसादेन लक्ष्मीकान्तं वदाम्यम् ॥१४॥
नारायणोद्भवो देवश्चक्रमध्ये च कर्मणा ।
तथा वरप्रसादेन लक्ष्मीकान्तं वदाम्यहम् ॥१५॥
कृष्णे शिलातले यत्र सूक्ष्मं चक्रं च दृश्यते ।
सौभाग्यं सन्ततिं धत्ते सर्वसौख्यं ददाति च ॥१६॥
वासुदेवस्य चिह्नानि दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
श्रीधरः सुकरे वामे हरिद्वर्णस्तु दृश्यते ॥१७॥

चिह्नितम् ।
वराहरूपिणं देवं कूर्माङ्गैरपि तथा ॥१८॥
गोपदं तत्र दृश्येत वाराहं वामनं भयावहम् ।
पीतवर्णं तु देवानां रक्तवर्णं प्रकीर्तितम् ॥१९॥
नारसिंहो भवेद् देवो मोक्षदं च प्रदृश्यते ।
शङ्ख-चक्र-गदा-कूर्माः शङ्खो यत्र लक्षणम् ॥२०॥
शङ्खवर्णस्य देवानां वामे देवस्य प्रतिष्ठितम् ।
दामोदरं तथा स्थूलं मध्ये चक्रं दृश्यते ॥२१॥
पूर्णद्वारेण सङ्कीर्णा पीतरेखा च महाश्रियः ।
छत्राकारे भवेद् राज्यं वर्तुले च रणं ध्रुवम् ॥२२॥
चिपिटे च महादुःखं शूलाग्रे तु सुकाञ्चनम् ।
ललाटे शेषभोगस्तु शिरोपरि लक्षणम् ॥२३॥
चक्रकाञ्चनवर्णानां वामदेवस्य
वामपार्श्वे च वै चक्रे कृष्णवर्णस्तु पिङ्गलम् ।
लक्ष्मीनृसिंहदेवानां पृथग् वर्णस्तु दृश्यते ॥२४॥
लम्बोष्ठे च दरिद्रं स्यात् पिङ्गले हानिरेव च ।
लग्नचक्रे भवेद् व्याधिर्विदारे मरणं ध्रुवम् ॥२५॥
पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके धारयेत् सदा ।
विष्णोर्दृष्टं भक्षितव्यं तुलसीदलमिश्रितम् ॥२६॥
कल्पकोटिसहस्राणि वैकुण्ठे वसते सदा ।
शालिग्रामशिलाबिन्दुर्हत्याकोटिविनाशनः ॥२७॥
तस्मात् सम्पूजयेद् ध्यात्वा पूजितं चाऽपि सर्वदा ।
शालिग्रामशिलास्तोत्रं यः पठेच्च द्विजोत्तमः ॥२८॥
स गच्छेत् परमं स्थानं यत्र लोकेश्वरो हरिः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२९॥
दशावतारो देवानां पृथग् वर्णस्तु दृश्यते ।
ईप्सितं लभते राज्यं विष्णुपूजामनुक्रमात् ॥३०॥
कोटयो हि ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ।
ताः सर्वा नाशमायान्ति विष्णुनैवेद्यभक्षणात् ॥३१॥

विष्णोः पादोदकं पीत्वा कोटिजन्माऽघनाशनम् ।
तस्मादष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दुनिपातनात् ॥३२॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे श्रीशालिग्रामशिलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ५३ ॥

५४. मुरारिपञ्चरत्नस्तोत्रम्

यत्सेवनेन पितृ-मातृ-सहोदराणां
चित्तं न मोह-महिमा मलिनं करोति ।
इत्थं समीक्ष्य तव भक्तजनान् मुरारे
मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥ १ ॥

ये ये विलग्नमनसः सुखमाप्तुकामा-
स्ते ते भवन्ति जगदूद्भवमोहशून्याः ।
दृष्ट्वा विनष्ट-न-धान्यध-गृहान् मुरारे
मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥ २ ॥

वस्त्राणि दिग्वलयमावसतिः श्मशाने
पात्रं कपालमपि मुण्डविभूषणानि ।
रुद्रे प्रसादमचलं तव वीक्ष्य शौरे
मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥ ३ ॥

यत्कीर्ति-गायन-परस्य विधातृसूनोः
कौपीनमैणमजिनं विपुलां विभूषितम् ।
स्वस्याऽर्थे-द्विग्भ्रमणमीक्ष्य तु सार्वकालं
मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥ ४ ॥

यद्वीक्षणे धृतधियामशनं फलादि
वासोऽपि निर्जनवने गिरिकन्दरासु ।
वासांसि वल्कलमयानि विलोक्य चैवं
मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥ ५ ॥

स्तोत्रं पादाम्बुजस्यैतच्छ्रीणस्य विजितेन्द्रियः ।
पठित्वा तत्पदं याति श्लोकार्थज्ञस्तु यो नरः ॥ ६ ॥

इति मुरारिपञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ५४ ॥

५५. कमलेशमाला

मुकुन्दमिन्दीवरपत्रनेत्रं नन्दात्मजं योगिमनोनिकेतम् ।
वृन्दारकाभिष्टुतपादपद्मं पार्थस्य मित्रं मनसा स्मरामि ॥१॥
ब्रह्मेन्द्र-गङ्गाधर-वन्दिताय मुकुन्ददेवाय परात्पराय ।
नमः समस्ता-ऽसुर-नाशकाय पक्षीशयानाय रमेश्वराय ॥२॥
आश्लिष्ट-राधाकुच-कुड्मलाय गोपालकृष्णाय नमोऽस्तु तस्मै ।
गोवर्धनं यो गिरिमुच्च शृङ्गं लोकोपकाराय किलोद्दधार ॥३॥
कृपानिधे ! दीनशरण्य ! शौरे ! दैत्याटवीदाव ! रमेश देव ।
त्वत्पादपङ्केरुह-युग्मसेवां नक्तन्दिवं चाऽऽप्तुमहं समीहे ॥४॥
तदा मम स्यादभिलाषसिद्धः तदैव जायेत ममाऽतिमोदः ।
यदा यतीन्द्रेडितसच्चरित्रो मयि प्रसन्नो भगवान् मुरारिः ॥५॥
कुशाग्रसूक्ष्माऽपि मतिर्गतीनां ज्ञातुं न शक्नोति तव स्वरूपम् ।
अहं कथं वा मुसलाग्रबुद्धिर्ज्ञातुं क्षमः स्यां खलु तं भवन्तम् ॥६॥
नाऽहं नदीष्णो निखिलागमेषु न च प्रवीणः कविताकलायाम् ।
तस्मादशेषान् गदितुं गुणास्ते शौरे ! न शक्तो बत मन्दभाग्यः ॥७॥
कृपालुकृष्णस्य विधेयदासो नारायणाख्यः कवितल्लजो यः ।
श्रीतोण्डमूले निलयेन तेन व्यरच्यसौ श्रीकमलेशमाला ॥८॥

इति कमलेशमाला सम्पूर्णा ॥ ५५ ॥

५६. मुकुन्दमाला

वन्दे मुकुन्दमरविन्द-दलायताक्षं कुन्देन्दु-शङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादि-देवगण-वन्दित-पादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥
श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति भक्तिप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासेत्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ! ॥२॥
जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम् ।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे भवे भवे मेऽस्तु तव प्रसादात् ॥ ४ ॥
श्रीगोविन्दपदाम्भोजमधुनो महदद्भुतम् ।
यत्पायिनो न मुञ्चन्ति मुञ्चन्ति यदपायिनः ॥ ५ ॥

नाऽहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नाऽपनेतुम् ।
रम्यारामा-मृदुतनुलतानन्दने नाऽपि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥ ६ ॥

नाऽऽस्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् ! पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्म-जन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥ ७ ॥

दिवि वा भुवि वा ममाऽस्तु वासो नरके वा नरकान्तकं प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणे विचिन्तयामि ॥ ८ ॥
सरसिजनयने सशङ्खचक्रे मुरभिदि मा विरमेह चित्त रन्तुम् ।
सुखतरमपरं न जातु जाने हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥ ९ ॥

मा भैर्मन्द विचिन्त्य बहुधा याभिश्चिरं यातना
नैवाऽमी मनो प्रवदन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः ।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृ-कलत्र-त्राण-भारावृतानाम् ।
विषम-विषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥११॥

रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां
जनन-मरण-दोला-दुर्गसंसर्गगाणाम् ।
शरणमशरणानामेक एवातुराणां
कुशलपथ-नियुक्तश्चक्रपाणिर्नराणाम् ॥१२॥

अपराधसहस्रसङ्कुलं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे! कृपया केवलमात्मसात् कुरु ॥१३॥
मा मे स्त्रीत्वं मा च मे स्यात् कुभावो
मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म।
मिथ्या दृष्टिर्मा च मे स्यात् कदाचिद्
जातो जातो विष्णुभक्तो भवेयम् ॥१४॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वाऽनुसृतः स्वभावात्।
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायैव समर्पयामि ॥१५॥
यत्कृतं तत् करिष्यामि तत्सर्वं न मया कृतम्।
त्वया कृतं तु फलभुक् त्वमेव मधुसूदन ॥१६॥
भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम्।
सरसिजदृशि देवे तारकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥१७॥
तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहज-ग्राहसङ्घाकुले च।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिभावं प्रदेहि ॥१८॥
पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिङ्गो लघु-
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः।
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुराः
दृष्टा यत्र स तारको विजयते श्रीपादधूलीकणः ॥१९॥
आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
मेदच्छेदपदानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पदं
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्तुतिं विजयते देवः स नारायणः ॥२०॥
आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम नारायणानन्त निरामयेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनानि मोक्षे ॥२१॥

क्षीरसागरतरङ्ग-सीकरासार-तारकितचारुमूर्तये ।
भोगिभोग-शयनीयशायिने माधवाय मधविद्विषे नमः ॥२२॥

इति श्रीकुलशेखरेण राज्ञा विरचिता मुकुन्दमाला सम्पूर्णा ॥ ५६ ॥

०

५७. गरुडध्वजस्तोत्रम्

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्त-चरण-श्रवण-त्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ १ ॥

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु
नानेव दारुषु विभावसुवद् विभासि ॥ २ ॥

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं
सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तस्याऽपवर्ग्यशरणं तव पादमूलं
विस्मर्यते कृतविदा कथमार्त्तबन्धो ॥ ३ ॥

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतो ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-
मिच्छन्ति तत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥ ४ ॥

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-
ध्यानाद् भवार्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माऽभूत्
किन्त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात् ॥ ५॥

भक्ति मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महतामलाशयानाम् ।
तेनाऽञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धि
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥ ६ ॥
ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीशमर्त्यं
ये चान्वदः सुत-सुहृद्-गृह-वित्त-दाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द-
सौगन्ध्य-लुब्ध-हृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ ७ ॥
तिर्यङ्म-द्विज-सरीसृप-देवदैत्य-
मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
रूपं स्थविष्ठ भज ते महदाद्यमेकं
नाऽतः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ ८ ॥
कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्
शेते पुमान् स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ।
यन्नाभिसिन्धु-रुहकाञ्चन-लोकपद्म-
गर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥ ९ ॥
त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्ध-विशुद्ध आत्मा
कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यद्बुद् व्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या
द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्ते ॥१०॥
यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति
विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।
तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य-
मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥११॥
सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमार्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१२॥

मैत्रेय उवाच

अथाभिष्टुत एवं वै सत्सङ्कल्पेन धीमता।
भृत्यानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच

वेदाऽहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक।
तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥१४॥
नाऽन्यैरधिष्ठितं भद्र! यद् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति।
यक्ष-ग्रहर्क्ष-ताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥१५॥
मेढ्यां गोचक्रवत् स्थास्नु परस्तात् कल्पवासिनाम्।
धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः।
चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥१६॥
इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः।
भुक्त्वा चेहाऽऽशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥१७॥
ततो गन्ताऽसि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम्।
उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गता ॥१८॥

मैत्रेय उवाच

इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम्।
बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद् गरुडध्वजः ॥१९॥

इति गरुडध्वजस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ५७ ॥

०

५८. श्रीविष्णु-स्तवनम्

मेघ-श्यामं पीत-कौशेय-वासं
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम्।
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं
विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥ १ ॥
शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।

लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्वलोकैकनाथम् ॥ २ ॥
स-शङ्खचक्रं स-किरीट-कुण्डलं
स-पीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहार-वक्षःस्थल-कौस्तुभश्रियं
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥ ३ ॥
क्षीरोदन्वत्प्रदेशे शुचि-मणि-विलसत्-सैकतैर्मौक्तिकानां
माला-क्लृप्तासनस्थः स्फटिकमणि-निभै-र्मौक्तिकैर्मण्डिताङ्गः ।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैरुपरि-विरचितैर्मुक्त-पीयूषवर्षै-
रानन्दी नः पुनीयादरि-नलिन-गदा-शङ्खपाणिर्मुकुन्दः ॥ ४ ॥
भूः पादौ यस्य नाभिर्वियदसुर-निलश्चन्द्र-सूर्यौ च नेत्रे
कर्णावाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वासोऽयमब्धिः ।
अन्तःस्थं यस्य विश्वं सुर-नर-खग-गो-भोगि-गन्धर्व-दैत्यै-
श्चित्रं रंरम्यते तं त्रिभुवनवपुषं विष्णुमीशं नमामि ॥ ५ ॥
भव-जलधि-गतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुत-दुहितृ-कलत्र-त्राण-भारावृतानाम् ।
विषम-विषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥ ६ ॥
यत्कीर्तं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ ७ ॥
रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये
स्थितौ प्रजानां प्रलये तमस्पृशे ।
अजाय सर्ग-स्थिति-नाशहेतवे
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ ८ ॥
इति पण्डितश्रीराजबलीत्रिपाठिना सङ्कलितं विष्णुस्तवनं समाप्तम् ॥ ५८ ॥

५६. श्रीनारायणाऽष्टादशकम्

प्रह्लाद प्रभुरस्ति चेत् तव हरिः सर्वत्र मे दर्शय
स्तम्भे चैनमिति ब्रुवन्तमसुरं तत्राऽविरासीद्धरिः ।
वक्षस्तस्य विदारयन् निजनखै-र्वात्सल्यमावेदयन्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १ ॥

श्रीरामाऽत्र विभीषणोऽयमधुना त्वार्तो भयादागतः
सुग्रीवानय पालयेऽहमधुना पौलस्त्यमेवागतम् ।
एवं योऽभयमस्य सर्वविदितं लङ्काधिपत्यं ददा-
वार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ २ ॥

नक्रग्रस्तपदं समुद्यतकरं ब्रह्मेश देवेश मां
पाहीति प्रचुरार्तरावकरिणं देवेश शक्तीश माम् ।
मा शोचेति ररक्ष नक्रवदनाच्चक्रश्रिया तत्क्षणाद्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ३ ॥

हा कृष्णाऽच्युत हा कृपाजलनिधे हा पाण्डवानां गते
क्वाऽसि क्वाऽसि सुयोधनादवगतां हा रक्ष मां द्रौपदीम् ।
इत्युक्तोऽक्षयवस्त्ररक्षिततनुं योऽरक्षदापद्गणाद्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ४ ॥

यत्पादाब्ज-नखोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं
यन्नामाऽमृतपूरणं च पिबतां सन्तापसंहारकम् ।
पाषाणश्च यदङ्घ्रितो निजवधूरूपं मुनेराप्तवान्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ५ ॥

यन्नामश्रुतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
त्यक्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम् ।
तन्नैवाऽद्भुतकारणं त्रिजगतां नाथस्य दासोऽस्म्यहम्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ६ ॥

पित्रा भ्रातरमुत्तमाङ्कगमितं भक्तोत्तमं यो ध्रुवं
दृष्ट्वा तत्सममारुरुक्षुमुदितं मात्राऽवमानं गतम् ।

योऽदात् तं शरणागतं तु तपसा हेमाद्रिसिंहासनं
ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ७ ॥
नाथेति श्रुतयो न तत्त्वमतयो घोषस्थिता गोपिका
जारिण्यः कुल-जाति-धर्म-विमुखा अध्यात्मभावं ययुः ।
भक्तिर्यस्य ददाति मुक्तिमतुलां जारस्य यः सद्गति-
ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ८ ॥
क्षुत्तृष्णार्त-सहस्रशिष्यसहितं दुर्वाससं क्षोभितं
द्रौपद्या भयभक्तियुक्तमनसा शाकं स्वहस्तार्पितम् ।
भुक्त्वा तर्पयदात्मवृत्तिमखिलामावेदयन् यः पुमान्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ९ ॥
येनाऽरक्षि रघूत्तमेन जलधेस्तीरे दशास्यानुग-
स्त्वायातं शरणं रघूत्तम विभो रक्षातुरं मामिति ।
पौलस्त्येन निराकृतोऽथ सदसि भ्रात्रा च लङ्कापुरे
ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१०॥
येनावाहि महाहवे वसुमती संवर्तकाले महा-
लीलाक्रोडवपुर्धरेण हरिणा नारायणेन स्वयम् ।
यः पापिद्रुम-सम्प्रवर्तनचिराद्धत्वा च योऽगात् प्रियम्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥११॥
योद्धाऽसौ भुवनत्रये मधुपतिर्भर्ता नराणां बले
राधाया अकरोद्व्रते रतिमनःपूर्तिं सुरेन्द्रानुजः ।
यो वा रक्षति दीनपाण्डुतनयान् नाथेति भीतिं गतान्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१२॥
यः सान्दीपिनिदेशतश्च तनयं लोकान्तरात् सन्नतं
चाऽऽनीय प्रतिपाद्य पुत्रमरणादुज्जृम्भमाणार्तये ।
सन्तोषं जनयन्नमेयमहिमा पुत्रार्थसम्पादनाम्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१३॥
यन्नामस्मरणादघौघसहितो विप्रः पुराऽजामिलः
प्राणान् मुक्तिमशोषितामनु च यः पापौघदावार्तियुक् ।

सद्यो भागवतोत्तमात्मनि मतिं पापाम्बरीषाभिध-
श्चाऽऽर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१४॥
योऽरक्षद्वसनादिनित्यरहितं विप्रं कुचैलाभिधं
दीनाऽदीन-चकोरपालनपरः श्रीशङ्खचक्रोज्ज्वलः ।
तज्जीर्णाम्बर-मुष्टिमात्रपृथुकानादाय भुक्त्वा क्षणाद्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१५॥
यत्कल्याणगुणाभिराममलं मन्त्राणि संशिक्षते
यत्संशोति पतिप्रतिष्ठितमिदं विश्वं वदत्यागमः ।
यो योगीन्द्रमनःसरोरुहतमः प्रध्वंसविद्भानुमान्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१६॥
कालिन्दीहृदयाभिरामपुलिने पुण्ये जगन्मङ्गले
चद्राम्भोजवटे पटे परिसरे धात्रा समाराधिते ।
श्रीरङ्गे भुजगेन्द्रभोगशयने शेते सदा यः पुमान्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१७॥
वात्सल्यादभय-प्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणा-
दौदार्यादघ-शोषणादगणित-श्रेयः-पदप्रापणात ।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेते हि तत्साक्षिणः
प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः॥१८॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचित-श्रीनारायणाष्टादशकं सम्पूर्णम् ॥५९॥

०

६०. परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रम्

त्वमेकः शुद्धोऽसि त्वयि निगमबाह्या मलमयं
प्रपञ्चं पश्यन्ति भ्रमरपरवशाः पापनिरताः ।
बहिस्तेभ्यः कृत्वा स्वपदशरणं मानय विभो
गजेन्द्रे दृष्टं ते शरणद वदान्यं स्वपददम् ॥ १ ॥
न सृष्टेस्ते हानिर्यदि हि कृपयातोऽवसि च मां
त्वयाऽनेके गुप्ता व्यसनमिति तेऽस्ति श्रुतिपथे ।

अतो मामुद्धर्तुं घटय मयि दृष्टिं सुविमलां
न रिक्तां मे याच्ञां स्वजनरत कर्तुं भव हरे ॥ २ ॥
कदाहं भो स्वामिन्नियतमनसा त्वां हृदि भज-
न्नभद्रे संसारे ह्यनवरतदुःखेऽतिविरसः ।
लभेयं तां शान्तिं परममुनिभिर्या ह्यधिगता
दयां कृत्वा मे त्वं वितर परशान्तिं भवहर ॥ ३ ॥
विधाता चेद् विश्वं सृजति सृजतां मे शुभकृतिं
विभुश्चेत् पाता माऽवतु जनिमृतेर्दुःखजलधेः ।
हरः संहर्ता संहरतु मम शोकं सजनकं
यथाऽहं मुक्तः स्यां किमपि तु तथा ते विदधताम् ॥ ४ ॥
अहं ब्रह्मानन्दस्त्वमपि च तदाख्यः सुविदित-
स्ततोऽहं भिन्नो नो कथमपि भवत्तः श्रुतिदृशा ।
तथा चेदानीं त्वं त्वयि मम विभेदस्य जननीं
स्वमायां संवार्य प्रभव मम भेदं निरसितुम् ॥ ५ ॥
कदाऽहं हे स्वामिन् ! जनिमृतिमयं दुःखनिविडं
भवं हित्वा सत्येऽनवरतसुखे स्वात्मवपुषि ।
रमे तस्मिन्नित्यं निखिलमुनयो ब्रह्मरसिका
रमन्ते यस्मिंस्ते कृतसकलकृत्या यतिवराः ॥ ६ ॥
पठन्त्यन्येके शास्त्रं निगममपरे तत्परतया
यजन्त्ये त्वां वै ददति च पदार्थांस्तव हितान् ।
अहं तु स्वामिंस्ते शरणमगमं संसृतिभयात्
यथा ते प्रीतिः स्याद्धितकर तथा त्वं कुरु विभो ॥ ७ ॥
अहं ज्योतिर्नित्यो गगनमिव तृप्तः सुखमयः
श्रुतौ सिद्धोऽद्वैतः कथमपि न भिन्नोऽस्मि विभुतः ।
इति ज्ञाते तत्त्वे भवति च परः संसृतिलया-
दतस्तत्त्वज्ञानं मयि सुघटयेस्त्वं हि कृपया ॥ ८ ॥
अनादौ संसारे जनिमृतमये दुःखितमना
मुमुक्षुः सन् कश्चिद् भजति हि गुरुं ज्ञानपरमम् ।

ततो ज्ञात्वा यं वै तुदति न पुनः क्लेशनिवहै-
भंजेऽहं तं देवं भवति च परो यस्य भजनात् ॥ ९ ॥
विवेको वैराग्यो न च शम-दमाद्याः षडपरे
मुमुक्षा मे नास्ति प्रभवति कथं ज्ञानममलम् ।
अतः संसाराब्धेस्तरणसरणिं मामुपदिशन्
स्वबुद्धिं श्रौतीं मे वितर भगवंस्त्वं हि कृपया ॥१०॥
कदाऽहं भो स्वामिन्निगममतिवेद्यं शिवमयं
चिदानन्दं नित्यं श्रुतिहृतपरिच्छेदनिवहम् ।
त्वमर्थाभिन्नं त्वामभिरम इहात्मन्यविरतं
मनीषामेवं मे सफलय वदान्यं स्वकृपया ॥११॥
यदर्थं सर्वं वै प्रियमसुधनादि प्रभवति
स्वयं नाऽन्यार्थो हि प्रिय इति च वेदे प्रविदितम् ।
स आत्मा सर्वेषां जनिमृतमतां वेदगदित-
स्ततोऽहं तं वेद्यं सततममलं यामि शरणम् ॥१२॥
मया त्यक्तं सर्वं कथमपि भवेत् स्वात्मनि मति-
स्त्वदीया माया मां प्रति तु विपरीतं कृतवती ।
ततोऽहं किं कुर्या न हि मम मतिः क्वाऽपि चरति
दयां कृत्वा नाथ ! स्वपदशरणं देहि शिवदम् ॥१३॥
नगा दैत्याः कीशा भवजलधिपारं हि गमिता-
स्त्वया चाऽन्ये स्वामिन् किमिति समयेऽस्मिञ्छयितवान् ।
न हेला त्वं कुर्यास्त्वयि निहितसर्वे मयि विभो
न हि त्वाहं हित्वा कमपि शरणं चाऽन्यमगमम् ॥१४॥
अनन्ताद्या विज्ञा न गुणजलधेस्तेऽन्तमगम-
न्नतः पारं यायात्तव गुणगणानां कथमयम् ।
गृणन् यावद्धि त्वां जनिमृतिहर याति परमां
गतिं योगिप्राप्यामिति मनसि बुद्ध्वाहमनवम् ॥१५॥
इति श्रीब्रह्मानन्दविरचितं परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६०॥

०

६१. भगवच्छरणस्तोत्रम्

सच्चिदानन्दरूपाय भक्तानुग्रहकारिणे ।
मायानिर्मित-विश्वाय महेशाय नमो नमः ॥ १ ॥

रोगा हरन्ति सततं प्रबलाः शरीरं
कामादयोऽप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम् ।
मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन् दिनानि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ २ ॥

देहो विनश्यति सदा परिणामशील-
श्चित्तं च खिद्यति सदा विषयानुरागि ।
बुद्धिः सदा हि रमते विषयेषु नान्त-
स्तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ३ ॥

आयुर्विनश्यति यथाऽऽमघटस्थतोयं
विद्युत्प्रभेव चपला बत यौवनश्रीः ।
वृद्धा प्रधावति यथा मृगराजपत्नी
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ४ ॥

आयाद् व्ययो मम भवत्यधिकोऽविनीते
कामादयो हि बलिनो निबलाः शमाद्याः ।
मृत्युर्यदा तुदति मां बत किं वदेयं
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ५ ॥

तप्तं तपो न हि कदापि मयेह तन्वा
वाण्या तथा न हि कदाऽपि तपश्च तप्तम् ।
मिथ्याऽभिभाषणपरेण न मानसं हि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ६ ॥

स्तब्धं मनो मम सदा न हि याति सौम्यं
चक्षुश्च मे न तव पश्यति विश्वरूपम् ।
वाचा तथैव न वदेन्मम सौम्यवाणीं
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ७ ॥

सत्त्वं न मे मनसि याति रजस्तमोभ्यां
विद्धे तदा कथमहो शुभकर्मवार्ता ।
साक्षात् परम्परतया सुखसाधनं तत्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ८ ॥

पूजा कृता न हि कदाऽपि मया त्वदीया
मन्त्रं त्वदीयमपि मे न जपेद् रसज्ञा ।
चित्तं न मे स्मरति ते चरणौ ह्यवाप्य
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ९ ॥

यज्ञो न मेऽस्ति हुति-दान-दयादियुक्तो
ज्ञानस्य साधनगणो न विवेकमुख्यः ।
ज्ञानं क्व साधनगणेन विना क्व मोक्षः
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १० ॥

सत्सङ्गतिर्हि विदिता तव भक्तिहेतुः
साऽप्यद्य नास्ति बत पण्डितमानिनो मे ।
तामन्तरेण न हि सा क्व च बोधवार्ता
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ११ ॥

दृष्टिर्न भूतविषया समताभिधाना
वैषम्यमेव तदियं विषयीकरोति ।
शान्तिः कुतो मम भवेत् समता न चेत् स्यात्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १२ ॥

मैत्री समेषु न च मेऽस्ति कदाऽपि नाथ !
दीने तथा न करुणा मुदिता च पुण्ये ।
पापेऽनुपेक्षणवतो मम मुत्कथं स्यात्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १३ ॥

नेत्रादिकं मम बहिर्विषयेषु सक्तं
नाऽन्तर्मुखं भवति तानविहाय तस्य ।
क्वान्तर्मुखत्वमपहाय सुखस्य वार्ता
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १४ ॥

त्यक्तं गृहाद्यपि मया भवतापशान्त्यै
नासीदसौ हृतहृदो मम मायया ते।
सा चाऽधुना किमु विवास्यति नेति जाने
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १५ ॥
प्राप्ता धनं गृह-कुटुम्ब-गजा-ऽश्व-दारा
राज्यं यदैहिकमथेन्द्रपुरश्च नाथ।
सर्वं विनश्वरमिदं न फलाय कस्मै
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १६ ॥
प्राणान्निरुध्य विधिना न कृतो हि योगो
योगं विनाऽस्ति मनसः स्थिरता कुतो मे।
तां वै विना मम न चेतसि शान्तिवार्ता
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १७ ॥
ज्ञानं यथा मम भवेत् कृपया गुरूणां
सेवां तथा न विधिनाऽकरवं हि तेषाम्।
सेवाऽपि साधनतया विदिताऽस्ति चित्ते
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १८ ॥
तीर्थादि-सेवनमहाविधिना हि नाथ!
नाऽकारि येन मनसो मम शोधनं स्यात्।
शुद्धिं विना न मनसोऽवगमापवर्गौ
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १९ ॥
वेदान्तशीलनमपि प्रमितिं करोति
ब्रह्मात्मनः प्रमिति-साधनसंयुतस्य।
नैवाऽस्ति साधनलवो मयि नाथ तस्याः
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ २० ॥
गोविन्द शङ्कर हरे गिरिजेश मेश
शम्भो जनार्दन गिरीश मुकुन्द साम्ब।
नाऽन्या गतिर्मम कथञ्चन वां विहाय
तस्मात् प्रभो मम गतिः कृपया विधेया ॥ २१ ॥

एतं स्तवं भगवदाश्रयणाभिधानं
ये मानवाः प्रतिदिनं प्रणताः पठन्ति ।
ते मानवा भवरतिं परिभूय शान्ति
गच्छन्ति किं च परमात्मनि भक्तिमन्तः ॥२२॥

इति श्रीब्रह्मानन्दविरचितं भगवच्छरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ६१ ॥

६२. श्रीजगन्नाथाष्टकम्

कदाचित् कालिन्दी-तटविपिन-सङ्गीतकरवो
मुदाभीरी-नारीवदन-कमलास्वाद-मधुपः ।
रमा-शम्भुर्ब्रह्मा-ऽमरपति-गणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ १ ॥
भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचरकटाक्षं विदधते ।
सदा श्रीमद्वृन्दावन-वसतिलीला-परिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ २ ॥
महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहजबलभद्रेण बलिना ।
सुभद्रामध्यस्थः सकलसुरसेवा-ऽवसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ३ ॥
कृपापारावारः सजल-जलद-श्रेणिरुचिरो
रमावाणीराम-स्फुरदमल-पद्मेक्षणमुखैः ।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगण-शिखागीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ४ ॥
रथारूढो गच्छन् पथि मिलित-भूदेवपटलैः
स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः ।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ५ ॥

परब्रह्मापीडः कुवलयदलोत्फुल्लनयनो
निवासी नीलाद्रौ निहितचरणोऽनन्तशिरसि।
रसानन्दो राधा-सरसवपुरालिङ्गनसुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ६ ॥
न वै प्राथ्यं राज्यं न च कनकतां भोगविभवं
न याचेऽहं रम्यां निखिलजनकाम्यां वरवधूम्।
सदा काले काले प्रमथ-पतिना गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ७ ॥
हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते।
अहो दीनानाथं निहितमचलं निश्चितपदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ८ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यप्रणीतं जगन्नाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ६२ ॥



६३. जगन्मंगलकवचस्तोत्रम्

श्रीसनत्कुमार उवाच

ब्रूहि मे कवचं ब्रह्मन्! जगन्मङ्गलमङ्गलम्।
पूज्यं पुण्यस्वरूपं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र! कवचं परमाद्भुतम्।
श्रीकृष्णेनैव कथितं मह्यं च कृपया पुरा ॥ २ ॥
मया दत्तं च धर्माय तेन नारायणर्षये।
ऋषिणा तेन तद्दत्तं सुभद्राय महात्मने ॥ ३ ॥
अतिगुह्यतमं शुद्धं परं स्नेहाद् वदाम्यहम्।
यद् धृत्वा पठनात् सिद्धाः सिद्धयादि प्राप्नुवन्ति च ॥४॥

एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
ऋषिश्छन्दश्च सावित्री देवो नारायणः स्वयम् ॥ ५ ॥
धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
ॐ राधेशो मे शिरः पातु कण्ठं राधेश्वरः स्वयम् ॥ ६ ॥
गोपीश्चक्षुषी पातु तालुं च भगवान् स्वयम् ।
गण्डयुग्मं च गोविन्दः कर्णयुग्मं च केशवः ॥ ७ ॥
गलं गदाधरः पातु स्कन्धं कृष्णः स्वयंप्रभुः ।
वक्षःस्थलं वासुदेवश्चोदरं चाऽपि सोऽच्युतः ॥ ८ ॥
नाभिं पातु पद्मनाभः कङ्कालः कंससूदनः ।
पुरुषोत्तमः पातु पृष्ठं नित्यानन्दो नितम्बकम् ॥ ९ ॥
पुण्डरीकः पादयुग्मं हस्तयुग्मं हरिः स्वयम् ।
नासां च नखरं पातु नरसिंहः स्वयंप्रभुः ॥१०॥
सर्वेश्वरश्च सर्वाङ्गं सततं मधुसूदनः ।
प्राच्यां पातु च रामश्च वह्नौ वंशीधरः स्वयम् ॥११॥
पातु दामोदरो दक्षे नैर्ऋत्ये च नरोत्तमः ।
पश्चिमे पुण्डरीकाक्षो वायव्यां वामनः स्वयम् ॥१२॥
अनन्तश्चोत्तरे पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ।
जले स्थले चाऽन्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥१३॥
पातु वृन्दावनेशश्च मां भक्तं शरणागतम् ।
इति ते कथितं वत्स ! कवचं परमाद्भुतम् ॥१४॥
सुखदं मोक्षदं सारं सर्वसिद्धिप्रदं सताम् ।
इदं कवचमिष्टं च पूजाकाले च यः पठेत् ॥१५॥
हरिदास्यमवाप्नोति गोलोके वासमुत्तमम् ।
इहैव हरिभक्तिं च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१६॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे जगन्मगंलकवचं समाप्तम् ॥ ६३ ॥

•

६४. मंगलगीतम्

श्रित-कमलकुच-मण्डल धृतकुण्डल ए।
कलित-ललित-वनमाल जय जय देव हरे॥ १॥
दिनमणि-मण्डल-मण्डन भव-खण्डन ए।
मुनिजन-मानस-हंस जय जय देव हरे॥ २॥
कालिय-विषधर-गञ्जन जनरञ्जन ए।
यदुकुल-नलिन-दिनेश जय जय देव हरे॥ ३॥
मधु-मुर-नरक-विनाशन गरुडासन ए।
सुरकुल-केलि-निदान जय जय देव हरे॥ ४॥
अमल-कमल-दल-लोचन भवमोचन ए।
त्रिभुव-भवन-निधान जय जय देव हरे॥ ५॥
जनकसुता-कृतभूषण जितदूषण ए।
समर-शमित-दशकण्ठ जय जय देव हरे॥ ६॥
अभिनव-जलधर-सुन्दर धृतमन्दर ए।
श्रीमुख-चन्द्र-चकोर जय जय देव हरे॥ ७॥
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे॥ ८॥
श्रीजयदेवकवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गल-मञ्जुल-गीतं जय जय देव हरे॥ ९॥

इति श्रीजयदेव-विरचितं मंगलगीतं सम्पूर्णम्॥ ६४॥

इति विष्णुस्तोत्राणि सम्पूर्णानि।

शिवस्तोत्राणि

६५. शिवकवचस्तोत्रम्

अस्य शिवकवच-स्तोत्र-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसदाशिवरुद्रो देवता, ह्रीं क्लीं बीजम्, श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे शिवकवचस्तोत्रजपे विनियोगः ।

न्यासः

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वाला-मालिने ॐ ह्रां सर्वशक्तिधाम्ने ईशानात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ नं रिं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ मं रुं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने मध्यमाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ शिं रैं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने वामदेवात्मने अनामिकाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ नमो,भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ यं रः अनादिशक्तिधाम्ने सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः ।

ध्यानम्

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिन्दमम् ।
सहस्रकरमत्युग्रं वन्दे शम्भुमुमापतिम् ॥ १ ॥
अथाऽपरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम् ।
जयप्रदं सर्वविपत्-प्रमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥ २ ॥

ऋषभ उवाच

नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥ ३ ॥
शुचौ देशे समासीनो यथावत् कल्पितासनः ।
जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ॥ ४ ॥

हृत्पुण्डरीकान्तर-सन्निविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोऽवकाशम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत् परानन्दमयं महेशम् ॥ ५ ॥
ध्यानावधूताऽखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ।
षडक्षर-न्यास-समाहितात्मा शैवेन कुर्यात् कवचेन रक्षाम् ॥ ६ ॥
मां पातु देवोऽखिल-देवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ।
यन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोतु मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥ ७ ॥
सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्तिर्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।
अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥ ८ ॥
यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं पायात् स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्तिः ।
योऽपांस्वरूपेण नृणां करोति सञ्जीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥ ९ ॥
कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यतु भूरिलीलः ।
स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥१०॥
प्रदीप्त-विद्युत्-कनकावभासो विद्यावराभीति-कुठारपाणिः ।
चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥११॥
कुठार-वेदाङ्कुश-पाश-शूल-कपाल-ढक्का-ऽक्ष-गुणान् दधानः ।
चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥१२॥
कुन्देन्दु-शङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमाला-वरदाभयाङ्कः ।
त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥१३॥
वराक्ष-माला-ऽभय-टङ्कहस्तः सरोज-किञ्जल्प-समानवर्णः ।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥१४॥
वेदाभयेष्टाङ्कुश-पाश-टङ्क-कपाल-ढक्काक्षक-शूलपाणिः ।
सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान् मामीशान ऊर्ध्वं परमप्रकाशः ॥१५॥
मूर्धानमव्यान् मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाऽव्यादथ भालनेत्रः ।
नेत्रे ममाऽव्याद् भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥१६॥
पायाच्छ्रुतौ मे श्रुतिगीतकीर्तिः कपोलमव्यात् सततं कपाली ।
वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥१७॥
कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ।
दोर्मूलमव्याद् मम [illegible] ॥१८॥

ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाऽव्यान् मदनान्तकारी ।
हेरम्बतातो मम पातु नाभिं पायात् कटीं धूर्जटिरीश्वरो मे ॥१९॥
ऊरुद्वयं पातु कुवेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।
जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात् पादौ ममाऽव्यात् सुरवन्द्यपादः ॥२०॥
महेश्वरः पातु दिनादियामे मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
त्रिलोचनः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥२१॥
पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ।
गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ॥२२॥
अन्तः स्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु बहिः स्थितं माम् ।
तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदाशिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥२३॥
तिष्ठन्तमव्याद् भुवनैकनाथः पायाद् व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ।
वेदान्तवेद्योऽवतु मां निषण्णं मामव्ययः पातु शिवः शयानम् ॥२४॥
मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादि-दुर्गेषु पुरत्रयारिः ।
अरण्यवासादि महाप्रवासे पायान् मृगव्याध उदारशक्तिः ॥२५॥
कल्पान्तकाटोप-पटुप्रकोप-स्फुटा-ऽट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ।
घोरारिसेनार्णव-दुर्निवार-महाभयाद् रक्षतु वीरभद्रः ॥२६॥
पत्त्यश्व-मातङ्ग-रथावरूढ-सहस्र-लक्षायुत-कोटिभीषणम् ।
अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां छिन्द्यान् मृडो घोरकुठारधारया ॥२७॥
निहन्तु दस्यून् प्रलयानलार्चि-र्ज्वलत्त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ।
शार्दूल-सिंहर्क्ष-वृकादिहिंस्रान् सन्त्रासयत्वीशधनुः पिनाकः ॥२८॥
दुःस्वप्न-दुःशकुन-दुर्गति-दौर्मनस्य-दुर्भिक्ष-दुर्व्यसनदुःसह-दुर्यशांसि ।
उत्पात-तापविषभीतिमसद्ग्रहार्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः ।२९

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्वमन्त्रस्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्वतत्त्वविदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पार्वतीमनोहर-प्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोद्धूलित-विग्रहाय महामणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टि-स्थिति-प्रलय काल-रौद्रावताराय दक्षा-ऽध्वर-ध्वंसकाय महाकालभेदनाय मूलाधारैक-निलयाय तत्त्वातीताय गङ्गाधराय सर्वदेवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्त-

सारायत्रिवर्गसाधनाया-ऽनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायकाया-ऽनन्तवासुकि-तक्षक-कर्कोटक- शङ्कुलिक - पद्ममहापद्मेत्यष्ट-महानागकुल-भूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशाया-ऽऽकाशदिक्स्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलङ्करहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैक-संहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकल-वेदान्त-पारगाय सकल-लोकैक-वरप्रदाय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्क-शेखराय शाश्वतनिजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मदाय निश्चिन्ताय निरहङ्काराय निरङ्कुशाय निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्कामाय निरुपद्रवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरन्तकाय निष्प्रपञ्चाय निःसङ्गाय निर्द्वन्द्वाय निराधाराय निरागाय निष्क्रोधाय निर्मलाय निष्पापाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निःसंशयाय निरञ्जनाय निरुपमविभवाय नित्य-शुद्ध-बुद्ध-परिपूर्ण-सच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय,जय रुद्र महारौद्र भद्रावतार महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्ग-खड्ग-चर्म-पाशाङ्कुश-डमरु-शूल-चाप-बाण-गदा-शक्ति-भिन्दिपाल-तोमर-मुसल-मुद्गर-पाश-परिघ भुशुण्डी-शतघ्नी-चक्राद्यायुध-भीषणकर-सहस्रमुखदंष्ट्रा करालवदन-विकटाट्टहास-विस्फारित-ब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्र चर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर वृषभवाहन विषविभूषण विश्वतोमुख सर्वतोरक्ष रक्ष मां ज्वल-ज्वल महामृत्यूपमृत्युभय नाशय नाशय चोरभयमुत्सा-दयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चोरान् मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय त्रिशूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषयाऽशेष-भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्ड-वेताल-मारीच-ब्रह्मराक्षस-गणान् सन्त्रासय सन्त्रासय मामभयं कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासयाऽऽश्वासय नरक-महाभयान् मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामा-

प्याययाप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयाऽऽनन्दय शिवकवचेन मामाच्छादया-
ऽऽच्छादय मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते ॥२९॥

ऋषभ उवाच

इत्येतत् कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया।
सर्वबाधा-प्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥३०॥
यः सदा धारयेन् मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम्।
न तस्य जायते क्वाऽपि भयं शम्भोरनुग्रहात् ॥३१॥
क्षीणाऽऽयुः प्राप्तमृत्युर्वा महारोग-हतोऽपि वा।
सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥३२॥
सर्वदारिद्रशमनं सौमङ्गल्य-विवर्धनम् ।
यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥३३॥
महापातक-सङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः ।
देहान्ते मुक्तिमाप्नोति शिववर्माऽनुभावतः ॥३४॥
त्वमपि श्रद्धया वत्स! शैवं कवचमुत्तमम्।
धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥३५॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ऋषभो योगी तस्मै पार्थिवसूनवे।
ददौ शङ्खं महारावं खड्गं चाऽरि-निषूदनम् ॥३६॥
पुनश्च भस्म सम्मन्त्र्य तदङ्गं परितोऽस्पृशत्।
गजानां षट्सहस्रस्य त्रिगुणस्य बलं ददौ ॥३७॥
भस्मप्रभावात् सम्प्राप्त-बलैश्वर्य-धृति-स्मृतिः।
स राजपुत्रः शुशुभे शरदर्क इव श्रिया ॥३८॥
तमाह प्राञ्जलिं भूयः स योगी नृपनन्दनम्।
एष खड्गो मया दत्तस्तपोमन्त्रानुभावितः ॥३९॥
शितधारमिमं खड्गं यस्मै दर्शयसे स्फुटम्।
स सद्यो म्रियते शत्रुः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् ॥४०॥
अस्य शङ्खस्य निर्ह्लादं ये श्रृण्वन्ति तवाहिताः।
ते मूर्च्छिताः पतिष्यन्ति न्यस्तशस्त्रा विचेतनाः ॥४१॥

खड्ग-शङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशनौ ।
आत्मसैन्यस्य पक्षाणां शौर्य-तेजो-विवर्धनौ ॥४२॥
एतयोश्च प्रभावेण शैवेन कवचेन च ।
द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महताऽपि च ॥४३॥
भस्मधारण-सामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यसि ।
प्राप्य सिंहासनं पित्र्यं गोप्ताऽसि पृथिवीमिमाम् ॥४४॥
इति भद्रायुषं सम्यगनुशास्य समातृकम् ।
ताभ्यां सम्पूजितः सोऽथ योगी स्वैरगतिर्ययौ ॥४५॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे शिवकवचं समाप्तम् ॥६५॥

•

६६. शिवमानस-पूजा-स्तोत्रम्

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्न-विभूषितं मृगमदा-मोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जाती-चम्पक-बिल्वपत्र-रचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥ १ ॥
सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूर-खण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ॥ २ ॥
छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणा-भेरि-मृदङ्ग-काहल-कला-गीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टाङ्गप्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत् समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥ ३ ॥
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाऽऽराधनम् ॥ ४ ॥

करचरणकृतं वाक्-कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ! ॥ ५ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवमानसपूजास्तोत्रं समाप्तम् ॥६६॥

●

६७. शिवापराध-क्षमापनस्तोत्रम्

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्वथयति नितरां जाठरो जातवेदाः ।
यद्यद् वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१॥
बाल्ये दुःखातिरेकान् मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति ।
नानारोगादि-दुःखाद्रुदन-परवशः शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥२॥
प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसिन्धौ
दष्टो नष्टो विवेकः सुत-धन-युवति-स्वादसौख्ये निषण्णः ।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥३॥
वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगत-गति-मतिश्चाऽऽधिदैवादि-तापैः
पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनव-सितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम् ।
मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥४॥
नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपद-गहन-प्रत्यवायाकुलाख्यं
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गे सुसारे ।
ज्ञातो धर्मो विचारैः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥५॥

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं
पूजार्थं वा कदाचिद् बहुतरगहनात् खण्डबिल्वीदलानि ।
नाऽऽनीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पैस्त्वदर्थं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥६॥
दुग्धैर्मध्वाज्य-युक्तैर्दधिसितसहितः स्नापितं नैव लिङ्गं
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः ।
धूपैः कर्पूर-दीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥
ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नाऽर्पितं बीजमन्त्रैः ।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रत-जप-नियमैः रुद्रजाप्यैर्न वेदैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥८॥
स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत् कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपेऽपराख्ये ।
लिङ्गज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥९॥
नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित् ।
उन्मन्याऽवस्थया त्वां विगतकलिमलं शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१०॥
चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषित-कण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
दन्तित्वक्कृत-सुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥११॥
किं वाऽनेन धनेन वाजि-करिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्र-कलत्र-मित्र-पशुभिर्देहेन गेहेन किम् ।
ज्ञात्वैतत् क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम् ॥१२॥

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः ।
लक्ष्मीस्तोय-तरङ्ग-भङ्ग-चपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान् मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाऽधुना ।। १३ ।।
करचरणकृतं वाक्-कायजं कर्मजं वा
श्रवण-नयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाऽब्धे श्रीमहादेव शम्भो ।। १४ ।।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।। ६७ ।।

•

६८. वेदसारशिवस्तोत्रम्

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ।। १ ।।
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्क-वह्नि त्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ।। २ ।।
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ।।३।।
शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्-व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ।। ४ ।
परात्मानमेकं जगद्-बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ।। ५ ।।
न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्याऽस्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ६
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ।। ७ ।।
नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ! ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ।। ८ ।।

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ९
शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।
काशीपते करुणया जगदेतदेकस्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि १०
त्वत्तो जगद् भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं भजदेतदीश लिङ्गात्मकं हर चराऽचरविश्वरूपिन् ११

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं वेदसारशिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ६८ ॥

●

६९. शिवाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् [१]

देवा ऊचुः

जय शम्भो विभो रुद्र स्वयम्भो जय शङ्कर!।
जयेश्वर जयेशान जय सर्वज्ञ कामद!॥ १ ॥
नीलकण्ठ जय श्रीद श्रीकण्ठ जय धूर्जटे!।
अष्टमूर्तेऽनन्तमूर्ते महामूर्ते जयानघ!॥ २ ॥
जय पापहरानङ्ग-निःसङ्गाभङ्ग-नाशन!।
जय त्वं त्रिदशाधार त्रिलोकेश त्रिलोचन!॥ ३ ॥
जय त्वं त्रिपथाधार त्रिमार्ग त्रिभिरूर्जित!।
त्रिपुरारे त्रिधामूर्ते जयैक-त्रिजटात्मक॥ ४ ॥
शशिशेखर शूलेश पशुपाल शिवाप्रिय!।
शिवात्मक शिव श्रीद सुहृच्छ्रीशतनो जय॥ ५ ॥
सर्व सर्वेश भूतेश गिरिश त्वं गिरीश्वर!।
जयोग्ररूप भीमेश भव भर्ग जय प्रभो॥ ६ ॥
जय दक्षाऽध्वर-ध्वंसिन्नन्धक-ध्वसकारक!।
रुण्डमालिन् कपालिस्त्वं भुजङ्गाजिनभूषण!॥ ७ ॥
दिगम्बर दिशांनाथ व्यामकेश चितांपते!।
जयाधार निराधार भस्माधार धराधर!॥ ८ ॥

देवदेव महादेव देवतेशादिदैवत।
वह्निवीर्य जय स्थाणो जयायोनिजसम्भव ॥ ९ ॥
भव शर्व महाकाल भस्माङ्ग सर्पभूषण।
त्र्यम्बक स्थपते वाचांपते भो जगतांपते ॥१०॥
शिपिविष्ट विरूपाक्ष जय लिङ्ग वृषध्वज।
नीललोहित पिङ्गाक्ष जय खट्वाङ्गमण्डन ॥११॥
कृत्तिवास अहिर्बुध्न्य मृडानीश जटाम्बुभृत्।
जगद्भ्रातर्जगन्मातर्जगत्तात जगद्गुरो ॥१२॥
पञ्चवक्त्र महावक्त्र कालवक्त्र गजास्यभृत्।
दशबाहो महाबाहो महावीर्य महाबल ॥१३॥
अघोरघोरवक्त्र त्वं सद्योजात उमापते।
सदानन्द महानन्द नन्दमूर्ते जयेश्वर ॥१४॥
एवमष्टोत्तरशतं नाम्नां देवकृतं तु ये।
शम्भोर्भक्त्या स्मरन्तीह श्रृण्वन्ति च पठन्ति च ॥१५॥
न तापास्त्रिविधास्तेषां न शोको न रुजादयः।
ग्रहगोचरपीडा च तेषां क्वाऽपि न विद्यते ॥१६॥
श्रीः प्रज्ञा-ऽऽरोग्यमायुष्यं सौभाग्यं भाग्यमुन्नतिम्।
विद्यां धर्मे मतिः शम्भोर्भक्तिस्तेषां न संशयः ॥१७॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ६९ ॥

•

७०. शिवाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् [२]

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः ॥ १ ॥
शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः ॥ २ ॥

भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः ।
उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः ॥ ३ ॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः ।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः ॥ ४ ॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः ।
वृषाङ्की वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ ५ ॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः ।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोम-सूर्या-ऽग्नि-लोचनः ॥ ६ ॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः ।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः ॥ ७ ॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः ।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥ ८ ॥
कृत्तिवासाः पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः ।
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः ॥ ९ ॥
व्योमकेशो महासेन-जनकश्चारुविक्रमः ।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥१०॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः ।
शाश्वतः खण्डपरशू रजः पाशविमोचनः ॥११॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः ।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥१२॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः ॥१३॥

इति शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ७० ॥

•

७१. दारिद्र्य-दहन-शिवस्तोत्रम्

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय ।
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥१॥

गौरिप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय।
गङ्गाधराय गजराज-विमर्दनाय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ।२।
भक्ति-प्रियाय भव-रोग-भयापहाय उग्राय दुर्गभव-सागरतारणाय।
ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।३।
चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय।
मञ्जीरपादयुगलाय जटाधराय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ।४।
पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय।
आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ।५।
भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालान्तकाय कमलासनपूजिताय।
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।६।
रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय।
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।७।
मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय।
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।८।

वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम्।
सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्र-पौत्रादि-वर्धनम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ९॥

इति श्रीवसिष्ठविरचितं दारिद्र्य-दहन-शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥ ७१॥

७२. शिवमहिम्नस्तोत्रम्

पुष्पदन्त उवाच

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथाऽवाच्यः सर्वः स्वमति-परिणामावधि गृणन्
ममाऽप्येषः स्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः॥१॥
अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्-मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्ववार्चीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥
मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् ! किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन ! बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥
तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षा-प्रलयकृत्
त्रयीवस्तु-व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद ! रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥
किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥
अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर ! संशेरत इमे ॥ ६ ॥
त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजु-कुटिल-नानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥
महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद ! तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥
ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याऽध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।

समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन ! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिहेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ९ ॥
तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्ति-श्रद्धा-भरगुरु-गृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥
अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥
अमुष्य त्वत्सेवा-समधिगत-सारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलस-चलिताङ्गुष्ठ-शिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥
यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजन-विधेयस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याऽप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥
अकाण्ड-ब्रह्माण्ड-क्षय-चकित-देवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद् यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभय-भङ्ग-व्यसनिनः ॥१४॥
असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश ! त्वामितर-सुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥
मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघ-रुग्ण-ग्रहगणम् ।

मुहुर्द्योदौ:स्थ्यं यात्यनिभृत-जटा-ताडित-तटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥
वियद्व्यापी तारागण-गृणित-फेनोद्गम-रुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यूनेनैवोन्नेयं धृतमहिम ! दिव्यं तव वपुः ॥१७॥
रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्राऽर्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥
हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निज-मुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥१९॥
क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कृतपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥
क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृताम्
ऋषीणामार्त्विज्यं शरणद ! सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंषस्त्वत्तः क्रतुफल-विधान-व्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धा-विधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥
प्रजानाथं नाथ ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥
स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।

यदि स्त्रैणं देवो यमनिरत-देहार्ध-घटना-
दवैति त्वामद्धावत वरद ! मुग्धा युवतयः ॥२३॥
स्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद ! परमं गङ्गलमसि ॥२४॥
मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलात्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥
त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वलसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥
त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥
भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायाऽस्मै धाम्ने प्रविहित-नमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥
नमो नेदिष्ठाय प्रियदव ! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर! महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन ! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२९॥
बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।

जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥
कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद ! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥
असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश ! पारं न याति ॥३२॥
असुर-सुर-मुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथित-गुण-महिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥
अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥
महेशान्नाऽपरो देवो महिम्नो नाऽपरा स्तुतिः ।
अघोरान्नाऽपरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥
दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधर-वरमौले-र्देवदेवस्य दासः ।
सगुरु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥
सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नाऽन्यचेताः ।

व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८॥
[आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्व-भाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥
तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर !
यादृशोऽसि महादेव ! तादृशाय नमो नमः ॥
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥]
श्रीपुष्पदन्त-मुख-पङ्कज-निर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥३९॥
इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४०॥
इति श्रीपुष्पदन्तविरचितं शिवमहिम्नस्तोत्रं समाप्तम् ॥७२॥

७३. शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाकटाह-सम्भ्रमभ्रमन्निलिम्प-निर्झरी-
विलोलवीचि-वल्लरी-विराजमानमूर्धनि ।
धगद्-धगद्-धगज्ज्वलल्-ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥ १ ॥
धराधरेन्द्र-नन्दिनी-विलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद् दिगन्तसन्तति-प्रमोदमान-मानसे ।
कृपाकटाक्ष-धोरणी-निरुद्ध-दुर्धरापदि
क्वचिच्चिदम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥ २ ॥
जटभुजङ्गपिङ्गल-स्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुङ्कुमद्रव-प्रलिप्त-दिग्वधूमुखे ।

मदान्ध-सिन्धुरस्फुरत्-त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनोविनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥ ३ ॥
सहस्रलोचन-प्रभृत्यशेष-लेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणी-विधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥ ४ ॥
ललाट-चत्वरज्वलद्-धनञ्जय-स्फुलिङ्गभा-
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम् ।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ॥ ५ ॥
कराल-भालपट्टिका-धगद्धगद्धगज्ज्वलद्-
धनञ्जयाधरीकृत-प्रचण्डपञ्चसायके ।
धराधरेन्द्र-नन्दिनी-कुचाग्र-चित्रपत्रक-
प्रकल्पनैक-शिल्पिनि त्रिलोचने मतिर्मम ॥ ६ ॥
नवीनमेघ-मण्डली-निरुद्धदुर्धरस्फुरत्-
कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धुकन्धरः ।
निलिम्प-निर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥ ७ ॥
प्रफुल्लनीलपङ्कज-प्रपञ्चकालिमच्छटा-
विडम्बिकण्ठकन्धरा-रुचिप्रबन्धकन्धरम् ।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदाऽन्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥ ८ ॥
अखर्व-सर्वमङ्गला-कलाकदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाहमाधुरी-विजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकाऽन्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥ ९ ॥
जयत्वदभ्र-विभ्रम-भ्रमद्भुजङ्गमस्फुरद्-
धगद्धगद्विनिर्गमत्-कराल-भालहव्यवाट् ।

धिमिद्धिमिद्धिमि-ध्वनन् मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तित-प्रचण्डताण्डवः शिवः ॥१०॥
दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्-विपक्ष-पक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समं प्रवर्तयन् मनः कदा सदाशिवं भजे ॥११॥
कदा निलिम्पनिर्झरी-निकुञ्जकोटरे वसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन् ।
विमुक्तलोललोचना-ललाल-भाल-लग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१२॥
इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन् स्मरन् ब्रुवन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम् ।
हरे गुरौ स भक्तिमाशु याति नाऽन्यथा गतिं
विमोहनं हि देहिनां तु शङ्करस्य चिन्तनम् ॥१३॥
पूजाऽवसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरां रथ-गजेन्द्र-तुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१४॥

इति रावणविरचितं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ७३ ॥

●

७४. शिवभुजंगप्रयातं स्तोत्रम्

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गखण्डं चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम् ।
लसद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम् ॥१॥
अनाद्यन्तमाद्यं परं तत्त्वमर्थं चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम् ।
हरिब्रह्ममृग्यं परब्रह्मरूपं मनोवागतीतं महः शैवमीडे ॥२॥
स्वशक्त्यादि-शक्त्यन्तसिंहासनस्थं मनोहारि-सर्वाङ्ग-रत्नादिभूषम् ।
जटाहीन्दुगङ्गास्थिशश्यर्कमौलिं परं शक्तिमित्रं नुमः पञ्चवक्त्रम् ॥३॥

शिवेशान-तत्पुरुषाघोरवामादिभि-र्ब्रह्मभि-र्हृन्मुखैः षड्भिरङ्गैः ।
अनौपम्यषट्त्रिंशतं तत्त्वविद्यामतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा ॥४॥
प्रवाल-प्रवाह-प्रभाशोणधर्मं मरुत्वन्मणि-श्रीमहःश्याममर्धम् ।
गुणस्यूतमेकं वपुश्चैकमन्तः स्मरामि स्मरापत्ति-सम्पत्तिहेतुम् ॥५॥
स्वसेवा-समायात-देवासुरेन्द्र-नमन्मौलि-मन्दार-मालाभिषिक्तम् ।
नमस्यामि शम्भो पदाम्भोरुहं ते भवाम्भोधिपोतं भवानीविभाव्यम् ॥६॥
जगन्नाथ मन्नाथ गौरीसनाथ प्रपन्नाऽनुकम्पिन् विपन्नार्तिहारिन् ।
महः स्तोममूर्तं समस्तैकबन्धो नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥७॥
महादेव देवेश देवादिदेव स्मरारे पुरारे यमारे हरेति ।
ब्रुवाणः स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं ततो मे दयाशील देव प्रसीद ॥८॥
विरूपाक्ष विश्वेश विद्यादिकेश त्रयीमूल शम्भो शिव त्र्यम्बक त्वम् ।
प्रसीद स्मर त्राहि पश्यावपुष्य क्षमस्वाऽऽप्नुहीति क्षपा हि क्षिपामः ॥९॥
त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति प्रसीद स्मरन्नेव हन्तास्तु दैन्यम् ।
न चेत्ते भवेद् भक्तवात्सल्यहानिस्ततो मे दयालो दयां सन्निधेहि ॥१०॥
अयं दानकालस्त्वहं दानपात्रं भवान्नाथ दाता त्वदन्यं न याचे ।
भवद्भक्तिमेव स्थिरां देहि मह्यं कृपाशील शम्भो कृतार्थोऽस्मि तस्मात् ११
पशुं वेत्सि चेन्मां त्वमेवाऽधिरूढः कलङ्कीति वा मूर्ध्नि धत्से त्वमेव ।
द्विजिह्वः पुनः सोऽपि ते कण्ठभूषा त्वदङ्गीकृताः शर्व सर्वेऽपि धन्याः १२॥
न शक्नोमि कर्तुं परद्रोहलेशं कथं प्रीयसे त्वं न जाने गिरीश ।
तदा हि प्रसन्नोऽसि कस्याऽपि कान्ता सुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणो वा १३
स्तुतिं ध्यानमर्चां यथावद् विधातुं भजन्नप्यजानन् महेशावलम्बे ।
वसन्तं सुतं त्रातुमग्रे मृकण्डोर्यमप्राणनिर्वापणं त्वत्पदाब्जम् ॥१४॥
अकण्ठे कलङ्कादनङ्गे भुजङ्गादपाणौ कपालादभालेऽनलाक्षात् ।
अमौलौ शशाङ्कादवामे कलत्रादहं देवमन्यं न मन्ये न मन्ये ॥१५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवभुजंगप्रयातस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ७४ ॥

७५. शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥ १ ॥

मन्दाकिनी-सलिल-चन्दन-चर्चिताय नन्दीश्वर-प्रमथनाथ-महेश्वराय ।
मन्दारपुष्प-बहुपुष्प-सुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय ॥ २ ॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-सूर्याय दक्षाऽध्वर-नाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय ॥ ३ ॥
वसिष्ठ-कुम्भोद्भव-गौतमार्य-मुनीन्द्र-देवार्ऽचित-शेखराय ।
चन्द्रार्क-वैश्वानर-लोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥ ४ ॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥ ५ ॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ६ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ७५ ॥

७६. शिवषडक्षरस्तोत्रम्

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणः ।
नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ॥ २ ॥
महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम् ।
महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ॥ ३ ॥
शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारकम् ।
शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ॥ ४ ॥
वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कण्ठभूषणम् ।
वामे शक्तिधरं देवं यकाराय नमो नमः ॥ ५ ॥
यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
यो गुरुः सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः ॥ ६ ॥
षडक्षरमिदं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ७ ॥

इति श्रीरुद्रयामले उमा-महेश्वरसंवादे शिवषडक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ७६ ॥

दारिद्र्य-दुःखदहनं कमनं सुराणां
दीनार्त्ति-दावदहनं दमनं रिपूणाम् ।
दानं श्रियां प्रणमनं भुवनाधिपानां
मानं सतां वृषभवाहनमामनामः ॥ ४ ॥
श्रीकृष्णचन्द्रशरणं रमणं भवान्याः
शश्वत्प्रपन्नभरणं धरणं धरायाः ।
संसार-भार-हरणं करुणं वरेण्यं
सन्ताप-तापकरणं करवै शरण्यम् ॥ ५ ॥
चण्डी-पिचण्डिल-वितुण्ड-धृताभिषेकं
श्रीकार्तिकेय-कलनृत्यकलावलोकम् ।
नन्दीश्वरास्य-वरवाद्य-महोत्सवाढ्यं
सोल्लास-हास-गिरिजं गिरिशन्तमीडे ॥ ६ ॥
श्रीमोहिनी-निबिड-रागभरोपगूढं
योगेश्वरेश्वर-हृदम्बुज-वासरासम् ।
सम्मोहनं गिरिसुताञ्चित-चन्द्रचूडम्
श्रीविश्वनाथमधिनाथमुपैमि नित्यम् ॥ ७ ॥
आपद् विनश्यति समृध्यति सर्वसम्पद्
विघ्नाः प्रयान्ति विलयं शुभमभ्युदेति ।
योग्याङ्गनाप्तिरतुलोत्तमपुत्रलाभो
विश्वेश्वरस्तवमिमं पठतो जनस्य ॥ ८ ॥
वन्दी विमुक्तिमधिगच्छति तूर्णमेति
स्वास्थ्यं रुजार्दित उपैति गृहं प्रवासी ।
विद्या यशो विजय इष्ट-समस्त-लाभः
सम्पद्यतेऽस्य पठनात् स्तवनस्य सर्वम् ॥ ९ ॥
कन्या वरं सुलभते पठनादमुष्य
स्तोत्रस्य धान्य-धनवृद्धि-सुखं समिच्छन् ।
किं च प्रसीदति विभुः परमो दयालुः
श्रीविश्वनाथ इह संभजतोऽस्य साम्ब ॥१०॥

काशीपीठाधिनाथेन शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
महेश्वरेण ग्रथिता स्तोत्र-माला शिवार्पिता ॥११॥

इति काशीपीठाधीश्वर-शङ्कराचार्य-श्रीस्वामिमहेश्वरानन्दसरस्वती-विरचितं श्रीविश्वनाथमंगलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७८॥

●

७९. शिवनामावल्यष्टकम्

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो ।
भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥१॥
हे पार्वती-हृदय-वल्लभ चन्द्रमौले भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशजाप ।
हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥२॥
हे नीलकण्ठ वृषभध्वज पञ्चवक्त्र लोकेश शेषवलयं प्रमथेश शर्व ।
हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥३॥
हे विश्वनाथ शिव शङ्कर देवदेव गङ्गाधर प्रमथनायक नन्दिकेश ।
विश्वेश्वरान्धकरिपो हरलोकनाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ।४॥
वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश वीरेश दक्षमखकाल विभो गणेश ।
सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥५॥
श्रीमन् महेश्वर कृपामय हे दयालो हे व्योमकेश शितिकण्ठगणाधिनाथ ।
भस्माङ्गराग नृकपाल-कलापमाल संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥६॥
कैलास-शैल-विनिवास वृषाकपे हे मृत्युञ्जय त्रिनयन त्रिजगन्निवास ।
नारायण प्रिय मदापह शक्तिनाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ।७।
विश्वेश विश्वभव-नाशित-विश्वरूप विश्वात्मक त्रिभुवनैक-गुणाभिवेश
हे विश्वबन्धु करुणामय दीनबन्धो संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष८॥
गौरीविलासभुवनाय महेश्वराय पञ्चाननाय शरणागतरक्षकाय ।
शर्वाय सर्वजगतामधिपाय तस्मै दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ।९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवनामावल्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ७९ ॥

●

८०. चन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रम्

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम् ।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ १ ॥

रत्नसानु-शरासनं रजताद्रि-शृङ्गनिकेतनं
सिञ्जिनीकृत-पन्नगेश्वरमच्युतानन-सायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ २ ॥

पञ्चपादप-पुष्पगन्ध-पदाम्बुजद्वय-शोभितं
भाललोचन-जातपावक-दग्धमन्मथ-विग्रहम् ।
भस्मदिग्ध-कलेवरं भव-नाशनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ ३ ॥

मत्तवारण-मुख्यचर्मकृतोत्तरीय-मनोहरं
पङ्कजासन-पद्मलोचन-पूजिताङ्घ्रि-सरोरुहम् ।
देवसिन्धुतरङ्गसीकर-सिक्त-शुभ्रजटाधरं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ ४ ॥

यक्ष-राजसखं भगाक्षहरं भुजङ्ग-विभूषणं
शैल-राजसुता-परिष्कृत-चारुवाम-कलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ ५॥

कुण्डलीकृत-कुण्डलेश्वर-कुण्डलं वृषवाहनं
नारदादि-मुनीश्वर-स्तुत-वैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्तक-माश्रिता-ऽमरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ ६ ॥

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्ति-मुक्ति-फलप्रदं सकलाघसङ्घनिबर्हणं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ ७ ॥

भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् ।
सोमवारिद-भू हुताशन-सोमपा-निलखाकृतिं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥ ८॥
विश्वसृष्टि-विधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोक-निवासिनम् ।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथ-समन्वितं
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥९॥
मृत्युभीत- मृकण्डसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ
यत्र कुत्र च यः पठेन्न हि तस्य मृत्युभयं भवेत् ।
पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरं
चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥१०॥
इति श्रीचन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८०॥

८१. प्रदोषस्तोत्राष्टकम्

सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि
सारं ब्रवीम्युपनिषद् हृदयं ब्रवीमि ।
संसारमुल्बणमसारमवाप्य जन्तोः
सारोऽयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा ॥१॥
ये नाऽर्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषे
ये नाऽर्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चाऽन्ये ।
एतत् कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढा-
स्ते जन्म-जन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥२॥
ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य
कुर्वन्त्यनन्य-मनसोऽङ्घ्रि-सरोजपूजाम् ।
नित्यं प्रवृद्ध-धन-धान्य-कलत्र-पुत्र-
सौभाग्य- सम्पदधिकास्त इहैव लोके ॥३॥

कैलासशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकार्चितरत्नपीठे ।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे ॥४॥
वाग्देवी धृतवल्लकी शतमुखो वेणुं दधत् पद्मज-
स्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ।
विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात् स्थिताः
सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥५॥
गन्धर्व-यक्ष-पतगोरग-सिद्ध-साध्य-
विद्याधरा-ऽमरवराप्सरसां गणांश्च ।
येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः
प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः ॥६॥
अतः प्रदोषे शिव एक एव
पूज्योऽथ नाऽन्ये हरिपद्मजाद्याः ।
तस्मिन् महेशे विधिनेज्यमाने
सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥७॥
एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ।
प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न दानाद्यैः सुकर्मभिः ॥८॥
अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ।
तद्दोषपरिहारार्थं शरणं यातु शङ्करम् ॥९॥
इति स्कन्दपुराणोक्तं प्रदोषस्तोत्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥८१॥

८२. पशुपत्यष्टकम्

पशुपतीन्दुपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् ।
प्रणत-भक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥१॥
न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् ।
अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥२॥

मुरज-डिण्डिम-वाद्य-विलक्षणं मधुर-पञ्चमनाद-विशारदम् ।
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥३॥
शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् ।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥४॥
नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥५॥
मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजिफलप्रदम् ।
प्रलयदग्ध-सुराऽसुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥६॥
मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरण-जन्म-जरा-भय-पीडितम् ।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥७॥
हरिविरञ्चि-सुराधिप-पूजितं यमजनेश-धनेश-नमस्कृतम् ।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥८॥
पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा ।
पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥९॥

इति पृथिवीपतिसूरिविरचितं पशुपत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥८२॥

०

८३. श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकारमाकाशवासं भजेऽहम् ॥१॥
निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ।
करालं महाकालकालं कृपालं गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ॥२॥
तुषाराद्रिसङ्काशगौरं गभीरं मनोभूतकोटिप्रभासी शरीरम् ।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगङ्गा लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा ॥३॥
चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम् ।
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ॥४॥
प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशमखण्डं भजे भानुकोटिप्रकाशम् ।
त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिं भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥५॥

कलातीत-कल्याणकल्पान्तकारी सदा सज्जनानन्ददाता पुरारिः ।
चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारिः ॥ ६ ॥
न यावदुमानाथपादारविन्दं भजन्तीह लोके परे वा नराणाम् ।
न तावत्सुखं शान्तिसन्तापनाशं प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवास ॥ ७ ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां नतोऽहं सदा सर्वदा देव तुभ्यम् ।
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानं प्रभो पाहि शापान्नमामीश शम्भो ॥ ८ ॥
रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥ ९॥

इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥८३॥

०

८४. लिंगाष्टकम्

ब्रह्ममुरारि-सुरार्चितलिङ्गं निर्मल-भासित-शोभित-लिङ्गम् ।
जन्मज-दुःखविनाशक-लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ १ ॥
देवमुनि-प्रवरार्चित-लिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम् ।
रावणदर्प-विनाशन-लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ २ ॥
सर्वसुगन्धि-सुलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्धन-कारणलिङ्गम् ।
सिद्ध-सुरा-ऽसुरवन्दितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ३ ॥
कनक-महामणि-भूषितलिंगं फणिपति-वेष्टित-शोधितलिङ्गम् ।
दक्षसुयज्ञ-विनाशकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ४ ॥
कुंकुम-चन्दनलेपितलिंगं पङ्कजहार-सुशोभितलिङ्गम् ।
सञ्चित-पाप-विनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ५ ॥
देवगणार्चित-सेवितलिंगं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् ।
दिनकरकोटि-प्रभाकरलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ६ ॥
अष्टदलोपरि वेष्टितलिंगं सर्वसमुद्भव-कारणलिङ्गम् ।
अष्टदरिद्र-विनाशितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ७ ॥
सुरगुरु-सुरवर-पूजितलिंगं सुरवनपुष्प-सदार्चितलिङ्गम् ।
परात्परं परमात्मकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ८ ॥

लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ९ ॥

इति श्रीलिंगाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ८४ ॥

०

८५. बिल्वाष्टकम्

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम् ।
त्रिजन्मपाप-संहारमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ १ ॥
त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैश्च ह्यच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः ।
शिवपूजां करिष्यामि ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ २ ॥
अखण्डबिल्वपत्रेण पूजिते नन्दिकेश्वरे ।
शुद्धयन्ति सर्वपापेभ्यो ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ ३ ॥
शालिग्रामशिलामेकां विप्राणां जातु अर्पयेत् ।
सोमयज्ञ-महापुण्यमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ ४ ॥
दन्तिकोटिसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
कोटिकन्या-महादानमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ ५ ॥
लक्ष्म्याः स्तनत उत्पन्नं महादेवस्य च प्रियम् ।
बिल्ववृक्षं प्रयच्छामि ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ ६ ॥
दर्शनं बिल्ववृक्षस्य स्पर्शनं पापनाशनम् ।
अघोरपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ ७ ॥
मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥ ८ ॥
बिल्वाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥

इति बिल्वाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ८५ ॥

०

८६. शङ्कराष्टकम् [१]

शीर्षजटागणभारं गरलाहारं समस्तसंहारम् ।
कैलासाद्रिविहारं पारं भववारिधेरहं वन्दे ॥ १ ॥
चन्द्रकलोज्ज्वलभालं कण्ठव्यालं जगत्त्रयीपालम् ।
कृतनरमस्तकमालं कालं कालस्य कोमलं वन्दे ॥ २ ॥
कोपेक्षण-हतकामं स्वात्मारामं नगेन्द्रजावामम् ।
संसृतिशोक-विरामं श्यामं कण्ठेन कारणं वन्दे ॥ ३ ॥
कटितट-विलसित-नागं खण्डितयागं महाद्भुतत्यागम् ।
विगतविषयरसरागं भागं यज्ञेषु बिभ्रतं वन्दे ॥ ४ ॥
त्रिपुरादिक-दनुजान्तं गिरिजाकान्तं सदैव संशान्तम् ।
लीलाविजित-कृतान्तं भान्तं स्वान्तेषु देहिनां वन्दे ॥ ५ ॥
सुरसरिदाप्लुतकेशं त्रिदशकुलेशं हृदालयावेशम् ।
विगताशेषक्लेशं देशं सर्वेष्टसम्पदां वन्दे ॥ ६ ॥
करतल-कलितपिनाकं विगतजराकं सुकर्मणां पाकम् ।
परपदवीतवराकं नाकंगमपूगवन्दितं वन्दे ॥ ७ ॥
भूति-विभूषित-कायं दुस्तरमायं विवर्जितापायम् ।
प्रमथसमूहसहायं सायंप्रातर्निरन्तरं वन्दे ॥ ८ ॥
यस्तु पदाष्टकमेतद् ब्रह्मानन्देन निर्मितं नित्यम् ।
पठति समाहितचेताः प्राप्नोत्यन्ते स शैवमेव पदम् ॥ ९ ॥

इति ब्रह्मानन्दविरचितं शङ्कराष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ८६ ॥

०

८७ शंकराष्टकम् [२]

हे वामदेव शिवशङ्कर दीनबन्धो काशीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् ।
हे विश्वनाथ भवबीज जनार्तिहारिन् संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥१॥
हे भक्तवत्सल सदाशिव हे महेश हे विश्वतात जगदाश्रय हे पुरारे ।
गौरीपते मम पते मम प्राणनाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥२॥

हे दुःख-भञ्जकविभो गिरिजेशशूलिन् हे वेदशास्त्रविनिवेद्यजनैकबन्धो
हे व्योमकेश भुवनेश जगद्-विशिष्टसंसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ।३।
हे धूर्जटे गिरिश हे गिरिजार्धदेह हे सर्वभूतजनक प्रथमेश देव ।
हे सर्वदेव-परिपूजित-पादपद्म संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥४॥
हे देवदेव वृषभध्वज नन्दिकेश काशीपते गणपते गजचर्मवास ।
हे पार्वतीशपरमेश्वर रक्ष शम्भो संसारदुःखगहनाद् दहनाच्च शश्वत् ।५।
हे वीरभद्र भववैद्य पिनाकपाणे हे नीलकण्ठमदनान्त शिवाकलत्र ।
वाराणसीपुरपते भवभीतिहारिन् संसारदुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥६॥
हे कालकाल मृड शर्व सदासहाय हे भूतनाथ भवबाधकहे त्रिनेत्र ।
हे यज्ञशासक यमान्तकयोगि-वन्द्य संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥७॥
हे वेदवेद्य शशिशेखर हे दयालो हे सर्वभूतप्रतिपालक शूलपाणे ।
हे चन्द्रसूर्य शिखिनेत्र चिदेकरूप संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥८॥
श्रीशङ्कराष्टकमिदं योगानन्देन निर्मितम् ।
सायं प्रातः पठेन्नित्यं सर्वपापविनाशकम् ॥९॥

इति श्रीयोगानन्दतीर्थविरचितं शङ्कराष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ८७ ॥

•

८८. महादेवाष्टकम्

शिवं शान्तं शुद्धं प्रकटमकलङ्कं श्रुतिनुतं
महेशानं शम्भुं सकल-सुर-संसेव्यचरणम् ।
गिरीशं गौरीशं भवभयहरं निष्कलमजं
महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥१॥
सदा सेव्यं भक्तैर्हृदि हृदि वसन्तं गिरिशय-
मुमाकान्तं क्षान्तं करधृतपिनाकं भ्रमहरम् ।
त्रिनेत्रं पञ्चास्यं दशभुजमनन्तं शशिधरं
महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥२॥
चिताभस्मालिप्तं भुजग-मुकुटं विश्वसुखदं
धनाध्यक्षस्याङ्गं त्रिपुरवधकर्तारमनघम् ।

करोटीखट्वाङ्गे हृद्युरसि च दधानं मृतिहरं
महादेवं वन्दे प्रणतजन-तापोपशमनम् ॥ ३ ॥
सदोत्साहं गङ्गाधरमचलमानन्दकरणं
पुरारातिं भातं रतिपतिहरं दीप्तवदनम् ।
जटाजूटैर्जुष्टं रसमुख-गणेशानपितरं
महादेवं वन्दे प्रणतजन-तापोपशमनम् ॥ ४ ॥
वसन्तं कैलासे सुरमुनिसभायां हि नितरां
ब्रुवाणं सद्धर्मं निखिलमनुजानन्दजनकम् ।
महेशानी साक्षात् सनकमुनि-देवर्षिसहिता
महादेवं वन्दे प्रणतजन-तापोपशमनम् ॥ ५ ॥
शिवां स्वे वामाङ्गे गुहगणपतिं दक्षिणभुजे
गले कालं व्यालं जलधिगरलं कण्ठविवरे ।
ललाटे श्वेतेन्दुं जगदपि दधानं च जठरे
महादेवं वन्दे प्रणतजन-तापोपशमनम् ॥ ६ ॥
सुराणां दैत्यानां बहुलमनुजानां बहुविधं
तपःकुर्वाणानां झटिति फलदातारमखिलम् ।
सुरेशं विद्येशं जलनिधिसुताकान्तहृदयं
महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥ ७ ॥
वसानं वैयाघ्रीं मृदुललिलितां कृत्तिमजरां
वृषारूढं सृष्ट्यादिषु कमलजाद्यात्मवपुषम् ।
अतर्क्यं निर्मायं तदपि फलदं भक्तसुखदं
महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥ ८ ॥
इदं स्तोत्रं शम्भोर्दुरितदलनं धान्यधनदं
हृदि ध्यात्वा शम्भुं तदनु रघुनाथेन रचितम् ।
नरः सायं प्रातः पठति नियतं तस्य विपदः
क्षयं यान्ति स्वर्गं व्रजति सहसा सोऽपि मुदितः ॥ ९ ॥

इति पण्डितश्रीरघुनाथशर्मणा विरचितं महादेवाष्टकं समाप्तम् ॥ ८ ॥

०

८६. विश्वनाथाष्टकम्

गङ्गातरङ्ग-रमणीय-जटाकलापं
गौरीनिरन्तर-विभूषित-वामभागम् ।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ १ ॥
वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं
वागीश-विष्णु-सुरसेवित-पादपीठम् ।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ २ ॥
भूताधिपं भुजग-भूषण-भूषितांगं
व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
पाशाङ्कुशा-भयवरप्रद-शूलपाणिं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ ३ ॥
शीतांशु-शोभित-किरीट-विराजमानं
भालेक्षणानल-विशोषित-पञ्चबाणम् ।
नागाधिपा-रचित-भासुरकर्णपूरं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ ४ ॥
पञ्चाननं दुरितमत्त-मतंगजानां
नागान्तकं दनुजपुंगव-पन्नगानाम् ।
दावानलं मरण-शोक-जराटवीनां
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ ५ ॥
तेजोमयं सगुण-निर्गुणमद्वितीय-
मानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम् ।
नागात्मकं सकल-निष्कलमात्मरूपं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ ६ ॥
आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां
पापे मतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ ।

आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ।। ७ ।।
रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं
वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम् ।
माधुर्य-धैर्य-सुभगं गरलाभिरामं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ।। ८ ।।
वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य
व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुल-सौख्यमनन्तकीर्तिं
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ।। ९ ।।
विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।। १०।।

इति श्रीमहर्षिव्यासकृतं विश्वनाथाष्टकं सम्पूर्णम् ।। ८९ ।।

•

९०. विश्वनाथाष्टकस्तोत्रम्

आदिशम्भु-स्वरूप-मुनिवर-चन्द्रशीश-जटाधरं
मुण्डमाल-विशाललोचन-वाहनं वृषभध्वजम् ।
नागचन्द्र-त्रिशूलडमरू भस्म-अंगविभूषणं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ।। १ ।।
गङ्गसङ्ग-उमाङ्गवामे-कामदेव-सुसेवितं
नादबिन्दुज-योगसाधन-पञ्चवक्त्रत्रिलोचनम् ।
इन्दु-बिन्दुविराज-शशिधर-शङ्करं सुरवन्दितं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ।। २ ।।
ज्योतिलिंग-स्फुलिंगफणिमणि-दिव्यदेवसुसेवितं
मालतीसुर - पुष्पमाला - कञ्ज-धूप-निवेदितम् ।
अनलकुम्भ-सुकुम्भझलकत-कलशकञ्चनशोभितं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ।। ३ ।।

मुकुटक्रीट-सुकनककुण्डलरञ्जितं मुनिमण्डितं
हारमुक्ता-कनकसूत्रित-सुन्दरं सुविशेषितम् ।
गन्धमादन-शैल-आसन-दिव्यज्योतिप्रकाशनं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथ-विश्वेश्वरम् ॥ ४ ॥
मेघडम्बरछत्रधारन-चरनकमल-विलासितं
पुष्परथ-परमदनमूरति-गौरिसङ्गसदाशिवम् ।
क्षेत्रपाल-कपाल-भैरव-कुसुम-नवग्रहभूषितं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथ-विश्वेश्वरम् ॥ ५ ॥
त्रिपुरदैत्य-विनाशकारक-शङ्करं फलदायकं
रावणाद्दशकमलमस्तक-पूजितं वरदायकम् ।
कोटिमन्मथमथन-विषधर-हारभूषण-भूषितं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥ ६ ॥
मथितजलधिज-शेषविगलित-कालकूटविशोषणं
ज्योतिविगलितदीपनयन-त्रिनेत्रशम्भु-सुरेश्वरम् ।
महादेवसुदेव-सुरपतिसेव्य-देवविश्वम्भरं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥ ७ ॥
रुद्ररूपभयङ्करं कृतभूरिपान-हलाहलं
गगनवेधित-विश्वमूल-त्रिशूलकरधर-शङ्करम् ।
कामकुञ्जर-मानमर्दन-महाकाल-विश्वेश्वरं
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥ ८ ॥
ऋतुवसन्तविलास-चहुँदिशि दीप्यते फलदायकं
दीव्यकाशिकधामवासी-मनुजमंगलदायकम् ।
अम्बिकातट-वैद्यनाथं शैलशिखरमहेश्वरम्
श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥ ९ ॥
शिवस्तोत्र-प्रतिदिन-ध्यानधर-आनन्दमय-प्रतिपादितं
धन-धान्य-सम्पति-गृहविलासित-विश्वनाथ-प्रसादजम् ।
हर-धाम-चिरगण-संगशोभित-भक्तवर-प्रियमण्डितं
आनन्दवन-आनन्दछवि-आनन्द-कन्द-विभूषितम् ॥१०॥

इति पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिसंस्कृतं विश्वनाथाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

९१. विश्वनाथस्तवः

भवानीकलत्रं हरं शूलपाणिं शरण्यं शिवं सर्पहारं गिरीशम् ।
अज्ञानान्तकं भक्तविज्ञानदं ते भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥१॥
अजं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं गुणज्ञं दयाज्ञानसिन्धुं प्रभुं प्राणनाथम् ।
विभुं भावगम्यं भवं नीलकण्ठं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥२॥
चिताभस्मभूषार्चिताभासुराङ्गं श्मशानालयं त्र्यम्बकं मुण्डमालम् ।
कराभ्यां दधानं त्रिशूलं कपालं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥३॥
अघघ्नं महाभैरवं भीमदंष्ट्रं निरीहं तुषाराचलाभांगगौरम् ।
गजारिं गिरौ संस्थितं चन्द्रचूडं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥४॥
विधुं भालदेशे विभातं दधानं भुजङ्गेशसेव्यं पुरारिं महेशम् ।
शिवासंगृहीतार्द्धदेहं प्रसन्नं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥५॥
भवानीपतिं श्रीजगन्नाथनाथं गणेशं गृहीतं बलीवर्दयानम् ।
सदा विघ्नविच्छेदहेतुं कृपालुं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥६॥
अगम्यं नटं योगिभिर्दण्डपाणिं प्रसन्नाननं व्योमकेशं भयघ्नम् ।
स्तुतं ब्रह्ममायादिभिः पादकुञ्जं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥७॥
मृडं योगमुद्राकृतं ध्याननिष्ठं धृतं नागयज्ञोपवीतं त्रिपुण्ड्रम् ।
ददानं पदाम्भोजनम्राय कामं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥८॥
मृडस्य स्वयं यः प्रभाते पठेन्ना हृदिस्थः शिवस्तस्य नित्यं प्रसन्नः ।
चिरस्थं धनं मित्रवर्गं कलत्रं सुपुत्रं मनोऽभीष्टमोक्षं ददाति ॥९॥
योगीशमिश्रमुखपङ्कजनिर्गतं यो विश्वेश्वराष्टकमिदं पठति प्रभाते ।
आसाद्य शङ्करपदाम्बुजयुग्मभक्तिंभुक्त्वा समृद्धिमिह याति शिवान्तिकेऽन्ते

इति श्रीयोगीशमिश्रविरचितः विश्वनाथस्तवः समाप्तः ॥ ९१ ॥

●

९२. श्रीकाशीविश्वनाथस्तोत्रम्

कण्ठे यस्य लसत्करालगरलं गंगाजलं मस्तके
वामांगे गिरिराजराजतनया जाया भवानी सती ।

नन्दि-स्कन्दगणाधिराज-सहिता श्रीविश्वनाथप्रभुः
काशीमन्दिरसंस्थितोऽखिलगुरुर्देयात् सदा मंगलम् ॥१॥
यो देवैरसुरैर्मुनीन्द्रतनयैर्गन्धर्वयक्षोरगै-
र्नागैर्भूतलवासिभिर्द्विजवरैः संसेवितः सिद्धये ।
या गङ्गोत्तरवाहिनी परिसरे तीर्थैरसंख्यैर्वृता
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी देयात् सदा मंगलम् ॥२॥
तीर्थानां प्रवरा मनोरथकरी संसारपारापरा-
नन्दा नन्दिगणेश्वरैरुपहिता देवैरशेषैः स्तुता ।
या शम्भोर्मणिकुण्डलैककणिका विष्णोस्तपोदीर्घिका
सेयं श्रीमणिकर्णिका भगवती देयात् सदा मंगलम् ॥३॥
एषा धर्मपताकिनी तटरुहासेवावसन्नाकिनी
पश्यन् पातकिनो भगीरथतपःसाफल्यदेवाकिनी ।
प्रेमारूढपताकिनी गिरिसुता सा केकरास्वाकिनी
काश्यामुत्तरवाहिनी सुरनदी देयात् सदा मंगलम् ॥४॥
विघ्नावास-निवास-कारणमहा-गण्डस्थलालम्बितः
सिन्दूरारुणपुञ्जचन्द्रकिरण-प्रच्छादिनागच्छविः ।
श्रीविश्वेश्वरवल्लभो गिरिजया सानन्दकानन्दितः
स्मेरास्यस्तव ढुण्ढिराजमुदितो देयात् सदा मंगलम् ॥५॥
केदारः कलशेश्वरः पशुपतिर्धर्मेश्वरो मध्यमो
ज्येष्ठेशो पशुपश्च कन्दुकशिवो विघ्नेश्वरो जम्बुकः ।
चन्द्रेशो ह्यमृतेश्वरो भृगुशिवः श्रीवृद्धकालेश्वरो
मध्येशो मणिकर्णिकेश्वरशिवो देयात् सदा मंगलम् ॥६॥
गोकर्णस्त्वथ भारभूतनुदनुः श्रीचित्रगुप्तेश्वरो
यक्षेशस्तिलपर्णसङ्गमशिवो शैलेश्वरः कश्यपः ।
नागेशोऽग्निशिवो निधीश्वरशिवोऽगस्तीश्वरस्तारक-
ज्ञानेशोऽपि पितामहेश्वरशिवो देयात् सदा मंगलम् ॥७॥
ब्रह्माण्डं सकलं मनोषितरसै रत्नैः पयोभिर्हरं
खेलैः पूरयते कुटुम्बनिलयान् शम्भोर्विलासप्रदा ।

नानादिव्यलताविभूषितवपुः काशीपुराधीश्वरी
श्रीविश्वेश्वरसुन्दरी भगवती देयात् सदा मंगलम् ॥ ८ ॥
या देवी महिषासुरप्रमथनी या चण्डमुण्डापहा
या शुम्भासुररक्तबीजदमनी शक्रादिभिः संस्तुता ।
या शूलासिधनुःशराभयकरा दुर्गादिसंदक्षिणा-
माश्रित्याश्रित-विघ्नशं समयतु देयात् सदा मंगलम् ॥ ९ ॥
आद्या श्रीर्विकटा ततस्तु विरजा श्रीमङ्गला पार्वती
विख्याता कमला विशालनयना ज्येष्ठा विशिष्टानना ।
कामाक्षी च हरिप्रिया भगवती श्रीघण्टघण्टादिका
मौर्या षष्टिसहस्रमातृसहिता देयात् सदा मंगलम् ॥१०॥
आदौ पञ्चनदं प्रयागमपरं केदारकुण्डं कुरु-
क्षेत्रं मानसकं सरोऽमृतजलं शावस्य तीर्थं परम् ।
मत्स्योदर्यथ दण्डखाण्डसलिलं मन्दाकिनी जम्बुकं
घण्टाकर्ण-समुद्रकूपसहितो देयात् सदा मंगलम् ॥११॥
रेवाकुण्डजलं सरस्वतिजलं दुर्वासकुण्डं ततो
लक्ष्मीतीर्थलवाङ्कुशस्य सलिलं कन्दर्पकुण्डं तथा ।
दुर्गाकुण्डमसीजलं हनुमतः कुण्डप्रतापोर्जितः
प्रज्ञानप्रमुखानि वः प्रतिदिनं देयात् सदा मङ्गलम् ॥१२॥
आद्यः कूपवरस्तु कालदमनः श्रीवृद्धकूपोऽपरो
विख्यातस्तु पराशरस्तु विदितः कूपः सरो मानसः ।
जैगीषव्यमुनेः शशाङ्कनृपतेः कूपस्तु धर्मोद्भवः
ख्यातः सप्तसमुद्रकूपसहितो देयात् सदा मङ्गलम् ॥१३॥
लक्ष्मीनायक-बिन्दुमाधव-हरिर्लक्ष्मीनृसिंहस्ततो
गोविन्दस्त्वथ गोपिकाप्रियतमः श्रीनारदः केशवः ।
गंगाकेशव-वामनाख्यतदनु श्वेतो हरिः केशवः
प्रह्लादादि-समस्तकेशवगणो देयात् सदा मंगलम् ॥१४॥
लोलार्को विमलार्कमायुखरविः संवर्तसंज्ञो रवि-
र्विख्यातो द्रुपदुःखखोल्कमरुणः प्रोक्तोत्तरार्को रविः ।

गंगार्कस्त्वथ वृद्धवृद्धिविबुधा काशीपुरीसंस्थिताः
सूर्या द्वादशसंज्ञकाः प्रतिदिनं दे ।त् सदा मङ्गलम् ॥१५॥
आद्यो ढुण्ढिविनायको गणपतिश्चिन्तामणिः सिद्धिदः
श्येनाविघ्नपतिस्तु वक्रवदनः श्रीपाशपाणिः प्रभुः ।
आशापक्षविनायकाप्रषकरो मोदादिकः षड्गुणो
लोला ादिविनायकाः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१६॥
हेरम्बो नलकूबरो गणपतिः श्रीभीमचण्डीगणो
विख्यातो मणिकर्णिकागणपतिः श्रीसिद्धिदो विघ्नपः ।
मुण्डश्चण्डमुखश्च कष्टहरणः श्रीदण्डहस्तो गणः
श्रीदुर्गाख्यगणाधिपः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१७॥
आद्यो भैरवभीषणस्तदपरः श्रीकालराजः क्रमा-
च्छ्रीसंहारकभैरवस्त्वथ रुरुश्चोन्मत्तको भैरवः ।
क्रोधश्चण्डकपालभैरववरः श्रीभूतनाथादयो
ह्यष्टौ भैरवमूर्तयः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१८॥
आयातोऽम्बिकया सह त्रिनयनः सार्धं गणैर्नन्दितां
काशीमाशुविशन् हरः प्रथमतो वार्षध्वजेऽवस्थितः ।
आयाता दश धेनवः सुकपिला दिव्यैः पयोभिर्हरं
ख्यातं तद्वृषभध्वजेन कपिलं देयात् सदा मंगलम् ॥१९॥
आनन्दाख्यवनं हि चम्पकवनं श्रीनैमिषं खाण्डवं
पुण्यं चैत्ररथं त्वशोकविपिनं रम्भावनं पावनम् ।
दुर्गारण्यमथोऽपि कैरववनं वृन्दावनं पावनं
विख्यातानि वनानि वः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥२०॥
अलिकुलदलनीलःकालदंष्ट्राकरालः सजलजलदनीलो व्यालयज्ञोपवीतः ।
अभयवरदहस्तो डामरोद्दामनादः सकलदुरितभक्षो मंगलं वो ददातु ।२१
अर्धांगे विकटा गिरीन्द्रतनयो गौरी सती सुन्दरी
सर्वांगे विलसद्विभूतिधवलः कालो विशालेक्षणः ।
वीरेशः सहनन्दिभृंगिसहितः श्रीविश्वनाथः प्रभुः
काशीमन्दिरसंस्थितोऽखिलगुरुर्देयात् सदा मंगलम् ॥२२॥

यः प्रातः प्रयतः प्रसन्नमनसा प्रेमप्रमोदाकुलः
ख्यातं तत्र विशिष्टपादभुवनेशेन्द्रादिभिर्यत् स्तुतम् ।
प्रातः प्राङ्मुखमासनोत्तमगतो ब्रूयाच्छृणोत्यादरात्
काशीवासमुखान्यवाप्य सततं प्रीते शिवे धूर्जटिः ॥२३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं काशीविश्वनाथस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ९२ ॥

९३. शिवाष्टकम्

प्रभुं प्राणनाथं विभुं विश्वनाथं जगन्नाथनाथं सदानन्दभाजाम् ।
भवद्भव्यभूतेश्वरं भूतनाथं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥१॥
गले रुण्डमालं तनौ सर्पजालं महाकालकालं गणेशाधिपालम् ।
जटाजूटभंगोत्तरंगैर्विशालं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥२॥
मुदामाकरं मण्डनं मण्डयन्तं महामण्डलं भस्मभूषाधरं तम् ।
अनादिं ह्यपारं महामोहमारं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥३॥
तटाधोनिवासं महाट्टाट्टहासं महापापनाशं सदा सुप्रकाशम् ।
गिरीशं गणेशं सुरेशं महेशं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥४॥
गिरीन्द्रात्मजासंगृहीतार्धदेहं गिरौ संस्थितं सर्वदासन्नगेहम् ।
परब्रह्म-ब्रह्मादिभिर्वन्द्यमानं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥५॥
कपालं त्रिशूलं कराभ्यां दधानं पदाम्भोजनम्राय कामं ददानम् ।
बलीवर्दयानं सुराणां प्रधानं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥६॥
शरच्चन्द्रगात्रं गुणानन्दपात्रं त्रिनेत्रं पवित्रं धनेशस्य मित्रम् ।
अपर्णाकलत्रं चरित्रं विचित्रं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥७॥
हरं सर्पहारं चिताभूविहारं भवं वेदसारं सदा निर्विकारम् ।
श्मशाने वसन्तं मनोजं दहन्तं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥८॥
स्तवं यः प्रभाते नरः शूलपाणेः पठेत् सर्वदा भर्गभावानुरक्तः ।
स पुत्रं धनं धान्यमित्रं कलत्रं विचित्रः समासाद्य मोक्षं प्रयाति ॥९॥

इति शिवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ ९३ ॥

९४. शिवरामाष्टकम्

शिव हरे शिव राम सखे प्रभो त्रिविधतापनिवारण हे विभो ।
अज जनेश्वर यादव पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥१॥
कमललोचन राम दयानिधे हर गुरो गजरक्षक गोपते ।
शिवतनो भव शङ्कर पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥२॥
स्वजनरञ्जन मङ्गल-मन्दिरं भजति तं पुरुषं परमं पदम् ।
भवति तस्य सुखं परमाद्भुतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥३॥
जय युधिष्ठिर-वल्लभ भूपते जय जयाऽर्जितपुण्यपयोनिधे ।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तु ते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥४॥
भवविमोचन माधव मापते सुकविमानसहंस शिवारते ।
जनकजारत राघव रक्ष मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥५॥
अवनिमण्डलमङ्गल मापते जलदसुन्दर राम रमापते ।
निगम-कीर्ति-गुणार्णव गोपते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥६॥
पतित-पावन- नाममयी लता तव यशो विमलं परिगीयते ।
तदपि माधव मां किमुपेक्षसे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥७॥
अमरतापरदेव रमापते विजयतस्तव नाम धनोपमम् ।
मयि कथं करुणार्णव जायते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥८॥
हनुमतः प्रिय चापकर प्रभो सुरसरिद्धृतशेखर हे गुरो ।
मम विभो किमु विस्मरणं कृतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥९॥
नरहरेति परं जनसुन्दरं पठति यः शिवरामकृतस्तवम् ।
विशति रामरमाचरणाम्बुजे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥१०॥

प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठदेकाग्रमानसः ।
विजयो जायते तस्य विष्णुसान्निध्यमाप्नुयात् ॥११॥

इति श्रीरामानन्दविरचितं शिवरामाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ९४ ॥

०

९५. शिवरक्षास्तोत्रम्

अस्य श्रीशिवरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः, श्रीसदाशिवो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थं शिवरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः ।

चरितं देवदेवस्य महादेवस्य पावनम् ।
अपारं परमोदारं चतुर्वर्गस्य साधनम् ॥१॥
गौरीविनायकोपेतं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रकम् ।
शिवं ध्यात्वा दशभुजं शिवरक्षां पठेन्नरः ॥२॥
गंगाधरः शिरः पातु भालमर्धेन्दुशेखरः ।
नयने मदनध्वंसी कर्णौ सर्पविभूषणः ॥३॥
घ्राणं पातु पुरारातिर्मुखे पातु जगत्पतिः ।
जिह्वां वागीश्वरः पातु कन्धरां शितिकन्धरः ॥४॥
श्रीकण्ठः पातु मे कण्ठं स्कन्धौ विश्वधुरन्धरः ।
भुजौ भूभारसंहर्ता करौ पातु पिनाकधृक् ॥५॥
हृदयं शङ्करः पातु जठरं गिरिजापतिः ।
नाभिं मृत्युञ्जयः पातु कटी व्याघ्राजिनाम्बरः ॥६॥
सक्थिनी पातु दीनार्तशरणागतवत्सलः ।
ऊरू महेश्वरः पातु जानुनी जगदीश्वरः ॥७॥
जंघे पांतु जगत्कर्ता गुल्फौ पातु गणाधिपः ।
चरणौ करुणासिन्धुः सर्वांगानि सदाशिवः ॥८॥
एतां शिवबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स भुक्त्वा सकलान् कामान् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥९॥
ग्रह-भूत-पिशाचाद्यास्त्रैलोक्ये विचरन्ति ये ।
दूरादाशु पलायन्ते शिव-नामाभिरक्षणात् ॥१०॥
अभयङ्करनामेदं कवचं पार्वतीपतेः ।
भक्त्या बिभर्ति यः कण्ठे तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ॥११॥
इमां नारायणः स्वप्ने शिवरक्षां यथाऽऽदिशत् ।
प्रातरुत्थाय योगीन्द्रो याज्ञवल्क्यस्तथाऽलिखत् ॥१२॥

इति श्रीयाज्ञवल्क्यप्रोक्तं शिवरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९५॥

०

९६. अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्

मन्दारमाला-कुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥१॥
एकः स्तनस्तुंगतरः परस्य वार्तामिव प्रष्टुमगान्मुखाग्रम् ।
यस्याः प्रियार्धस्थितिमुद्वहन्त्याः सा पातु वः पर्वतराजपुत्री ॥२॥
यस्योपवीतगुण एव फणावृतैकवक्षोरुहः कुचपटीयति वामभागे ।
तस्यै ममाऽस्तु तमसामवसानसीम्ने चन्द्रार्धमौलिशिरसे महसेनमस्या ।३
स्वेदार्द्रवामकुच- मण्डनपत्रभंग-संशोषि-दक्षिणकरांगुलिभस्मरेणुः ।
स्त्री-पुं-नंपुंसकपदव्यतिलङ्घिनी वःशम्भोस्तनुःसुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी।४

इत्यर्धनारीश्वरस्तोत्रं समाप्तम् ॥९६॥

०

९७. अर्धनारीनटेश्वरस्तोत्रम्

चाम्पेय-गौरार्ध-शरीरकायै कर्पूरगौरार्धशरीरकाय ।
धम्मिल्लकायै च जटाधराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥१॥
कस्तूरिका-कुंकुम-र्चचितायै चितारजःपुञ्ज-विचर्चिताय ।
कृतस्मरायै विकृतस्मराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥२॥
चलत्-क्वणत्-कङ्कणनूपुरायै पादाब्जराजत्फणिनूपुराय ।
हेमांगदायै भुजगांगदाय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥३॥
विशालनीलोत्पललोचनायै विकासिपङ्केरुहलोचनाय ।
समेक्षणायै विषमेक्षणाय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥४॥
मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितकन्धराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥५॥
अम्भोधर-श्यामल-कुन्तलायै तडित्प्रभाताम्रजटाधराय ।
निरीश्वरायै निखिलेश्वराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥६॥
प्रपञ्चसृष्टयुन्मुखलास्यकायै समस्तसंहारकताण्डवाय ।
जगजनन्यै जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥७॥

प्रदीप्तरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै स्फुरन्महापन्नगभूषणाय ।
शिवान्वितायै च शिवान्विताय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥८॥
एतत् पठेदष्टकमिष्टदं यो भक्त्या स मान्यो भुवि दीर्घजीवी ।
प्राप्नोति सौभाग्यमनन्तकालं भूयात् सदा तस्य समस्तसिद्धिः ॥९॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यप्रणीतमर्धनारीनटेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९७॥

९८. द्वादशज्योतिर्लिंगस्मरणम्

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम् ॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घूसृणेशं शिवालये ॥३॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं-प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥४॥
इति द्वादशज्योतिर्लिंगस्मरणं समाप्तम् ॥९८॥

९९. द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम् ।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ॥१॥
श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसंगे तुलाद्रितुंगेऽपि मुदा वसन्तम् ।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम् ॥२॥
अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम् ॥३॥
कावेरिकानमर्दयोः पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय ।
सदैव मान्धातृवरे वसन्तमोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे ॥४॥

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम् ।
सुराऽसुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि ॥ ५ ॥
याम्ये सदङ्गे नगरेऽधिरम्ये विभूषिताङ्गं विविधैश्च भोगैः ।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥
महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः ।
सुराऽसुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं शिवमेकमीडे ॥ ७ ॥
सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात् पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥ ८ ॥
सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः ।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि ॥ ९ ॥
यं डाकिनी-शाकिनिकासमाजे निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च ।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं तं शङ्करं भक्तहितं नमामि ॥ १० ॥
सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ११ ॥
इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन् समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम् ।
वन्दे महोदारतरस्वभावं घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ॥ १२ ॥
ज्योतिर्मयद्वादशलिङ्गकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण ।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च ॥ १३ ॥

इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ९९ ॥

०

१००. मृतसञ्जीवनकवचम्

एवमाराध्य गौरीशं देवं मृत्युञ्जयेश्वरम् ।
मृतसञ्जीवनं नाम्ना कवचं प्रजपेत् सदा ॥ १ ॥
सारात् सारतरं पुण्यं गुह्याद् गुह्यतरं शुभम् ।
महादेवस्य कवचं मृतसञ्जीवनाभिधम् ॥ २ ॥
समाहितमना भूत्वा शृणुष्व कवचं शुभम् ।
श्रुत्वैतद् दिव्यकवचं रहस्यं कुरु सर्वदा ॥ ३ ॥

वराभयकरो यज्वा सर्वदेवनिषेवितः ।
मृत्युञ्जयो महादेवः प्राच्यां पातु मां सर्वदा ॥ ४ ॥
दधानः शक्तिमभयां त्रिमुखः षड्भुजः प्रभुः ।
सदाशिवोऽग्निरूपी मामाग्नेय्यां पातु सर्वदा ॥ ५ ॥
अष्टादशभुजोपेतो दण्डाभयकरो विभुः ।
यमरूपी महादेवो दक्षिणस्यां सदाऽवतु ॥ ६ ॥
भङ्गाभयकरो धीरो रक्षोगणनिषेवितः ।
रक्षोरूपी महेशो मां नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु ॥ ७ ॥
पाशाभयभुजः सर्वरत्नाकरनिषेवितः ।
वरुणात्मा महादेवः पश्चिमे मां सदाऽवतु ॥ ८ ॥
गदाभयकरः प्राणनायकः सर्वदागतिः ।
वायव्यां मारुतात्मा मां शङ्करः पातु सर्वदा ॥ ९ ॥
शङ्खाभयकरस्थो मां नायकः परमेश्वरः ।
सर्वात्मान्तरदिग्भागे पातु मां शङ्करः प्रभुः ॥१०॥
शूलाभयकरः सर्वविद्यानामधिनायकः ।
ईशानात्मा तथैशान्यां पातु मां परमेश्वरः ॥११॥
ऊर्ध्वभागे ब्रह्मरूपी विश्वात्माऽधः सदाऽवतु ।
शिरो मे शङ्करः पातु ललाटं चन्द्रशेखरः ॥१२॥
भ्रूमध्यं सर्वलोकेशस्त्रिनेत्रो लोचनेऽवतु ।
भ्रूयुग्मं गिरिशः पातु कर्णौ पातु महेश्वरः ॥१३॥
नासिकां मे महादेव ओष्ठौ पातु वृषध्वजः ।
जिह्वां मे दक्षिणामूर्तिर्दन्तान् मे गिरिशोऽवतु ॥१४॥
मृत्युञ्जयो मुखं पातु कण्ठं मे नागभूषणः ।
पिनाकी मत्करौ पातु त्रिशूली हृदयं मम ॥१५॥
पञ्चवक्त्रः स्तनौ पातु उदरं जगदीश्वरः ।
नाभिं पातु विरूपाक्षः पार्श्वौ मे पार्वतीपतिः ॥१६॥
कटिद्वयं गिरीशो मे पृष्टं मे प्रमथाधिपः ।
गुह्यं महेश्वरः पातु ममोरू पातु भैरवः ॥१७॥

जानुनी मे जगद्धर्ता जंघे मे जगदम्बिका ।
पादौ मे सततं पातु लोकवन्द्यः सदाशिवः ॥१८॥
गिरीशः पातु ने भार्यां भवः पातु सुतान् मम ।
मृत्युञ्जयो ममाऽयुष्यं चित्तं मे गणनायकः ॥१९॥
सर्वांगं मे सदा पातु कालकालः सदाशिवः ।
एतत्ते कवचं पुण्यं देवतानां च दुर्लभम् ॥२०॥
मृतसञ्जीवनं नाम्ना महादेवेन कीर्तितम् ।
सहस्रावर्तनं चाऽस्य पुरश्चरणमीरितम् ॥२१॥
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेत् सुसमाहितः ।
स कालमृत्युं निर्जित्य सदाऽऽयुष्यं समश्नुते ॥२२॥
हस्तेन वा यदा स्पृष्ट्वा मृतं सञ्जीवयत्यसौ ।
आधयो व्याधयस्तस्य न भवन्ति कदाचन ॥२३॥
कालमृत्युमपि प्राप्तमसौ जयति सर्वदा ।
अणिमादिगणैश्वर्यं लभते मानवोत्तमः ॥२४॥
युद्धारम्भे पठित्वेदमष्टाविंशतिवारकम् ।
युद्धमध्ये स्थितः शत्रुः सद्यः सर्वैर्न दृश्यते ॥२५॥
न ब्रह्मादीनि चास्त्राणि क्षयं कुर्वन्ति तस्य वै ।
विजयं लभते देवयुद्धमध्येऽपि सर्वदा ॥२६॥
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत् कवचं शुभम् ।
अक्षय्यं लभते सौख्यमिह लोके परत्र च ॥२७॥
सर्वव्याधि-विनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
अजरामरणो भूत्वा सदा षोडशवार्षिकः ॥२८॥
विचरत्यखिलांल्लोकान् प्राप्य भोगांश्च दुर्लभान् ।
तस्मादिदं महागोप्यं कवचं समुदाहृतम् ॥२९॥
मृतसञ्जीवनं नाम्ना दैवतैरपि दुर्लभम् ॥३०॥

इति वसिष्ठप्रणीतं मृतसञ्जीवनकवचं सम्पूर्णम् ॥१००॥

०

१०१. प्रदोषस्तोत्रम्

जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत ।
जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित ॥१॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ।
जय नित्य निराधार जय विश्वम्भराव्यय ॥२॥
जय विश्वैकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण ।
जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर ॥३॥
जय कोटचर्कसङ्काश जयानन्त गुणाश्रय ।
जय भद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन ॥४॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन ।
जय दुस्तर-संसार-सागरोत्तारण प्रभो ॥५॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः ।
सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर ॥६॥
महादारिद्रयमग्नस्य महापापहतस्य च ।
महाशोकनिविष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥७॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ।
ग्रहैः प्रपीडयमानस्य प्रसीद मम शङ्कर ॥८॥
दरिद्रः प्रार्थयेद् देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् ।
अर्थाढ्यो वाऽथ राजा वा प्रार्थयेद् देवमीश्वरम् ॥९॥
दीर्घमायुः सदाऽऽरोग्यं कोषवृद्धिर्बलोन्नतिः ।
ममाऽस्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर ॥१०॥
शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु मम प्रजाः ।
नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः ॥११॥
दुर्भिक्षमारिसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ।
सर्वसस्यसमृद्धिश्च भूयात् सुखमया दिशः ॥१२॥
एवमाराधयेद् देवं पूजान्ते गिरिजापतिम् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥१३॥

सर्वपापक्षयकरी सर्वरोग-निवारिणी ।
शिवपूजा मयाऽऽख्याता सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ १४॥

इति प्रदोषस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १०१ ॥

०

१०२. शिवस्तुतिः

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्य-शशाङ्क-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१॥
वन्दे सर्वजगद्-विहारमतुलं वन्देऽन्धक-ध्वंसिनं
वन्दे देवशिखामणिं शशिनिभं वन्दे हरेर्वल्लभम् ।
वन्दे नाग-भुजंग-भूषणधरं वन्दे शिवं चिन्मयं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥२॥
वन्दे दिव्यमचिन्त्यमद्वयमहं वन्देऽर्कदर्पापहं
वन्दे निर्मलमादिमूलमनिशं वन्दे मखध्वंसिनम् ।
वन्दे सत्यमनन्तमाद्यमभयं वन्देऽतिशान्ताकृतिं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥३॥
वन्दे भूरथमम्बुजाक्ष-विशिखं वन्दे श्रुतीघोटकं
वन्दे शैलशरासनं फणिगुणं वन्देऽधितूणीरकम् ।
वन्दे पद्मजसारथिं पुरहरं वन्दे महाभैरवं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥४॥
वन्दे पञ्चमुखाम्बुजं त्रिनयनं वन्दे ललाटेक्षणं
वन्दे व्योमगतं जटासुमुकुटं चन्द्रार्धगंगाधरम् ।
वन्दे भस्मकृत-त्रिपुण्ड्रजटिलं वन्देऽष्टमूर्त्यात्मकं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥५॥
वन्दे कालहरं हरं विषधरं वन्दे मृडं धूर्जटिं
वन्दे सर्वगतं दयामृतनिधिं वन्दे नृसिंहापहम् ।

वन्दे विप्र-सुरार्चितांघ्रि-कमलं वन्दे भगाक्षापहं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥६॥
वन्दे मंगलराजताद्रि-निलयं वन्दे सुराधीश्वरं
वन्दे शङ्करमप्रमेयमतुलं वन्दे यमद्वेषिणम् ।
वन्दे कुण्डलिराज-कुण्डलधरं वन्दे सहस्रानन
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥७॥
वन्दे हंसमतीन्द्रियं स्मरहरं वन्दे विरूपेक्षणं
वन्दे भूतगणेशमव्ययमहं वन्देऽर्थ-राज्य-प्रदम् ।
वन्दे सुन्दर-सौरभेय-गमनं वन्दे त्रिशूलायुधं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥८॥
वन्दे सूक्ष्ममनन्तमाद्यमभयं वन्देऽन्धकारापहं
वन्दे रावण-नन्दि-भृंगि-विनतं वन्दे सुपर्णावृतम् ।
वन्दे शैलसुतार्धभागवपुषं वन्दे भयं त्र्यम्बकं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥९॥
वन्दे पावनमम्बरात्मविभवं वन्दे महेन्द्रेश्वरं
वन्दे भक्तजनाश्रयाभरतरुं वन्दे नताभीष्टदम् ।
वन्द्रे जह्नुसुताम्बिकेशमनिशं वन्दे गणाधीश्वरं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१०॥

इति शिवस्तुतिः सम्पूर्णा ॥ १०२॥

१०३· कल्किकृतं शिवस्तोत्रम् [१]

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥१॥
योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासंग-क्लिन्नमूर्धानमीशम् ।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥२॥
श्मशानस्थितं भूतवेतालसंगं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च ।
व्याघ्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽस्तमेति ॥३॥

यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रात्मा कालकर्मस्वभावैः ।
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दे क्रीडते तं नमामि ॥४॥
स्थितौ विष्णुः सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्मसेतून् बिभर्ति ।
ब्रह्माद्यंशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यंगैस्तं परेशं नमामि ॥५॥
यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन् ।
शीतांशुः खे तारकासंहग्रश्च प्रवर्तन्ते तं परेशं प्रपद्ये ॥६॥
यस्य श्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बुकालः प्रमाता ।
मेरुर्मध्ये भुवनानां च भर्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि ॥७॥

इति श्रीकल्किपुराणे कल्किकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०३॥

०

१०४. हिमालयकृतं शिवस्तोत्रम् [२]

हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।
त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥१॥
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः ।
प्रकृतिः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥२॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे ।
येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च ॥३॥
सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् ।
सोमस्त्वं सस्यपाता च सततं शीतरश्मिना ॥४॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।
मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः ॥५॥
वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदांगपारगः ।
विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ॥६॥
मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं सत्फलप्रदः ।
वाक् त्वं रागाधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम् ॥७॥

अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम् ॥८॥
तत्रोवास तमाबोध्य चारुह्य वृषाच्छिवः ।
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥९॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ।
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि ॥१०॥
भार्याहीनो लभेद् भार्यां सुशीलां सुमनोहराम् ।
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् ॥११॥
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं शङ्करस्य प्रसादतः ।
कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसङ्कटे ॥१२॥
गम्भीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने ।
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते ।
सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ॥१३॥

इति ब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे हिमालयकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०४॥

०

१०५. असितकृतं शिवस्तोत्रम् [३]

असित उवाच

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च ।
योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः ॥१॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन ।
मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते ॥२॥
कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण ।
कालादतीत कालस्थ कालकाल नमोऽस्तु ते ॥३॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक ।
गुणीश गुणिनां बीज गुणीनां गुरवे नमः ॥४॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर ।
ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥५॥

इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः ।
दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥६॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
वर्षमेकं हविष्याशी शङ्करस्य महात्मनः ॥७॥
स लभेद् वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ।
भवेद्धनाढ्यो दुःखी च मूको भवति पण्डितः ॥८॥
अभार्यो लभते भार्यां सुशीलां च पतिव्रताम् ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधिम् ॥९॥
इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसे ।
प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम् ॥१०॥
इति ब्रह्मवैवर्त-महापुराणे असितकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०५॥

•

१०६. विश्वमूर्त्यष्टकस्तोत्रम्

अकारणायाऽखिलकारणाय नमो महाकारणकारणाय ।
नमोऽस्तु कालानल-लोचनाय कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥१॥
नमोऽस्त्वहीनाभरणाय नित्यं नमः पशूनां पतये मृडाय ।
वेदान्तवेद्याय नमो नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥२॥
नमोऽस्तु भक्तेर्हितदानदात्रे सर्वौषधीनां पतये नमोऽस्तु ।
ब्रह्मण्यदेवाय नमो नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥३॥
कालाय कालानलसन्निभाय हिरण्यगर्भाय नमो नमस्ते ।
हालाहलादाय सदा नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥४॥
विरञ्चिनारायण-शक्रमुख्यैरज्ञातवीर्याय नमो नमस्ते ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्माय नमोऽघहन्त्रे कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥५॥
अनेककोटीन्दुनिभाय तेऽस्तु नमो गिरीणां पतयेऽघहन्त्रे ।
नमोऽस्तु ते भक्तिविपद्धराय कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥६॥
सर्वान्तरस्थाय विशुद्धधाम्ने नमोऽस्तु ते दुष्टकुलान्तकाय ।
समस्त-तेजोनिधये नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥७॥

यज्ञाय यज्ञादिफलप्रदात्रे यज्ञस्वरूपाय नमो नमस्ते ।
नमो महानन्दमयाय नित्यं कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥८॥
इति स्तुतो महादेवो दक्षं प्राह कृताञ्जलिम् ।
यत्तेऽभिलषितं दक्ष ! तत्ते दास्याम्यहं ध्रुवम् ॥९॥
अन्यच्च शृणु भो दक्ष यच्च किञ्चिद् ब्रवीम्यहम् ।
यत्कृतं हि मम स्तोत्रं त्वया भक्त्या प्रजापते ॥१०॥
ये श्रद्धया पठिष्यन्ति मानवाः प्रत्यहं शुभम् ।
निष्कल्मषा भविष्यन्ति सापराधा अपि ध्रुवम् ॥११॥

इति दक्षकृतं विश्वमूर्त्यष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०६॥

•

१०७. महामृत्युञ्जयध्यानम्

हस्ताम्भोज-युगस्थ-कुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ।
अक्ष-स्रग्-मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रं स्रवत्
पीयूषोऽत्र तनुं भजे स-गिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम् ॥१॥
चन्द्रोद्भासित-मूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं वहद्
हस्ताब्जेन दधत् सुदिव्यममलं हास्यायपङ्केरुहम् ।
सूर्येन्द्वग्नि-विलोचनं करतले पाशाक्षसूत्राङ्कुशा-
म्भोजं बिभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरे ॥२॥
स्मर्त्तव्याखिललोकवर्ति सततं यज्जङ्गमस्थावरं
व्याप्तं येन च यत्प्रपञ्चविहितं मुक्तिश्च यत् सिद्धयति ।
यद्वा स्यात् प्रणवत्रिभेदगहनं श्रुत्वा च यद् गीयते
तद्वस्तुस्थिति-सिद्धयेऽस्तु वरदं ज्योतिस्त्रयोत्थं महः ॥३॥
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥४॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥५॥

इति महामृत्युञ्जयध्यानं समाप्तम् ॥ १०७ ॥

०

१०८. महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषि अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमृत्युञ्जयो देवता, गौरी शक्तिः, मम सर्वारिष्ट-समस्तमृत्युशान्त्यर्थं सकलैश्वर्य-प्राप्त्यर्थं च जपे विनियोगः।

ध्यानम्

चन्द्रर्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्ष-सूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीन्दु-प्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥

ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ १ ॥
नीलकण्ठं कालमूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ २ ॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ३ ॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ४ ॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ५ ॥

गङ्गाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।। ६ ।।
अनाथः परमानन्दं कैवल्यपदगामिनम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।। ७ ।।
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टि-स्थिति-विनाशकम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।। ८ ।।
उत्पत्ति-स्थिति-संहारकर्त्तारमीश्वरं गुरुम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।। ९ ।।
मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति नाऽग्निचौरभयं क्वचित् ।।१०।।
शतावर्तं प्रकर्तव्यं सङ्कटे कष्टनाशनम् ।
शुचिर्भूत्वा पठेत् स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। ११।।
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम् ।
जन्म-मृत्युजरा-रोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ।।१२।।
तावतस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यमनुं जपेत् ।। १३।।
नमः शिवाय साम्बाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः ।। १४।।

शताङ्गायुर्मन्त्रः—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रैं ह्रः हन हन दह दह पच पच गृहाण गृहाण मारय मारय मर्दय मर्दय महामहाभैरव भैरवरूपेण धुनुय धुनुय कम्पय कम्पय विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वर क्षोभय क्षोभय कटु कटु मोहय हुं फट् स्वाहा। इति मन्त्रमात्रेण समाभीष्टो भवति ।।२५ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्कण्डेयकृतं महामृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।१०८।।

१०९. शिवाष्टकम्

पुरारिः कामारिर्निखिल-भयहारी पशुपति-
मर्हेशो भूतेशो नगपतिसुरेशो नटपतिः ।
कपाली यज्ञाली विबुधदलपाली सुरपतिः
सुराराध्यः शर्वो हरतु भवभीतिं भवपतिः ॥ १ ॥
शये शूलं भीमं दितिजभयदं शत्रुदलनं
गले मौण्डीं मालां शिरसि च दधानः शशिकलाम् ।
जटाजूटे गङ्गामघनिवहभङ्गां सुरनदीं
सुराराध्यः शर्वो हरतु भवभीतिं भवपतिः ॥ २ ॥
भवो भर्गो भीमो भवभयहरो भालनयनो
वदान्यः सम्मान्यो निखिलजन-सौजन्यनिलयः ।
शरण्यो ब्रह्मण्यो विबुधगणगण्यो गुणनिधिः
सुराराध्यः शर्वो हरतु भवभीतिं भवपतिः ॥ ३ ॥
त्वमेवेदं विश्वं सृजसि सकलं ब्रह्मवपुषा
तथा लोकान् सर्वानवसि हरिरूपेण नियतम् ।
लयं लीलाधाम त्रिपुरहररूपेण कुरुषे
त्वदन्यो नो कश्चिज्जगति सकलेशो विजयते ॥ ४ ॥
यथा रज्जौ भानं भवति भुजगस्यान्धकरिपो
तथा मिथ्याज्ञानं सकलविषयाणामिह भवे ।
त्वमेकश्चित्सर्ग-स्थिति-लय-वितानं वितनुषे
भवेन्माया तत्र प्रकृतिपदवाच्या सहचरी ॥ ५ ॥
प्रभो ! साऽनिर्वाच्या चितिविरहिता विभ्रमकरी
तवच्छायापत्त्या सकलघटनामञ्चति सदा ।
रथौ यन्तुर्योगाद् व्रजति पदवीं निर्भयतया
तथेवासौ कर्त्री त्वमसि शिव ! साक्षी त्रिजगताम् ॥६॥
नमामि त्वामीशं सकलसुखदातारमजरं
परेशं गौरीशं गणपतिसुतं वेदविदितम् ।

वरेण्यं सर्वज्ञं भुजगवलयं विष्णुदयितं
गणाध्यक्षं दक्षं प्रणतजनतापार्त्तिहरणम् ॥ ७ ॥
गुणातीतं शम्भुं बुधगणमुखोद्‍गीतयशसं
विरूपाक्षं देवं धनपतिसखं वेदविनुतम् ।
विभुं नत्वा याचे भवतु भवतः श्रीचरणयो-
र्विशुद्धा सद्‍भक्तिः परमपुरुषस्यादिविदुषः ॥ ८ ॥
शङ्करे यो मनः कृत्वा पठेच्छ्रीशङ्कराष्टकम् ।
प्रीतस्तस्मै महादेवो ददाति सकलेप्सितम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमदुत्तराम्नाय-ज्योतिष्पीठाधीश्वरजगद्-गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामि-श्रीशान्तानन्दसरस्वतीशिष्य-स्वामि-श्रीमदनन्तानन्दसरस्वतीविरचितं श्रीशिवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १०९ ॥

११०. काशीविश्वेश्वरादिस्तोत्रम्

नमः श्रीविश्वनाथाय देववन्द्यपदाय ते ।
काशीशेशावतारे मे देवदेव हृच्युपादिश ॥ १ ॥
मायाधीशं महात्मानं सर्वकारणकारणम् ।
वन्दे तं माधवं देवं यः काशीं चाऽधितिष्ठति ॥ २ ॥
वन्दे तं धर्मगोप्तारं सर्वगुह्यार्थवेदिनम् ।
गणदेवं ढुण्ढिराजं तं महान्तं स्वविघ्नहम् ॥ ३ ॥
भारं वोढुं स्वभक्तानां यो योगं प्राप्त उत्तमम् ।
तं स-ढुण्ढिं दण्डपाणिं वन्दे गङ्गातटस्थितम् ॥ ४ ॥
भैरवं दंष्ट्राकरालं भक्ताभयकरं भजे ।
दुष्टदण्ड-शूलशीर्ष-धरं वामाध्वचारिणम् ॥ ५ ॥
श्रीकाशीं पापशमनीं दमनीं दुष्टचेतसः ।
स्वनिःश्रेणिं चाविमुक्तपुरीं मर्त्यहितां भजे ॥ ६ ॥

नमामि चतुराराध्यां सदाऽणिन्मि स्थितिं गुहाम् ।
श्रीगङ्गे भैरवीं दूरीकुरु कल्याणि यातनाम् ॥७॥
भवानि रक्षाऽन्नपूर्णे सद्वर्णितगुणेऽम्बिके ।
देवर्षिवन्द्याम्बुमणिकर्णिकां मोक्षदां भजे ॥८॥

इति श्रीकाशीविश्वेश्वरादिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११०॥

१११. अत्मावीरेश्वरस्तोत्रम्

ध्यानम्

विभूति-भूषित बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम् ।
आकर्णपूर्णनेत्रं च सुरक्तदशनच्छदम् ॥१॥
चारु-पिङ्गजटा-मौलिं नग्नं प्रहसिताननम् ।
शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चित्रहारिणम् ॥२॥
पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया ।
एवं वीरेश्वरं ध्यात्वा स्तोत्रमेतज्जपेन्नरः ॥३॥

एकं ब्रह्मैवाऽद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥१॥
एकः कर्त्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ।
यद्वत् प्रत्यम्ब्वर्क एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नाऽन्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ॥२॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।
यद्वत् तद्वद् विष्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥३॥
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥४॥
शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यङ्घ्रिरायासि दूरात् ।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यक् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥५॥
नो वेदस्त्वामीश साक्षाद् हि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताऽखिलस्य ।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥६॥

नो ते गोत्रं नाऽपि जन्माऽपि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः ।
इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥७॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः ।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत् किं यत्त्वं भास्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥८॥
स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ स दण्डवद्यावदतीव हृष्टः ।
तावत् स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेव वरं वृणीहि ॥९॥
तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्वैश्वानरः कृती ।
प्रत्यब्रवीत् किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥१०॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वः सर्वगतो भवान् ।
याच्ञां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥११॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो वैश्वानरस्य ह ।
शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वाऽब्रवीच्छिशुः ॥१२॥

बाल उवाच

त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि ।
अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥१३॥
तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते ।
ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः ॥१४॥
अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ।
अब्दं त्रिकालपठनात् कामदं शिवसन्निधौ ॥१५॥
एतत् स्तोत्रस्य पठनं पुत्र-पौत्र-धनप्रदम् ।
सर्वशान्तिकरं चाऽपि सर्वापत्त्यरिनाशनम् ॥१६॥
स्वर्गा-ऽपवर्ग-सम्पत्तिकारकं नाऽत्र संशयः ।
प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य शाम्भवम् ॥१७॥
वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान् भवेत् ।
वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमैर्युतः ॥१८॥
यः पठेत् स्नानसमये लभते सकलं फलम् ।
कार्तिकस्य तु मासस्य प्रसादादहमव्ययः ॥१९॥

तव पुत्रत्वमेष्यामि यस्त्वन्यस्तत् पठिष्यति ।
अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित् ।।२०।।
गोपनीयं प्रयत्नेन महाबन्ध्याप्रसूतिकृत् ।
स्त्रिया वा पुरुषेणाऽपि नियमाल्लिङ्गसन्निधौ ।।२१।।
अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रं पुत्रदं नाऽत्र संशयः ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे बालः सोऽपि विप्रो गृहं गतः ।।२२।।
इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे वीरेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।१११।।

०

११२. कालभैरवाष्टकम्

देवराज-सेव्यमान-पावनांघ्रिपङ्कजं
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम् ।
नारदादि-योगिवृन्द-वन्दितं दिगम्बरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ।।१।।
भानुकोटि-भास्वरं भवाब्धितारकं परं
नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम् ।
कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ।।२।।
शूलटङ्कपाशदण्डपाणिमादिकारणं
श्यामकायमादिदेवमक्षरं निरामयम् ।
भीमविक्रमं प्रभुं विचित्रताण्डवप्रियं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ।।३।।
भुक्ति-मुक्ति-दायकं प्रशस्तचारुविग्रहं
भक्तवत्सलं स्थितं समस्तलोकविग्रहम् ।
विनिक्वणन्-मनोज्ञ-हेमकिङ्किणी-लसत्कटिं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ।।४।।
धर्मसेतुपालकं त्वधर्ममार्गनाशकं
कर्मपाशमोचकं सुशर्मदायकं विभुम् ।

स्वर्णवर्णशेषपाश-शोभिताङ्ग-मण्डलं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥५॥
रत्नपादुका-प्रभाभिराम-पादयुग्मकं
नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरञ्जनम् ।
मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रमोक्षणं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥६॥
अट्टहास-भिन्नपद्मजाण्डकोश-सन्ततिं
दृष्टिपात-नष्टपाप-जालमुग्रशासनम् ।
अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकन्धरं
काशिकापुराधिनाथ-कालभैरवं भजे ॥७॥
भूतसङ्घनायकं विशालकीर्तिदायकं
काशिवास-लोकपुण्य-पापशोधकं विभुम् ।
नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पतिं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥८॥
कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं
ज्ञानमुक्तिसाधनं विचित्रपुण्यवर्धनम् ।
शोक-मोह-दैन्यलोभ-कोपताप-नाशनं
प्रयान्ति कालभैरवांघ्रिसन्निधिं नरा ध्रुवम् ॥९॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥११२॥

०

११३. आपदुद्धारक-वटुकभैरवस्तोत्रम्

सूत उवाच

मेरुपृष्ठे सुखासीनं देवदेवं त्रिलोचनम् ।
शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥१॥

पार्वत्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु ।
आपदुद्धारणं मन्त्रं सर्वसिद्धिविधायकम् ॥२॥

सर्वेषाञ्चैव भूतानां हितार्थं वाञ्छितं मया।
विशेषतस्तु राज्ञां वै शान्ति-पुष्टि-प्रसाधनम् ॥ ३ ॥
अङ्गन्यास-करन्यास-देहन्यास-समन्वितम् ।
वक्तुमर्हसि देवेश! मम हर्षविवर्धनम् ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि! महामन्त्रमापदुद्धारहेतुकम्।
सर्वदुःख-प्रशमनं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ ५ ॥
अपस्मारादिरोगाणां ज्वरादीनां विशेषतः।
नाशनं स्मृति-मात्रेण मन्त्रराजमिमं प्रिये! ॥ ६ ॥
ग्रहराजभयानां च नाशनं सुखवर्धनम्।
स्नेहाद् वक्ष्यामि ते मन्त्रं सर्वसारमिमं प्रिये! ॥ ७ ॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य देवीप्रणवमुद्धरेत्।
वटुकायेति वै पश्चादापदुद्धारणाय च ॥ ८ ॥
कुरुद्वयं ततः पश्चाद् वटुकाय पुनर्वदेत्।
देवीप्रणवमुदधृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये! ॥ ९ ॥
मन्त्रोद्धारमिमं पुण्यं त्रैलोक्ये चाऽतिदुर्लभम्।
अप्रकाश्यमिमं मन्त्रं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥१०॥
स्मरणादेव मन्त्रस्य भूत-प्रेत-पिशाचकाः।
विद्रवत्यतिभीता वै कालरुद्रादिव प्रजाः ॥११॥

मन्त्रः-ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं। ॐ नमः ॥

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
सर्वकामार्थदं मन्त्रं राज्यभोगप्रदं नृणाम् ॥१२॥
पठेद् वा पाठयेद् वाऽपि पूजयेद् वाऽपि पुस्तकम्।
नाऽग्नि-चौरभयं तत्र ग्रहराजभयं तथा ॥१३॥
न च मारीभयं किञ्चित् सर्वत्र सुखवान् भवेत्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्र-पौत्रादि-सम्पदः ॥१४॥
भवन्ति सततं तस्य पुस्तकस्यापि पूजनात्।

पार्वत्युवाच

क एष भैरवो नाम आपदुद्धारणो मतः ॥१५॥
तस्य नाम सहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च।
त्वया च कथितो देवो भैरवः कल्पवित्तमः ॥१६॥
सारमुद्धृत्य तेषां वै नामाष्टशतकं वद।
यानि सङ्कीर्तयन् मर्त्यः सर्वदुःखविवर्जितः ॥१७॥
सर्वान् कामानवाप्नोति साधकः सिद्धिमेव च।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः ॥१८॥
आपदुद्धारकस्येह नामाष्टशतमुत्तमम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारणम् ॥१९॥
सर्वकामार्थदं देवि! साधकानां सुखावहम्।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥२०॥
बृहदारण्यको नाम ऋषिर्देवोऽथ भैरवः।
नामाष्टशतकस्याऽस्य छन्दोऽनुष्टप् प्रकीर्तितम् ॥२१॥
अष्टबाहुं त्रिनयनमिति बीजं समीरितम्।
शक्तिः कं कीलकं शेषमिष्टसिद्धौ नियोजयेत् ॥२२॥

ॐ रुद्राय नमः अंङ्गुष्ठयोः। ॐ शिखीमखाय नमः तर्जन्योः। ॐ शिवाय नमः मध्यमयोः। ॐ त्रिशूलिने नमः अनामिकयोः। ॐ ब्रह्मणे नमः कनिष्ठिकयोः। ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः तलयोः। ॐ मांसाशिने नमः कराग्रे। ॐ सदाशिवाय नमः करपृष्ठे। ॐ भैरवाय नमः मूर्ध्नि। ॐ भीमदर्शनाय नमः ललाटे। ॐ भूतहननाय नमः नेत्रयोः। ॐ सारमेयानुगाय नमः भ्रूवोः। ॐ भूतनाथाय नमः कर्णयोः ॐ प्रेतवाहनाय नमः कपोलयोः। ॐ भस्माङ्गाय नमः नासापुटयोः। ॐ सर्वभूषणाय नमः ओष्ठयोः। ॐ अनादिभूताय नमः आस्ये। ॐ शक्तिहस्ताय नमः गले। ॐ दैत्यशमनाय नमः स्कन्धयोः। ॐ अतुलतेजसे नमः बाह्वोः। ॐ कपालिने नमः पाण्योः। ॐ मुण्ड-

मालिने नमो हृदये । ॐ शान्ताय नमो वक्षस्थले । ॐ कामचारिणे नमः स्तनयोः । ॐ सदातुष्टाय नमः उदरे । ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः पार्श्वयोः ॐ क्षेत्रपालाय नमः पृष्ठदेशे । क्षेत्रजाय नमो नाभिदेशके । ॐ पापौघनाशनाय नमः कट्याम् । ॐ वटुकाय नमो लिङ्गदेशके । ॐ रक्षकराय नमो गुदे । ॐ रक्तलोचनाय नमः ऊर्वोः । ॐ घुर्घुरावाय नमो जान्वोः । ॐ रक्तपाणिने नमो जङ्घयोः । ॐ पादुकासिद्धाय नमो गुल्फयोः । ॐ सुरेश्वराय नमः पादपृष्ठे । ॐ आपदुद्धारहेतुकाय नमः आपादमस्तके । ॐ डमरुहस्ताय नमः पूर्वे । ॐ दण्डधारिणे नमो दक्षिणे । ॐ खड्गहस्ताय नमः पश्चिमायाम् । ॐ घण्टावादिने नमः उत्तरे । ॐ अग्निवर्णाय नमः आग्नेय्याम् । ॐ दिगम्बराय नमो नैरृत्याम् । ॐ सर्वभूतस्थाय नमो वायव्ये । ॐ अष्टसिद्धिदाय नमः ईशान्याम् । ॐ खेचरिणे नमः ऊर्ध्वे । ॐ रौद्ररूपिणे नमः पाताले ।

एवं विन्यस्य, देहे स्वे षडङ्गेषु ततो न्यसेत् ।

ॐ भूतनाथाय नमो हृदये । ॐ आदिनाथाय नमो मूर्ध्नि । ॐ आनन्दनाथाय नमः शिखायाम् । ॐ सिद्धखेचरनाथाय नमः कवचाय हुम् । ॐ सहजानन्दनाथाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ निःसीमानन्दाय नमः अस्त्राय फट् ।

एवं न्यासविधिं कृत्वा यथावत्तदनन्तरम् ।

ध्यानम्

ध्यानं तत्र प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा पठेन्नरः ॥ १ ॥
शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशं सहस्रादित्यवर्चसम् ।
नीलजीमूतसङ्काशं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥ २ ॥
अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं नूपुरारावसङ्कुलम् ॥ ३ ॥
भुजङ्गमेखलं देवमग्निवर्णं शिरोरुहम् ।
दिगम्बरं कुमारेशं वटुकाख्यं महाबलम् ॥ ४ ॥

खट्वाङ्गमपि पाशं च शूलं दक्षिणभागतः।
डमरुं च कपालं च वरदं भुजगं तथा ॥ ५ ॥
अग्निवर्णसमोपेतं सारमेयसमन्वितम्।
ध्यात्वा जपेत् सुसन्तुष्टः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुण-तिमिर-नील-व्याल-यज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्या-विघ्न-विच्छेदहेतु-
र्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥ ७ ॥

अस्य श्रीवटुकभैरवस्तवराजस्य आपदुद्धारणस्य बृहदारण्यक ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, आपदुद्धारणवटुकभैरवो देवता, अष्टबाहुं त्रिनयमिति बीजम्, कं शक्तिः, शेषं कीलकम्, ममाऽभीष्टसिध्यर्थं जपे विनियोगः।

ॐ बृहदारण्यक ऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ अष्टबाहुबटुकभैरवदेवतायै नमः हृदि। ॐ अष्टबाहुं त्रिनयनमिति बीजाय नमः गुह्ये। ॐ कं शक्तये नमः पादयोः। ॐ शेषमिति कीलकाय नमः सर्वाङ्गे। ॐ ह्रां वां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं वीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रूं वूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं बैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रौं बौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रः बः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादि। ॐ भूर्भुवः स्वरोम्, इति दिग्बन्धः। ॐ भूतनाथाय नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ आदिनाथाय नमः तर्जनीभ्यां नमः। ॐ आनन्दनाथाय नमः मध्यमाभ्यां नमः। ॐ सिद्धखेचरनाथाय नमः अनामिकाभ्यां नमः। ॐ सहजानन्दनाथाय नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ निःसीमानन्दनाथाय नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ॐ भूतनाथाय नमः हृदि। ॐ आदिनाथाय नमः मूर्ध्नि। ॐ आनन्दनाथाय नमः शिखायाम्। ॐ सिद्धिखेचरनाथाय नमः कवचाय हुम्। ॐ सहजानन्दनाथाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ निःसीमानन्दनाथाय नमः अस्त्राय फट्।

सात्त्विकध्यनम्

वन्दे बालं स्फटिक-सदृशं कुण्डलोद्भासिवक्त्रं
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किङ्किणी-नूपुराढ्यैः।
दीप्ताकाशं विशदवसगं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रं
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलखड्गं दधानम् ॥१॥

राजसध्यानम्

उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजं
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः।
नीलग्रीवमुदारकौस्तुभधरं शीतांशुचण्डोज्ज्वलं
बन्धूकारुणवाससं भयहरं वन्दे सदा भैरवम् ॥२॥

तामसध्यनम्

ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिशकलधरं मुण्डमालं महेशं
दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथ सृणिं शूलखङ्गौ दधानम्।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमय-विलसत्-किङ्किणी-नूपुराढ्यम् ॥३॥
अतिक्षीणमहाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥४॥
शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खङ्गं परशुमुसले दक्षिणाङ्गे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कुशं वामभागे
नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं नौमि तत्त्वं शिवाख्यम्॥५॥
अत्र मूलमन्त्रजपः १०८।
ॐ भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रदः क्षेत्रियो विराट् ॥१॥
स्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी स्मरान्तकः।
रक्तपां पानदः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ॥२॥

कङ्कालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गललोचनः॥ ३॥
शूलपाणिः खड्गपाणिः कङ्काली धूम्रलोचनः।
अभीरुर्भैरवीनाथो भूतपो योगिनीपतिः॥ ४॥
धनदो धनहारी च धनवान् प्रतिभानवान्।
नागहारो नागपाशो व्योमकेशः कपालधृक्॥ ५॥
कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः।
त्रिलोचनो ज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोकपः॥ ६॥
त्रिनेत्रतनयो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः।
बटुको वटुवेशश्च खट्वाङ्गवरधारकः॥ ७॥
भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः।
धूर्तो दिगम्बरः शूरो हरिणः पाण्डुलोचनः॥ ८॥
प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शङ्करः प्रियबान्धवः।
अष्टमूर्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तपोमयः॥ ९॥
अष्टाधारः षडाधारः सर्पयुक्तः शिखीसखः।
भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मजः॥१०॥
कङ्कालधारी मुण्डी च आन्त्रयज्ञोपवीतवान्।
जृम्भणो मोहनस्तम्भी मारणः क्षोभणस्तथा॥११॥
शुद्धनीलाञ्जनप्रख्यो दैत्यहा मुण्डभूषितः।
बलिभुग् बलिभुङ्नाथो बालो बालपराक्रमः॥१२॥
सर्वापत्तारणो दुर्गो दुष्टभूतनिषेवितः।
कामी कलानिधिः कान्तः कामिनीवशकृद्वशी॥१३॥
सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभुर्विष्णुरितीव हि।
पुनर्मूलमन्त्रजपः १०८।
अष्टोत्तरशतं नाम्ना भैरवस्य महात्मनः।
मया ते कथितं देवि! रहस्यं सर्वकामदम्॥१४॥
य इदं पठते स्तोत्रं नामाष्टशतमुत्तमम्।
न तस्य दुरितं किञ्चिद्रोगाणां च भयं न हि॥१५॥

न शत्रुतो भयं किञ्चित् प्राप्नुयान् मानवः क्वचित् ॥१६॥
पातकानां भयं नैव यः पठेत् स्तोत्रमुत्तमम् ।
मारीभये राजभये तथा चौराऽग्निजे भये ॥१७॥
औत्पातिके महाघोरे तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
बन्धने च महाघोरे पठेत् स्तोत्रमनुत्तमम् ॥१८॥
सर्वं प्रशमतां याति भयं भैरवकीर्तनात् ।
एकादशसहस्रं तु पुरश्चरणमुच्यते ॥१९॥
यस्त्रिसन्ध्यं पठेद् देवि ! संवत्सरमतन्द्रितः ।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानवः ॥२०॥
षण्मासं भूमिकामस्तु जपित्वा प्राप्नुयान् महीम् ।
राजशत्रुविनाशार्थं जपेन् मासाष्टकं यदि ॥२१॥
रात्रौ वारत्रयं चैव नाशयत्येव शास्त्रवान् ।
जपेन्मासत्रयं मर्त्यो राजानं वशमानयेत् ॥२२॥
धनार्थी च सुतार्थी च दारार्थी यस्तु मानवः ।
जपेन्मासत्रयं देवि ! वारमेकं तथा निशि ॥२३॥
धनं पुत्रांस्तथा दारान् प्राप्नुयान् नाऽत्र संशयः ।
निगडे चापि यो बद्धः काराग्रहनिपातितः ॥२४॥
शृङ्खलाबन्धनप्रायः पठेच्चैव दिवानिशि ।
यान् यान् समीहते कामान् तां तां प्राप्नोत्यसंशयः ॥२५॥
अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ।
सुकुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिते ॥२६॥
देयं स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
भैरवोऽपि प्रहृष्टोऽभूत् स्वयं च परमेश्वरः ॥२७॥
एवं श्रुत्वा ततो देवी नामाष्टशतमुत्तमम् ।
सन्तोषपरमं प्राप्य भैरवस्य महात्मनः ।
जजाप परया भक्त्या तदा सर्वेश्वरेश्वरी ॥२८॥
हरतु कुलगणेशो विघ्नसन्धानशेषा
नयतु कुलसमाँ पूर्णतां साधकानाम् ।

पिबतु वटुकनाथः शोणितं निन्दकानां
वितरतु स हि कामान् कौलिकानां गणेशः ॥२९॥

इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसंवादे आपदुद्धारक-वटुकभैरवतोत्रं समाप्तम् ।

•

११४. अनदिकल्पेश्वरस्तोत्रम्

कर्पूरगौरो भुजगेन्द्रहारो गङ्गाधरो लोकहितावहः सः ।
सर्वेश्वरो देववरोऽप्यघोरो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥१॥
कैलासवासी गिरिजाविलासी श्मशानवासी सुमनोनिवासी ।
काशीनिवासी विजयप्रकाशी योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥२॥
त्रिशूलधारी भवदुःखहारी कन्दर्पवैरी रजनीशधारी ।
कपर्दधारी भक्तानुसारी योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥३॥
लोकाधिनाथः प्रमथाधिनाथः कैवल्यनाथः श्रुतिशास्त्रनाथः ।
विद्यार्थनाथः पुरुषार्थनाथो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥४॥
लिङ्गं परिच्छेत्तुमधोगतस्य नारायणश्चोपरि लोकनाथ. ।
बभूवतुस्तावपि नो समर्थो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥५॥
यं रावणस्ताण्डवकौशलेन गीतेन चाऽतोषयदस्य सोऽसौ ।
कृपाकटाक्षेण समृद्धिमाप योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥६॥
सकृच्च बाणोऽवनमय्य शीर्षं यस्याग्रतः सोऽप्यलभत् समृद्धिम् ।
देवेन्द्रसम्पत्त्यधिकां गरिष्ठां योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥७॥
गुणान् विमातुं न समर्थ एष वेषश्च जीवोऽपि विकुण्ठितोऽस्य ।
श्रुतिश्च नूनं चकितं बभाषे योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥८॥
अनादिकल्पेश उमेश एतत् स्तवाष्टकं यः पठति त्रिकालम् ।
स धौतपापोऽखिललोकवन्द्य शैवं पदं यास्यति भक्तिमांश्चेत् ॥९॥

इति श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीकृतं अनादिकल्पेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

•

११५. उमामहेश्वरस्तोत्रम्

नमः शिवाभ्यां नव-यौवनाभ्यां परस्पराश्लिष्ट-वपुर्धराभ्याम् ।
नगेन्द्रकन्या-वृषकेतनाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ १ ॥
नमः शिवाभ्यां सरसोत्सवाभ्यां नमस्कृताभीष्टवरप्रदाभ्याम् ।
नारायणेनार्चित-पादुकाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ २ ॥
नमः शिवाभ्यां वृषवाहनाभ्यां विरिञ्च-विष्ण्विन्द्र-सुपूजिताभ्याम् ।
विभूतिपाटीर-विलेपनाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ ३ ॥
नमः शिवाभ्यां जगदीश्वराभ्यां जगत्पतिभ्यां जयविग्रहाभ्याम् ।
जम्भारिमुख्यैरभिवन्दिताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ ४ ॥
नमः शिवाभ्यां परमौषधाभ्यां पञ्चाक्षरी-पञ्जर-रञ्जिताभ्याम् ।
प्रपञ्च-सृष्टि-स्थिति-संहृतिभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ ५ ॥
नमः शिवाभ्यामतिसुन्दराभ्यामत्यन्तमासक्त-हृदम्बुजाभ्याम् ।
अशेषलोकैक-हितङ्कराभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ ६ ॥
नमः शिवाभ्यां कलिनाशनाभ्यां कङ्कालकल्याणवपुर्धराभ्याम् ।
कैलासशैलस्थितदेवताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ ७ ॥
नमः शिवाभ्यामशुभापहाभ्यामशेष-लोकैक-विशेषिताभ्याम् ।
अकुण्ठिताभ्यां स्मृतिसम्भृताभ्यां नमो नमः शंकर-पार्वतीभ्याम् ॥ ८ ॥
नमः शिवाभ्यां रथवाहनाभ्यां रवीन्दु-वैश्वानर-लोचनाभ्याम् ।
राकाशशाङ्काभ-मुखाम्बुजाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥ ९ ॥
नमः शिवाभ्यां जटिलन्धराभ्यां जरा-मृतिभ्यां च विवर्जिताभ्याम् ।
जनार्दनाब्जोद्भव-पूजिताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥१०॥
नमः शिवाभ्यां विषमेक्षणाभ्यां बिल्वच्छदामल्लिकदामभृद्भ्याम् ।
शोभावती-शान्तवतीश्वराभ्यां नमो नमः शंकर-पार्वतीभ्याम् ॥ ११॥
नमः शिवाभ्यां पशुपालकाभ्यां जगत्त्रयीरक्षणबद्धहृद्भ्याम् ।
समस्त-देवासुर-पूजिताभ्यां नमो नमः शंकर-पार्वतीभ्याम् ॥१२॥
स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं शिवपार्वतीयं भक्त्या पठेद् द्वादशकं नरो यः ।
स सर्वसौभाग्यफलानि भुङ्क्ते शतायुरन्ते शिवलोकमेति ॥१३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितमुमामहेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११५॥

११६. अष्टमूर्तिस्तोत्रम्

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजत-गिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशु-मृग-वरा-भीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

ईशा वास्यमिदं सर्वं चक्षोः सूर्यो अजायत ।
इति श्रुतिरुवाचातो महादेवः परावरः ॥ १ ॥
अष्टमूर्तेरसौ सूर्यो मूर्तित्त्वे परिकल्पितः ।
नेत्रत्रिलोचनस्यैकमसौ सूर्यस्तदाश्रितः ॥ २ ॥
यस्य भासा सर्वमिदं विभातीति श्रुतिरिमे ।
तमेव भान्तमीशानमनुभान्ति खगादयः ॥ ३ ॥
ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां चेति च श्रुतेः ।
वेदादीनामप्यधीशः स ब्रह्मा कैर्न पूज्यते ॥ ४ ॥
यस्य संहारकाले तु न किञ्चिदवशिष्यते ।
सृष्टिकाले पुनः सर्वं स एकः सृजति प्रभुः ॥ ५ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
इति श्रुतेर्महादेवः श्रेष्ठोर्यः सकलाश्रितः ॥ ६ ॥
विश्वं भूतं भवद्भव्य सर्वं रुद्रात्मकं श्रुतम् ।
मृत्युञ्जयस्तारकोऽतः स यज्ञस्य प्रसाधनः ॥ ७ ॥
विषमाक्षोऽपि समदृक् सशिवोऽपि शिवः स च ।
वृषसंस्थोऽप्यतिवृषो गुणात्माऽप्यगुणोऽमलः ॥ ८ ॥
यदाज्ञामुद्वहन्त्यत्र शिरसा साऽसुराः सुराः ।
अन्नं वातो वृष इतीषवो यस्य स विश्वपाः ॥ ९ ॥
भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमीति श्रुतेरयम् ।
स्वभक्त-संसारमहा-रोगहर्ताऽपि शङ्करः ॥१०॥

इत्यष्टमूर्तिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ११६ ॥

इति शिवस्तोत्राणि ।

सूर्यस्तोत्राणि

११७. सूर्यकवचम्

याज्ञवल्क्य उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल! सूर्यस्य कवचं शुभम्।
शरीरारोग्यदं दिव्यं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥ १ ॥
देदीप्यमानमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम्।
ध्यात्वा सहस्रकिरणं स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ २ ॥
शिरो मे भास्करः पातु ललाटं मेऽमितद्युतिः।
नेत्रे दिनमणिः पातु श्रवणे वासरेश्वरः ॥ ३ ॥
घ्राणं धर्मघृणिः पातु वदनं वेदवाहनः।
जिह्वां मे मानदः पातु कण्ठं मे सुरवन्दितः ॥ ४ ॥
स्कन्धौ प्रभाकरः पातु वक्षः पातु जनप्रियः।
पातु पादौ द्वादशात्मा सर्वाङ्गं सकलेश्वरः ॥ ५ ॥
सूर्यरक्षात्मकं स्तोत्रं लिखित्वा भूर्जपत्रके।
दधाति यः करे तस्य वशगाः सर्वसिद्धयः ॥ ६ ॥
सुस्नातो यो जपेत् सम्यग् योऽधीते स्वस्थमानसः।
स रोगमुक्तो दीर्घायुः सुखं पुष्टिं च विन्दति ॥ ७ ॥
इति श्रीमद्याज्ञवल्क्यमुनिविरचितं सूर्यकवचस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११७॥

०

११८. सूर्यकवच-स्तोत्रम्

श्रीसूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु मे कवचं शुभम्।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥
यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित् सम्यक् फलं प्राप्नोति निश्चितम्।
यद्धृत्वा च महादेवो गणानामधिपोऽभवत् ॥ २ ॥

पठनाद्धारणाद् विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा ।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ ३ ॥
कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतः ।
श्रीसूर्यो देवता चाऽत्र सर्वदेवनमस्कृतः ।४॥
यश-आरोग्य-मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
प्रणवो मे शिरः पातु घृणिर्मे पातु भालकम् ॥ ५ ॥
सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम् ।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ ६ ॥
ह्रीं बीज मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी ।
चन्द्रबिम्बं विंशदाद्यं पातु मे गुह्यदेशकम् ॥ ७ ॥
अक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ।
शिवो वह्निसमायुक्तो वामाक्षीबिन्दुभूषितः ।
एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥
गुह्याद् गुह्यतरो मन्त्रो वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः ।
शीर्षादि-पादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः ॥ ९ ॥
इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
श्रीप्रदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्य-विवर्धनम् ॥१०॥
कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान् भवेत् ॥११॥
बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।
तत्तत् सर्वं भवेत्तस्य कवचस्य च धारणात् ॥१२॥
भूत-प्रेत-पिशाचाश्च यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः ।
ब्रह्म-राक्षस-वेताला न द्रष्टुमपि तं क्षमाः ॥१३॥
दूरादेव पलायन्ते तस्य सङ्कीर्तनादपि ।
भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागरुकुङ्कुमैः ॥१४॥
रविवारे च सङ्क्रान्त्यां सप्तम्यां च विशेषतः ।
धारयेत् साधकश्रेष्ठः स परो मे प्रियो भवेत् ॥१५॥
त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद् दक्षिणे करे ।

शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशयः ॥१६॥
इति ते कथितं साम्ब ! त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।
कवचं दुर्लभं लोके तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥१७॥
अज्ञात्वा कवचं दिव्यं यो जपेत् सूर्यमुत्तमम् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥१८॥

इति श्रीब्रह्मयामले त्रैलोक्यमङ्गलं नाम सूर्यकवचं सम्पूर्णम् ॥११८॥

०

११९. सूर्यस्तोत्रम् [१]

ॐ सप्ताश्वं समारुह्याऽरुणसारथिमुत्तमम् ।
श्वेतपद्मधरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥
बन्धूक-पुष्पसङ्काशं हारकुण्डलभूषणम् ।
एकचक्रधरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥
लोहितस्वर्णसङ्काशं सर्वलोकपितामहम् ।
सर्वव्याधिहरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥
त्वं देव ईश्वरः शक्र-ब्रह्मा-विष्णु-महेशराट् ।
परं धर्मं परं ज्ञानं त्वां सूर्यप्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
त्वं देवलोककर्ता च कीर्त्यात्मा करणांशकम् ।
तेजो रुद्रधरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
पृथिव्यप्तेजो वायुश्चाऽऽत्माऽप्याकाशमेव च ।
सर्वज्ञं श्रीजगन्नाथं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥
अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम् ।
गगनलिङ्गमाराध्यं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥
निर्मलं निर्विकल्पं च निर्विकारं निरामयम् ।
जगत्कर्ता जगद्धर्तस्त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥
सूर्यस्तोत्रं जपेन्नित्यं ग्रहपीडाविनाशनम् ।
धनं धान्यं मनोवाञ्छांश्रियः प्राप्नोति नित्यशः ॥ ९ ॥
शिवरात्रिसहस्रेषु कृत्वा जागरणं भवेत् ।
यत्फलं लभते सर्वं तं वै सूर्यस्य दर्शनात् ॥१०॥

एकादशीसहस्राणि संक्रान्त्ययुतमेव च ।
सप्तकोटिसु दर्शेषु तत्फलं सूर्यदर्शनात् ॥११॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
कोटिकन्याप्रदानानि तत्फलं सूर्यदर्शनात् ॥१२॥
गयापिण्डः परं दाने पितॄणां च समुद्धरम् ।
दृष्ट्वा ह्यग्रयेश्वरं देवं तत्फलं समवाप्नुयात् ॥१३॥
अग्रयेश्वरसमोपेतो सोमनाथस्तथैव च ।
कैदारमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥१४॥
सूर्यस्तोत्रं पठेन्नित्यमेकचित्तः समाहितः ।
दुःखदारिद्र्यनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति ॥१५॥

इति सूर्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११९॥

१२०. सूर्यस्तोत्रम् [२]

यस्योदयास्तसमये शिवाद्या अपि चाऽञ्जलिम्
बध्नन्ति विश्वसाक्षी स प्रत्यक्षः श्रुयते रविः ॥ १ ॥
यदधीना कालगतिर्यदधीनाः क्रियाः समाः ।
यमन्त्रेण द्विजत्वाप्तिर्यन्मन्त्रेण कृतार्थता ॥ २॥
लौकिक्यपि व्यवहृतिर्यत्प्रसादात् वर्तते ।
स्मर्यतेऽस्माद् विश्वसृष्टिः सवितुः श्रूयतेऽपि च ॥ ३ ॥
जगतस्तस्थुषश्चात्मा सूर्यस्तं बहुधा जगुः ।
मूर्ताऽमूर्तं जगत्सर्वं प्राणापानात्मकं श्रुतम् ॥ ४ ॥
प्राणः सूर्योऽपरश्चन्द्रस्तयोः सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
श्रीसूर्यकिरणावेशाच्चन्द्रस्यापि च चन्द्रमा ॥ ५ ॥
अतश्चन्द्रो न भिन्नोऽस्मात् स सूर्यः सकलात्मकः ।
यं विना जगदान्ध्यं हि स देवः केन पूज्यते ॥ ६ ॥
तमोऽमुं ग्रसतीत्येष दृष्ट्वादौ न तात्त्विकः ।
तस्माद्भक्तेष्टदो देवो वरोऽर्कश्चापराजितः ॥ ७ ॥

इति श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीविरचितं सूर्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२०॥

१२१. आदित्यहृदयस्तोत्रम्

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
रावणं चाऽग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥१॥
दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।
उपगम्याऽब्रवीद् राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥ २ ॥
राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् ।
येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे ॥ ३ ॥
आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जयावहं जपेन्नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गल-माङ्गल्यं सर्वपाप-प्रणाशनम् ।
चिन्ता-शोक-प्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ५ ॥
रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवा-ऽसुर-नमस्कृतम् ।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वीरश्मिभावनः ।
एष देवः सुरगणांल्लोकान् पातु गभस्तिभिः ॥ ७ ॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपांपतिः ॥ ८ ॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः ।
वायुर्वह्निः प्रजा प्राणा ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥ ९ ॥
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
सुवर्णस्तपो भानुः स्वर्णरेता दिवाकरः ॥१०॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोंऽशुमान् ॥११॥
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥१२॥
व्योमनाथस्तमोभेद ऋग्यजुःसामपारगः ।
धनुर्वृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः ॥१३॥

आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः ।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥१४॥
नक्षत्र-ग्रह-ताराणामधिपो विश्वभावनः ।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥१५॥
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाऽद्रये नमः ।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥१६॥
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥१७॥
नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥१८॥
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे ।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥१९॥
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायाऽमितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥२०॥
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे ।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥२१॥
नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः ।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥२२॥
एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ।
एष चैवाऽग्निहोत्रं च फलं चैवाऽग्निहोत्रिणाम् ॥२३॥
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥२४॥
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥२५॥
पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥२६॥
अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जयिष्यसि ।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम् ॥२७॥

एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा ।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥२८॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान् ।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥२९॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धार्थं समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत् ॥३०॥
अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ३१

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽगस्त्यप्रोक्तमादित्यहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२१॥

१२२. सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
क्षणं च कुरु राजेन्द्र गुह्यं वक्ष्यामि ते हितम् ॥ १ ॥
धौम्येन तु यथा प्रोक्तं पार्थाय सुमहात्मने ।
नाम्नामष्टोत्तरं पुण्यं शतं तच्छृणु भूपते ॥ २ ॥
सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः ।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥ ३ ॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् ।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥ ४ ॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥ ५ ॥
वैद्युतो जाठरश्चाऽग्निरैन्धनस्तेजसांपतिः ।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥ ६ ॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः ।
कला काष्ठा मुहूर्तश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥ ७ ॥

संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताऽव्यक्तः सनातनः ॥ ८ ॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥ ९ ॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥१०॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता ॥११॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः ।
धन्वन्तरिधूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥१२॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥१३॥
देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
चराऽचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेण वपुषान्वितः ॥१४॥
एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ।
नाम्नामष्टशतं पुण्यं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भुवा ॥१५॥
सुरगण-पितृ-यक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् ।
वरकनकहुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥१६॥
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् स पुत्र-दारान् धनरत्नसञ्चयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् १७।
इमं स्तवं देवनरस्य यो नरः प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।
विमुच्यते शोक-दवाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् १८।

इति श्रीमहाभारते सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२२॥

०

१२३. सूर्याष्टकम् [१]

साम्ब उवाच

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर ! ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥
लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥
त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरम् ।
महापापहरं देव तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
बृंहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च ।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
बन्धूकपुष्प-सङ्काशं हारकुण्डलभूषितम् ।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥
तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजःप्रदीपनम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञान-विज्ञान-मोक्षदम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥
सूर्याष्टकं पठेन्नित्यं ग्रहपीडाप्रणाशनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥ ९ ॥
आमिषं मधुपानं च यः करोति रवेर्दिने ।
सप्तजन्म भवेद्रोगी प्रतिजन्म दरिद्रता ॥१०॥
स्त्री-तैल-मधु-मांसानि यस्त्यजेत्तु रवेर्दिने ।
न व्याधिः शोक-दारिद्र्यं सूर्यलोकं स गच्छति ॥११॥

इति सूर्याष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १२३ ॥

०

१२४. सूर्याष्टकम् [२]

प्रभाते यस्मिन्नभ्युदितसमये कर्मसु नृणां
प्रवर्तेद् वै चेतो गतिरपि च शीतापहरणम् ।
गतो मैत्र्यं पृथ्वीसुरकुलपतेर्यश्च तमहं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ १ ॥

त्रिनेत्रोऽप्यञ्जल्या सुरमुकुटसंघृष्टचरणो
बलिं नीत्वा नित्यं स्तुति-मुदित-कालास्तसमये ।
निधानं यस्यास्यं कुरुत इति धाम्नामधिपति-
र्नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ २ ॥
मृगाङ्के मूर्तित्वं ह्यमरगणभर्ताऽकृत इति
नृणां वर्त्माऽऽत्मातमेक्षणितविदुषां यश्च यजताम् ।
क्रतुर्लोकानां यो लयभरभवेषु प्रभुरयं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ ३ ॥
दिशः खं कालो भूरुदधिरचलं चाक्षुषमिदं
स्वयं शुद्धं संविन्निरतिशयमानन्दमजरं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ ४ ॥
वृषात्पञ्चस्वेत्यौढयति दिनमानन्दगमन-
स्तथा वृद्धिं रात्रौ प्रकटयति कीटाज्जवगतिः ।
तुले मेषे यातो रचयति समानं दिननिशं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ ५ ॥
वहन्ते यं ह्यश्वा अरुणविनियुक्ताः प्रमुदिता-
स्त्रयीरूपं साक्षाद् दधति च रथं मुक्तिसदनम् ।
न जीवानां यं वै विषयति मनो वागवसरो
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ ६ ॥
तथा ब्रह्मा नित्यं मुनिजनयुता यस्य पुरत-
श्चलन्ते नृत्यंन्तोऽयुतमुत रसेनानुगुणितम् ।
निबध्नन्तो नागा रथमपि च नागायुतबला
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ ७ ॥
प्रभाते ब्रह्माणं शिवतनुभृतं मध्यदिवसे
तथा सायं विष्णुं जगति हितकारी सुखकरम् ।
सदा तेजोराशिं त्रिविधमथ पापौघशमनं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥ ८ ॥

मतं शास्त्राणां यत्तदनु रघुनाथेन रचितं
शुभे चुं राग्रामे तिमिरहरसूर्याष्टकमिदम् ।
त्रिसन्ध्यायां नित्यं पठति मनुजोऽनन्यगतिकां-
श्चतुर्वर्गप्राप्तौ प्रभवति सदा तस्य विजयम् ॥ ९ ॥

नन्देन्द्वङ्कक्षितावब्दे (१९१९) मार्गमासे शुभे दले ।
सूर्याष्टकमिदं प्रोक्तं दशम्यां रविवासरे ॥१०॥

इति पण्डितश्रीरघुनाथशर्मणा विरचितं श्रीसूर्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥१२४॥

१२५. सूर्यमण्डलाष्टकम्

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूति-स्थिति-नाश-हेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ १ ॥

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् ।
दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ २ ॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम् ।
तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ३ ॥
यन्मण्डलं ज्ञानधनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ।
समस्त-तेजोमय-दिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ४ ॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम् ।
यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ५ ॥
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्-यजुः-सामसु संप्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ६ ॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ।
यद्योगिनो योगजुषां च सङ्घाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ७ ॥
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ८ ॥
यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्ति-रक्षा-प्रलय-प्रगल्भम् ।
यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलञ्च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ९ ॥

यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम् ।
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१०॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति तच्चारणसिद्धसङ्घाः ।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥११॥
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१२॥
मण्डलाष्टतयं पुण्यं यः पठेत् सततं नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ॥१३॥

इति श्रीमदादित्यहृदये सूर्यमण्डलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१२५॥

०

१२६. सूर्यार्यास्तोत्रम्

शुक्रतुण्डच्छविसवितुश्चण्डरुचेः पुण्डरीकवनबन्धोः ।
मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलयाखण्डलाशायाः ॥ १॥
यस्योदयास्तसमये सुरमुकुट-निघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्नां निधिः सूर्यः ॥ २ ॥
उदयाचलतिलकाय प्रणतोऽस्मि विवस्वते ग्रहेशाय ।
अम्बरचूडामणये दिग्वनिताकर्णपूराय ॥ ३ ॥
जयति जनानन्दकरः करनिकर-निरस्त-तिमिरसंघातः ।
लोकालोकालोकः कमलारुणमण्डलः सूर्यः ॥ ४ ॥
प्रतिबोधितकमलवनः कृतघटनश्चक्रवाक-मिथुनानाम् ।
दर्शितसमस्तभुवनः परहितनिरतो रविः सदा जयति ॥ ५ ॥
अपनयतु सकल-कलिकृत-मलपटलं सुप्रतप्तकनकाभः ।
अरविन्दवृन्द-विघटन-पटुतर-किरणत्करः सविता ॥ ६ ॥
उदयाद्रिचारुचामर-हरितहय-खुरपरिहत-रेणुरागः ।
हरितहय-हरितपरिकर गगनाङ्गणदीपक नमस्ते ॥ ७ ॥
उदितवति त्वयि विलसति मुकुलीयति समस्तमितबिम्ब ।
न ह्यन्यस्मिन् दिनकर सकलं कमलायते भुवनम् ॥ ८ ॥

जयति रविरुदयसमये बालातपः कनकसन्निभो यस्य ।
कुसुमाञ्जलिरिव जलधौ तरन्ति रथसप्तयः सप्त ॥ ९ ॥
आर्याः साम्बपुरे सप्त आकाशात् पतिता भुवि ।
यस्य कण्ठे गृहे वाऽपि न स लक्ष्म्या वियुज्यते ॥१०॥
आर्याः सप्त सदा यस्तु सप्तम्यां सप्तधा जपेत् ।
तस्य गेहं च देहं च पद्मा सत्यं न मुञ्चति ॥११॥
निधिरेष दरिद्राणां रोगिणां परमौषधम् ।
सिद्धिः सकलकार्याणां गाथेयं संस्मृता रवेः ॥१२॥

इति श्रीयाज्ञवल्क्यकृतं सूर्यार्यास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १२६ ॥

०

१२७. आदित्यस्तोत्रम्

अस्य श्रीआदित्यस्तोत्रस्य आङ्गिरस ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता, सूर्यप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

नवग्रहाणां सर्वेषां सूर्यादीनां पृथक् पृथक् ।
पीडा च दुःसहा राजन् जायते सततं नृणाम् ॥ १ ॥
पीडानाशाय राजेन्द्र नमामि शृणु भास्वतः ।
सूर्यादीनां च सर्वेषां पीडा नश्यति शृण्वतः ॥ २ ॥
आदित्यः सविता सूर्यः पूषाऽर्कः शीघ्रगो रविः ।
भगस्त्वष्टाऽर्यमा हंसो हेलिस्तेजोनिधिर्हरिः ॥ ३ ॥
दिननाथो दिनकरः सप्तसप्तिः प्रभाकरः ।
विभावसुर्वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥ ४ ॥
हरिदश्वः कालवक्त्रः कर्मसाक्षी जगत्पतिः ।
पद्मिनीबोधको भानुर्भास्करः करुणाकरः ॥ ५ ॥
द्वादशात्मा विश्वकर्मा लोहिताङ्गस्तमोनुदः
जगन्नाथोऽरविन्दाक्षः कालात्मा कश्यपात्मजः ॥ ६ ॥
भूताश्रयो ग्रहपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
जपा-कुसुम-सङ्काशो भास्वानदितिनन्दनः ॥ ७ ॥

ध्वान्तेभसिंहः सर्वात्मा सर्वनेत्रो विकर्तनः ।
मार्तण्डो मिहिरः सूरस्तपनो लोकतापनः ॥ ८ ॥
जगत्कर्ता जगत्साक्षी शनैश्चरपिता जयः ।
सहस्ररश्मिस्तरणिर्भगवान् भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥
विवस्वानादिदेवश्च देवदेवो दिवाकरः ।
धन्वन्तरिर्व्याधिहर्ता दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥१०॥
चराऽचरात्मा मैत्रेयोऽमितो विष्णुर्विकर्तनः ।
लोकशोकापहर्ता च कमलाकर आत्मभूः ॥११॥
नारायणो महादेवो रुद्रः पुरुष ईश्वरः ।
जीवात्मा परमात्मा च सूक्ष्मात्मा सर्वतोमुखः ॥१२॥
इन्द्रोऽनलो यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणोऽनिलः ।
श्रीद ईशान इन्दुश्च भौमः सौम्यो गुरुः कविः ॥१३॥
शौरिर्विधुन्तुदः केतुः कालः कालात्मको विभुः ।
सर्वदेवमयो देवः कृष्णः कामप्रदायकः ॥ १४ ॥
य एतैर्नामभिर्मर्त्यो भक्त्या स्तौति दिवाकरम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ॥१५॥
पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् जायते स न संशयः ।
रविवारे पठेद्यस्तु नामान्येतानि भास्वतः ॥१६॥
पीडाशान्तिर्भवेत्तस्य ग्रहाणां च विशेषतः ।
सद्यः सुखमवाप्नोति चायुर्दीर्घं च नीरुजम् ॥१७॥
इति श्रीभविष्यपुराणे आदित्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२७॥

०

दैवीस्तोत्राणि

१२८. भारत-विजय-स्तोत्रम्

मङ्गल्यो ल्लासलीलः करट-मदनदी-स्नान-पानप्रमत्त-
श्च च्छिद्रिश्च च्छरीकैः कलित-कलकलः स्वस्ति-पुण्याहघोषैः ।

दोर्दण्डैरस्त्र-शस्त्र-प्रहरणपटुभिर्ज्वाल-माला-जटालैः
प्रत्यूह-व्यूहहन्ता जनयतु विजयं कुञ्जरग्रामणीर्नः ॥ १ ॥
दिव्यैस्तेजोभिरिद्धा प्रबल-भुजवनोत्ताल-कीलायुधाढ्या
सिंहस्कन्धाधिरूढा विपुलबल-वलद्वाहिनी-व्यूहभीमा ।
गर्जातर्जाः सृजन्ती महिषमरिचमूं मथ्नती रिष्टिवृष्ट्या
तुष्टा स्वेष्टा विशिष्टा घटयतु घटनाश्चण्डिका नः प्रचण्डा ॥२॥
सङ्कल्पानल्पलीला-क्षण-गण-जनितानन्त-सृष्टिप्रवाहः
सर्वज्ञः सर्वशिक्तः श्रुतनुतमहिमा मेदुर-श्रीमनोज्ञः ।
लोकग्रास-प्रसक्त-प्रलय-घनघटाटोप-घोरान् मयादीन्
धुन्वन् ध्वस्तान् धिनोतु ध्वनित-जयरवैर्धूर्धरो धूर्जटीनः ॥ ३ ॥
लोकालोकाग्रजाग्रन्मद मुदिर-महाचण्डशौण्डोग्रदण्डः
प्रोद्दण्डो दानवेन्द्रो विजित-सुमतीवैभवः स्वर्णशय्यः ।
यत्तीव्राघातरूक्षा-क्षत-खरनखरैर्दीर्घनिद्रां सहेलं
प्राप्तः सोऽव्याजभव्यः कलयतु कुशलं भारतस्याद्यसिंहः ॥४॥
सर्वां सृष्टिं समस्तान् जनगणनिकरान् व्यश्नुवानं समन्ताद्
ध्वान्तं व्यात्तास्यघोरं मलिनितजगती-जालमुद्यन् विभिन्दन् ।
तीव्रैर्जाग्रत्प्रवेगैर्ज्वलन-कण-गणोद्गूण-गर्वैरखर्वै-
रुस्रैरश्रान्त-नेमिर्दिशतु विजयिनीं सुश्रियं श्रीरविर्नः ॥ ५ ॥
श्रीमन् भूताधिनाथ-प्रमथगणपते सर्वशक्ते पुरारे
सर्वोत्तुङ्गे हिमाद्रे सुरुचिरशिखरे वैजयन्ती जयन्ती ।
प्रोच्चैरुड्डीयमाना चिरतरमहिमा भारतीया लसन्तीं
प्राग्वद् दोधूयमाना विहरतु गगने विश्ववन्द्याभिनन्द्या ॥ ६ ॥
वेदाः शास्त्राणि यागाः शुचिरुचिरुचिरा आश्रमा वर्णभागा-
स्तीर्थान्यस्वप्नसौधा जनगणविततता संस्कृतिः सभ्यता च ।
सम्पूर्णो धर्मराशिः प्रशमितविपुलापत्तिराष्ट्रं समग्रं
वृद्धिः सिद्धिः समृद्धिः सकलसुरपतेऽक्षुण्णतां नीयतां नः ॥७॥
सर्वाधिष्ठानभूमन् भरतभुवनिमां व्योमयानैरसंख्यैः
शस्त्रास्त्रैर्नैकभेदैरतुलित-विभवैर्घोर-सामर्थ्य-सार्थैः ।

दुर्धर्षा दुर्विभेद्या कलित-नव नवोत्साहपर्णाभ्युदीर्णा
संख्यातीताप्रतूर्णं जयतु खलबलं वाहिनी भारतीया ॥ ८ ॥
देशेऽस्मिन् द्राक् समस्ते विपुल-जयरवो दुन्दुभिध्वानधीरः
यूनामुत्साह-सिंह-ध्वनिभिरविरतं श्रूयतां श्रीनिवास ।
किञ्चार्यावर्त-भूमिर्निज-विजयलसत् प्राज्य-सौराज्यसिम्नां
पूर्णाखण्डद्युतीनां प्रगुणितगरिमा स्यात् खनिर्वर्धितानाम् ॥९॥
ध्वस्तानः शत्रवः स्युस्त्वरितमिह सुखाः सन्तु गावः समग्राः
सर्वे नार्यो नराश्च प्रमथित-विपुलापत्तयः सन्त्वदीनाः ।
भूमिः सस्याभ्युदीर्णा खल-बलजयिनी वाहिनी नोऽस्त्वजय्या
भयात् भूयो भवानीप्रभुरयमखिलानुग्रहे रक्षको नः ॥१०॥
सर्वैर्नव्यैरसंख्यैर्गुणगण-भरितैः सज्जितानो युवानः
सोत्साहाः सङ्घबद्धाः प्रबलरिपुचमूनाथलीलावदानाः ।
संख्यातीताः पतन्तः करिनिकरदलत् सिंहविक्रान्तवीर्याः
श्रीनाथानुग्रहात्ते विजयमलमरं मोदमाना लभन्ताम् ॥११॥

इति काशीपीठाधीश्वर-जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामिश्रीमहेश्वरानन्द-सरस्वतीविरचितं[1] भारतविजयस्तोत्रं समाप्तम् ॥१२८॥

०

१२९. श्रीकनकधारास्तोत्रम्

वन्दे वन्दारु-मन्दार-मिन्दिरानन्द-कन्दलम् ।
अमन्दानन्द-सन्दोह-बन्धुरं सिन्धुराननम् ॥
अङ्गं हरेः पुलक-भूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अङ्गीकृता-ऽखिल-विभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गलदेवतायाः ॥ १ ॥

---

१. २०१९ संवदि चीनाक्रमणावसरे वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालयोपकुलपति-श्रीसुरतिनारायणमणित्रिपाठिमहोदयैः प्रार्थनया स्तोत्रमिदं विरचितम् । न्यूनाधिकभावेन तत्राऽन्यत्र च संस्कृतसंस्थानेषु प्रार्थनायां सुगृहीतमभवत् ।

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः
प्रेमत्रपा प्रणिहितानि गताऽऽगतानि ।
माला-दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागर-सम्भवायाः ॥ २ ॥
विश्वामरेन्द्र - पदविभ्रम - दानदक्ष -
मानन्द - हेतुरधिकं मुर - विद्विषोऽपि ।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्धं-
मिन्दीवरोदर - सहोदर - मिन्दिरायाः ॥ ३ ॥
आमीलिताक्ष-मधिगम्य मुदा मुकुन्द-
मानन्द - कन्दमनिमेष - मनङ्ग - तन्त्रम् ।
आकेकर-स्थित - कनीनिक - पक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजङ्ग - शयाङ्गनायाः ॥ ४ ॥
बाह्वन्तरे मुरजितः श्रितकौस्तुभे या
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥ ५ ॥
कालाम्बुदालि-ललितोरसि कैटभारे-
र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव ।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गव - नन्दनायाः ॥ ६ ॥
प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत् प्रभावान्-
माङ्गल्यभाजि मधु - माथिनि मन्मथेन ।
मय्यापतेत् तदिह मन्थर-मीक्षणार्धं
मन्दाऽलसं च मकरालय - कन्यकायाः ॥ ७ ॥
दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा-
मस्मिन्न किञ्चन - विहङ्गशिशौ विषण्णे ।
दुष्कर्म - घर्ममपनीय चिराय दूरं
नारायण-प्रणयिनी - नयनाम्बुवाहः ॥ ८ ॥

इष्टा-विशिष्ट-मतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं भजन्ते ।
दृष्टिः प्रहृष्ट-कमलोदर-दीप्तिरिष्टां
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्कर-विष्टराया: ॥ ९ ॥

गीर्देवतेति गरुडध्वज - सुन्दरीति
शाकम्भरीति शशिशेखर - वल्लभेति ।
सृष्टि-स्थिति-प्रलय-केलिषु संस्थिता या
तस्यै नमस्त्रिभुवनैक - गुरोस्तरुण्यै ॥१०॥

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्म - फलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीय - गुणार्णवायै ।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्र - निकेतनायै
पुष्टयै नमोऽस्तु पुरुषोत्तम - वल्लभायै ॥११॥

नमोऽस्तु नालीक - निभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधि - जन्मभूम्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृत - सोदरायै
नमोऽस्तु नारायण - वल्लभायै ॥१२॥

नमोऽस्तु हेमाम्बुज - पीठिकायै
नमोऽस्तु भूमण्डलनायिकायै ।
नमोऽस्तु देवादि - दयापरायै
नमोऽस्तु शार्ङ्गायुध - वल्लभायै ॥१३॥

नमोऽस्तु देव्यै भृगुनन्दनायै
नमोऽस्तु विष्णोरुरसि स्थितायै ।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै
नमोऽस्तु दामोदरवल्लभायै ॥१४॥

नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणायै
नमोऽस्तु भूत्यै भुवनप्रसूत्यै ।
नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै
नमोऽस्तु नन्दात्मज - वल्लभायै ॥१५॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रिय - नन्दनानि
साम्राज्य - दान - निरतानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद् - वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥१६॥
यत्कटाक्ष - समुपासनाविधिः
सेवकस्य सकलार्थसम्पदः ।
सन्तनोति वचनाङ्गमानसै -
स्त्वां मुरारि - हृदयेश्वरीं भजे ॥१७॥
सरसिजनयने ! सरोजहस्ते !
धवलतमांशुक - गन्ध - माल्यशोभे
भगवति हरिवल्लभे ! मनोज्ञे !
त्रिभुवन-भूतिकरि ! प्रसीद मह्यम् ॥१८॥
दिग्घस्तिभिः कनक-कुम्भ-मुखावसृष्ट-
स्वर्वाहिनी-विमल-चारुजल-प्लुताङ्गीम् ।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथ - गृहिणीममृताब्धि - पुत्रीम् ॥१९॥
कमले ! कमलाक्षवल्लभे !
त्वं करुणापूर - तरङ्गितैरपाङ्गैः ।
अवलोकय मामकिञ्चनानां
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥२०॥
स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवन - मातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुतर-भाग्य-भाजिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥२१॥
सुवर्णधारा-स्तोत्रं यच्छङ्कराचार्य - निर्मितम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स कुबेरसमो भवेत् ॥२२॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कनकधारास्तोत्रं समाप्तम्॥१२९॥

●

१३०. देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
च चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि ! द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथाऽपि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥
परित्यक्ता देवा विविध-विधि-सेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥ ५ ॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥ ६ ॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।

कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणि-ग्रहण - परिपाटी - फलमिदम् ॥ ७ ॥
न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छाऽपि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥ ८ ॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधा-तृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥
जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथा योग्यं तथा कुरु ॥१२॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३०॥

•

१३१. भवानीभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्

षडाधारपङ्केरुहान्तर्विराजत्सुषुम्नान्तरालेऽतितेजोल्लसन्तीम् ।
सुधामण्डलं द्रावयन्तीं पिबन्तीं सुधामूर्तिमीडेऽहमानन्दरूपाम् ॥१॥
ज्वलत्कोटिबालार्क-भासारुणाङ्गीं सुलावण्यशृंगारशोभाभिरामाम् ।
महापद्मकिञ्जल्कमध्ये विराजत्त्रिकोणोल्लसन्तीं भजे श्रीभवानीम् ।२।
कणत्किंकिणी-नूपुरोद्भासिरत्न-प्रभालीढलाक्षार्द्र-पादारविन्दाम् ।
अजेशाच्युताद्यैः सुरैः सेव्यमानां महादेवि मन्मूर्ध्नि ते भावयामि ॥३॥

सुशोणाम्बराबद्धनीवीविराजन् महारत्नकाञ्चीकलापं नितम्बम् ।
स्फुरद्दक्षिणावर्तनाभिं च तिस्रो बली रम्यते रोमराजीं भजेऽहम् ॥४॥
लसद्वृत्तमुत्तुङ्गमाणिक्यकुम्भोपमश्री-स्तनद्वन्द्वमम्बाम्बुजाक्षीम् ।
भजे पूर्णदुग्धाभिरामं तवेदं महाहारदीप्तं सदा प्रस्तुतास्यम् ॥५॥
शिरीषप्रसूनोल्लसद्बाहुदण्डैर्ज्वलद्बाण-कोदण्ड - पाशांकुशैश्च ।
चलत्कङ्कणोदार-केयूरभूषा-ज्वलद्भिः स्फुरन्तीं भजे श्रीभवानीम् ॥६॥
शरत्पूर्णचन्द्र - प्रभापूर्णबिम्बाधरस्मेरवक्त्रारविन्दश्रियं ते ।
सुरत्नावली-हारताटङ्कशोभां भजे सुप्रसन्नामहं श्रीभवानीम् ॥७॥
सुनासापुटं पद्मपत्रायताक्षं यजन्तः श्रियं दानदक्षं कटाक्षम् ।
ललाटोल्लसद्गन्ध-कस्तूरिभूषो-ज्ज्वलद्भिः स्फुरन्तीं भजे श्रीभवानीम् ।८॥
चलत्कुण्डलां ते भ्रमद्भृङ्गवृन्दां घनस्निग्धधम्मिल्लभूषोज्ज्वलन्तीम् ।
स्फुरन्मौलि-माणिक्य-मध्येन्दुरेखा-विलासोल्लसद्दिव्यमूर्धानमीडे ॥९॥
स्फुरत्वम्ब बिम्बस्य मे हृत्सरोजे सदा वाङ्मयं सर्वतेजोमयं च ।
इति श्रीभवानीस्वरूपं तदेवं प्रपञ्चात्परं चाऽतिसूक्ष्मं प्रसन्नम् ॥१०॥
गणेशाणिमाद्याखिलैः शक्तिवृन्दैः स्फुरच्छ्रीमहाचक्रराजोल्लसन्तीम् ।
परां राजराजेश्वरीं त्वां भवानीं शिवाङ्कोपरिस्थां शिवां भावयेऽहम् ।११॥
त्वमर्कस्त्वमग्निस्त्वमिन्दुस्त्वमापस्त्वमाकाशभूवायवस्त्वं चिदात्मा ।
त्वदन्यो न कश्चित् प्रकाशोऽस्ति सर्वं सदानन्दसंवित्स्वरूपं तवेदम् ।१२॥
गुरुस्त्वं शिवस्त्वं च शक्तिस्त्वमेव त्वमेवाऽसि माता पिताऽसि त्वमेव ।
त्वमेवाऽसि विद्या त्वमेवाऽसि बुद्धिर्गतिर्मे मतिर्देवि सर्वं त्वमेव ॥१३॥
श्रुतीनामगम्यं सुवेदागमाद्यैर्महिम्नो न जानाति पारं तवेदम् ।
स्तुतिं कर्तुमिच्छामि ते त्वं भवानि क्षमस्वेदमम्ब प्रमुग्धः किलाहम् ।१४॥
शरण्ये वरेण्ये सुकारुण्यपूर्णे हिरण्योदराद्यैरगम्येऽतिपुण्ये ।
भवारण्यभीतं च मां पाहि भद्रे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि ! ॥१५॥
इमामन्वहं श्रीभवानीभुजङ्गस्तुतिं यः पठेच्छ्रोतुमिच्छेत तस्मै ।
स्वकीयं पदं शाश्वतं चैव सारं श्रियं चाऽष्टसिद्धिश्च देवी ददाति ॥१६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता भवानीभुजङ्गस्तुतिः सम्पूर्णा ॥१३१॥

१३२. भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ १ ॥
भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसार-पाश-प्रबद्धः सदाऽहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ २ ॥
न जानामि दानं न च ध्यान-योगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्र-मन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवामि ॥ ३ ॥
न जानामि पुण्यं न जानानि तीर्थं
न जानामि मुक्ति लयं वा कदाचित्।
न जानामि भक्ति व्रतं वाऽपि मात-
र्गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ४ ॥
कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाऽहं
गतिस्त्व गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ५ ॥
प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चाऽन्यत् सदाऽहं शरण्ये
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ६ ॥
विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चाऽनले पर्वते शत्रुमध्ये।

अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ७ ॥
अनाथो दरिद्रो जरा-रोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः ।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाऽहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १३२ ॥

१३३. भवानीस्तुतिः

आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं भवतु वो विजयाय मञ्जु-मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः
ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गतरङ्गभंग्या सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारणतां व्रजन्ति
लावण्यवारिनिधिवीचिपरिप्लुतायै तस्यै नमोऽस्तु सततं हरवल्लभायै । २
पौलस्त्यपीनभुजसम्पदुदस्यमानकैलाससम्भ्रमविलोलदृशः प्रियायाः ।
श्रेयांसिवोदिशतुनिह्नुतकोपचिह्नमालिङ्गनोत्पुलकभासितमिन्दुमौलेः ३
दिश्यान्महासुरशिरःसरसीप्सितानि प्रेङ्खन्नखावलिमयूखमृणालनालम् ।
चण्डयाश्चलच्चटुलनूपुरचञ्चरीकझाङ्कारहारि चरणाम्बुरुहद्वयं वः ।४।

इति भवानीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥१३३॥

१३४. भगवतीस्तोत्रम्

जय भगवति देवि नमो वरदे जय पापनिवाशिनि बहुफलदे ।
जय शुम्भ-निशुम्भ-कपालधरे प्रणमामि तु देवि नरार्तिहरे ॥ १ ॥
जय चन्द्रदिवाकर-नेत्रधरे जय पावकभूषितवक्त्रवरे ।
जय भैरवदेहनिलीनपरे जय अन्धकदैत्यविशोषकरे ॥ २ ॥
जय महिषविमर्दिनिशूलकरे जय लोकसमस्तकपापहरे ।
जय देवि पितामहविष्णुनुते जय भास्करशक्रशिराऽवनते ॥ ३ ॥
जय षण्मुख-सायुध-ईशनुते जय सागरगामिनि शम्भुनुते ।
जय दुःख-दरिद्र-विनाशकरे जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे ॥ ४ ॥

जय देवि समस्तशरीरधरे जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिकरे ॥५॥
एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेन्नियतः शुचिः।
गृहे वा शुद्धभावेन प्रीता भगवती सदा ॥ ६ ॥
इति व्यासकृतं भगवतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १३४ ॥

•

१३५. भगवत्यष्टकम्

नमोऽस्तु ते सरस्वति त्रिशूल-चक्र-धारिणि
सिताम्बरावृते शुभे मृगेन्द्रपीठसंस्थिते।
सुवर्णबन्धुराधरे सुझल्लरीशिरोरुहे
सुवर्णपद्मभूषिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ १ ॥
पितामहादिभिर्नुते स्वकान्तिलुप्तचन्द्रभे
सरत्नमालयावृते भवाब्धिकष्टहारिणि।
तमालहस्तमण्डिते तमाल-भाल-शोभिते
गिरामगोचरे इले नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ २ ॥
स्वभक्तवत्सलेऽनघे सदापवर्गभोगदे
दरिद्र-दुःखहारिणि त्रिलोकशङ्करीश्वरि।
भवानि भीम अम्बिके प्रचण्डतेज-उज्ज्वले
भुजाकलापमण्डिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ ३ ॥
प्रपन्नभीतिनाशिके प्रसूनमाल्यकन्धरे
धियस्तमोनिवारिके विशुद्धबुद्धिकारिके।
सुरार्चिताऽङ्घ्रिपङ्कजे प्रचण्डविक्रमेऽक्षरे
विशालपद्मलोचने नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ ४ ॥
हतस्त्वया स दैत्यधूम्रलोचनो यदा रणे
तदा प्रसूनवृष्टयस्त्रिविष्टपे सुरैः कृताः।
निरीक्ष्य तत्र ते प्रभामलज्जत प्रभाकर-
स्त्वयि दयाकरे ध्रुवे नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ ५ ॥

ननाद केसरी यदा चचाल मेदिनी तदा
जगाम दैत्यनायकः स्वसेनया द्रुतं भिया ।
सकोप - कम्पदच्छदे सचण्ड - मुण्डघातिके
मृगेन्द्रनादनादिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ ६ ॥
कुचन्दनार्चितालके सितोष्णवारणाधरे
सवर्करानने वरे निशुम्भ-शुम्भ-मर्दिके ।
प्रसीद चण्डिके अजे समस्त-दोषघातिके
शुभामतिप्रदेऽचले नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ ७ ॥
त्वमेव विश्वधारिणी त्वमेव विश्वकारिणी
त्वमेव सर्वहारिणी न गम्यसेऽजितात्मभिः ।
दिवौकसां हिते रता करोषि दैत्यनाशनं
शताक्षि रक्तदन्तिके नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥ ८ ॥
पठन्ति ये समाहिता इमं स्तवं सदा नराः
अनन्यभक्तिसंयुताः अहर्मुखेऽनुवासरम् ।
भवन्ति ते तु पण्डिताः सुपुत्रधान्य-संयुताः
कलत्रभूतिसंयुता व्रजन्ति चाऽमृतं सुखम् ॥ ९ ॥
इति श्रीमदमरदासविरचितं भगवत्यष्टकं समाप्तम् ॥१३५॥

१३६. त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्

कदम्बवनचारिणीं मुनिकदम्ब-कादम्बिनीं
नितम्बजितभूधरां सुरनितम्बिनीसेविताम् ।
नवाम्बुरुह-लोचनामभिनवाम्बुद - श्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ १ ॥
कदम्बवनवासिनीं कनक-वल्लकी-धारिणीं
महार्हमणिहारिणीं मुखसमुल्लसद्वारुणीम् ।
दयाविभवकारिणीं विशदलोचनीं चारिणीं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ २ ॥

कदम्बवनशालया कुचभरोल्लसन्मालया
कुचोपमितशैलया गुरुकृपालसद्वेलया ।
मदारुणकपोलया मधुरगीतवाचालया
कयाऽपि घननीलया कवचिता वयं लीलया ॥ ३ ॥

कदम्बवनमध्यगां कनकमण्डलोपस्थितां
षडम्बुरुहवासिनीं सततसिद्धसौदामिनीम् ।
विडम्बितजपारुचिं विकचचन्द्रचूडामणिं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ ४ ॥

कुचाञ्चितविपञ्चिकां कुटिलकुन्तलालङ्कृतां
कुशेशयनिवासिनीं कुटिलचित्तविद्वेषिणीम् ।
मदारुणविलोचनां मनसिजारिसम्मोहिनीं
मतङ्गमुनिकन्यकां मधुरभाषिणीमाश्रये ॥ ५ ॥

स्मेरप्रथमपुष्पिणीं रुधिर-बिन्दु-नीलाम्बरां
गृहीतमधुपात्रिकां मधुविघूर्णनेत्राञ्चलाम् ।
घनस्तन-भरोन्नतां गलितचूलिकां श्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ ६ ॥

सकुङ्कुम-विलेपनामलक-चुम्बिकस्तूरिकां
समन्दहसितेक्षणां स-शरचाप-पाशाङ्कुशाम् ।
अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषाम्बरां
जपाकुसुम-भासुरां जपविधौ स्मराम्यम्बिकाम् ॥ ७ ॥

पुरन्दर-पुरन्ध्रिका-चिकुरबन्ध-सैरन्ध्रिकां
पितामहपतिव्रतां पटुपाटीर-चर्चारताम् ।
मुकुन्दरमणीं मणिलसदलंक्रियाकारिणीं
भजामि भुवनाम्बिकां सुरवधूटिकाचेटिकाम् ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३६॥

१३७. आनन्दलहरी

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि ।

न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदाऽन्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः ॥ १ ॥
घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः ।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे ॥ २ ॥
मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता ।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम् ॥ ३ ॥
विराजन्मन्दार-द्रुमकुसुमहार-स्तनतटी
नदद् वीणानाद-श्रवणविलसत्कुण्डलगुणा ।
नताङ्गी मातङ्गी-रुचिरगतिभङ्गी भगवती
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते ॥ ४ ॥
नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गीरुचिरनयनाङ्गीकृतशिवा ।
तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी ॥ ५ ॥
हिमाद्रेः सम्भूता सुललितकरैः पल्लवयुता
सुपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चालकभरैः ।
कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका ॥ ६ ॥
सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति ।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम् ॥ ७ ॥
विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले ।

त्वमादिः कामानां जननि कृतकन्दर्पविजये
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी ॥ ८ ॥
प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना ।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः ॥ ९ ॥
कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते ।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः ॥१०॥
महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायाऽन्यन् नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे ।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥११॥
अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचिभवति गङ्गौघमिलितम् ।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥१२॥
त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभेन नियम-
स्त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरण ।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तंदिवमुचितमीशानि कुरु तत् ॥१३॥
स्फुरन्नानारत्न-स्फटिकमयभित्ति - प्रतिफलं
त्वदाकारं चञ्चच्छशधरशिलासौधशिखरम् ।
मुकुन्द - ब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं विजयते
तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणी ॥१४॥
निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धनिकरः ।

महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना ।१५।।
वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिबहो भूषणविधिः ।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा ।।१६।।
अशेषब्रह्माण्ड - प्रलयविधि - नैसर्गिकमतिः
श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः ।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
भवत्याः सङ्गत्याः फलमिति च कल्याणिकलये ।।१७।।
त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया
भियैवासीद् गङ्गा जलमयतनु शैलतनये ।
तदेतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया
प्रतिष्ठामातन्वन् निजशिरसिवासेन गिरिशः ।।१८।।
विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण -
प्रसूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यङ्गसलिलम् ।
समादाय स्रष्टा चलितपदपांसून्निजकरैः
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम् ।।१९।।
वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे ।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजलैः
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडाऽपसरति ।।२०।।
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता आनन्दलहरी सम्पूर्णा ।।१३७।।

१३८. सङ्कटाष्टकस्तोत्रम्

ध्यानम्

ध्यायेऽहं परमेश्वरीं दशभुजां नेत्रत्रयोद्भूषितां
सद्यः सङ्कटतारिणीं गुणमयीमारक्तवर्णां शुभाम् ।

अक्ष-स्रग्-जलपूर्णकुम्भ-कमलं शङ्खं गदां बिभ्रतीं
त्रैशूलं डमरुञ्च खड्ग-विधृतां चक्राभयाढ्यां पराम् ॥

नारद उवाच

जैगीषव्य मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञ सुखदायक ! ।
आख्यातानि सुपुण्यानि श्रुतानि त्वत्प्रसादतः ॥ १ ॥
न तृप्तिमधिगच्छामि तव वागमृतेन च ।
वदस्वैकं महाभाग सङ्कटाख्यानमुत्तमम् ॥ २ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा जैगीषव्योऽब्रवीत्ततः ।
सङ्कष्टनाशनं स्तोत्रं शृणु देवर्षिसत्तम ॥ ३ ॥
द्वापरे तु पुरावृत्तो भ्रष्टराज्यो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सहितो राज्य-निर्वेदं परमङ्गतः ॥ ४ ॥
तदानीं तु ततः काशीं पुरीं यातो महामुनिः ।
मार्कण्डेय इति ख्यातः सह-शिष्यैर्महायशाः ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा स समुत्थाय प्रणिपत्य सुपूजितः ।
किमर्थं म्लानवदनमेतत् त्वं मां निवेदय ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सङ्कष्टं मे महत्प्राप्तमेतादृग्वदनं ततः ।
एतन्निवारणोपायं किञ्चिद् ब्रूहि मुने मम ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आनन्दकानने देवी सङ्कटानाम विश्रुता ।
वीरेश्वरोत्तरे भागे पूर्वं चन्द्रेश्वरस्य च ॥ ८ ॥
शृणु नामाऽष्टकं तस्याः सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
सङ्कटा प्रथमं नाम द्वितीयं विजया तथा ॥ ९ ॥
तृतीयं कामदा प्रोक्तं चतुर्थं दुःखहारिणी ।
शर्वाणी पञ्चमं नाम षष्ठं कात्यायनी तथा ॥१०॥
सप्तमं भीमनयना सर्वरोगहराऽष्टमम् ।
नामाऽष्टकमिदं पुण्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥११॥
यः पठेत् पाठयेद् वाऽपि नरो मुच्येत सङ्कटात् ।

इत्युक्त्वा तु द्विजश्रेष्ठमृषिर्वाराणसीं ययौ ॥१२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदो हर्षनिर्भरः ।
ततः सम्पूज्य तां देवीं वीरेश्वरसमन्विताम् ॥१३॥
भुजैस्तु दशभिर्युक्तां लोचनत्रयभूषिताम् ।
मालाकमण्डलुयुतां पद्म - शङ्ख - गदायुताम् ॥१४॥
त्रिशूलडमरुधरां खड्गचर्मविभूषिताम् ।
वरदाभयहस्तां तां प्रणम्य विधिनन्दनः ॥१५॥
वरत्रयं गृहीत्वा तु ततो विष्णपुरं ययौ ।
एतत् स्तोत्रस्य पठनं पुत्र-पौत्र-विवर्धनम् ॥१६॥
सङ्कष्टनाशनं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन महाबन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥१७॥

इति श्रीपद्मपुराणे सङ्कटाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३८॥

●

१३९. सङ्कटास्तुतिः

सदावृन्दारकोद्वृन्दा-ऽऽनन्द-सन्दोह-दायकम् ।
अमन्दमङ्गलागारं वन्दे शङ्करनन्दनम् ॥ १ ॥

किं कार्यं कठिनं कुतः परिभवः कुत्रापवादाद् भयं
किं मित्रं न हि किन्नु राजसदनं गम्यं न विद्या च का ।
किं वाऽन्यज्जगतीतले प्रवद यत्तेषामसम्भावितं
येषां हृत्कमले सदा वसति सा तोषप्रदा सङ्कटा ॥ २ ॥

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दिनुते
गिरिवरविन्ध्य-शिरोऽधि-निवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते ।
भगवति हे शितिकण्ठ-कुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १ ॥

सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि दुर्मुख-मर्षिणि हर्षरते
त्रिभुवनपोषिणि शङ्करतोषिणि कल्मषमोषिणि घोषरते ।
दनुजनिरोषिणि दुर्मदशोषिणि दुर्मुनिरोषिणि सिन्धुसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ २ ॥

अयि जगदम्ब कदम्बवन-प्रियवासिनि तोषिणि हासरते
शिखरि-शिरोमणि-तुङ्गहिमालय-शृंगनिजालय-मध्यगते।
मधुमधुरे मधु-कैटभ-गञ्जिनि महिषविदारिणि रासरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ३॥
अयि निजहुंकृति-मात्रनिराकृत-धूम्रविलोचन-धूम्रशते
समरविशोषित-रोषित-शोणित-बीजसमुद्भव-बीजलते।
शिव-शिव-शुम्भ-निशुम्भ महाहव-तर्पित-भूत-पिशाचरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ४॥
अयि शतखण्ड-विखण्डित-रुण्ड-वितुण्डित-शुण्ड-गजाधिपते
निजभुजदण्ड-निपातितचण्ड-विपाटितमुण्ड भटाधिपते।
रिपुगजगण्ड-विदारण-चण्डपराक्रम-शौण्डमृगाधिपते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ५॥
धनुरनुषङ्ग-रणक्षणसङ्ग-परिस्फुरदङ्ग-नटत्कटके
कनक-पिशङ्ग-पृषत्कनिषङ्ग-रसद्भटशृङ्ग-हताबटुके।
हतचतुरङ्गबल-क्षितिरङ्ग-घटद्-बहुरङ्ग-रटद्-बटुके
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ६॥
अयि रणदुर्मद-शत्रुबधाद्धुर-दुर्धर-निर्भर-शक्तिभृते
चतुर-विचार-धुरीण-महाशयदूतकृत-प्रमथाधिपते।
दुरित-दुरीह-दुराशय-दुर्मति-दानवदूत-दुरन्तगते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ७॥
अयि शरणागत-वैरिवधूजन-वीरवराभय-दायिकरे
त्रिभुवनमस्तक-शूलविरोधि-शिरोधिकृतामल-शूलकरे।
दुमिदुमितामर-दुन्दुभिनाद-मुहुर्मुखरीकृत-दिङ्निकरे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ८॥
सुरललना-ततथेयित-थेयित-थाभिनयोत्तर-नृत्यरते
कृतकुकुथा-कुकुथोदि-डदाडिक-तालकुतूहल-गानरते।
धुधुकुट-धूधुटधिन्धि-मितध्वनि-धीरमृदङ्ग-निनादरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ९॥

जय जय जाप्यजये जयशब्द-परस्तुति-तत्पर-विश्वनुते
झणझण-झिंझिम-झिंकृत-नूपुर-शिञ्जित-मोहित-भूतपते ।
नटितनटार्ध-नटीनटनायक-नाटन-नाटित-नाट्यरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।१०।।
अयि सुमनः-सुमनः-सुमनः-सुमनः-सुमनोरमकान्तियुते
श्रितरजनी - रजनी - रजनीरजनीकर - वक्त्रभृते ।
सुनयन-विभ्रमर-भ्रमर-भ्रमर-भ्रमर-भ्रमराभिदृते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।११।।
महित-महाहव-मल्लमतल्लिक-वल्लित-रल्लित-भल्लिरते
विरचितवल्लि-कपालिक-पल्लिक-झिल्लिक-भिल्लिकवर्गवृते ।
श्रुतकृतफुल्ल-समुल्लसितारुण-तल्लज-पल्लव-सल्ललिते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।१२।।
अयि सुदतीजन-लालस-मानस-मोहन-मन्थरराजसुते
अविरल-गण्डगलन्-मदमेदुर-मत्त-मतङ्गजराजगते ।
त्रिभुवन-भूषण-भूत-कलानिधिरूप-पयोनिधिराजसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।१३।।
कमलदलामल-कोमलकान्ति-कलाकलितामल-भालतले
सकल-विलास-कलानिलय-क्रमकेलिचलत्-कलहंसकुले ।
अलिकुलसंकुल-कुन्तलमण्डल-मौलिमिलद्-बकुलालिकुले
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।१४।।
करमुरलीरव-वर्जित-कूजित-लज्जित-कोकिल-मञ्जुमते
मिलित-मिलिन्द-मनोहरगुञ्जित-रञ्जित-शैलनिकुञ्जगते ।
निजगण - भूतमहाशबरीगण - रङ्गणसम्भृत - केलिरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।१५।।
कटितटपीत-दुकूलविचित्र मयूखतिरस्कृत चण्डरुचे
जितकनकाचल-मौलिमदोर्जित-गर्जितकुञ्जर-कुम्भकुचे ।
प्रणतसुराऽसुर-मौलिमणि-स्फुरदंशुलसन्नखचन्द्ररुचे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।१६।।

विजित-सहस्रकरैक-सहस्रकरैक-सहस्रकरैकनुते

कृतसुरतारक - सङ्गरतारक - सङ्गरतारक - सूनुनुते ।

सुरथसमाधि-समानसमाधि-समानसमाधि-सुजाप्यरते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१७॥

पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे

अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत् ।

तव पदमेव परं पदमस्त्विति शीलयतो मम किं न शिवे

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१८॥

कनकलसत्-कलशीकजलैरनुषिञ्चति तेऽङ्गणरङ्गभुवम्

भजति स किं न शचीकुचकुम्भ-नटीपरिरम्भ-सुखानुभवम् ।

तव चरणं शरणं करवाणि सुवाणि पथं मम देहि शिवम्

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१९॥

तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं कलयन्ननुकूलयते

किमु पुरुहूत-पुरीन्दुमुखी-सुमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते ।

मम तु मतं शिवमानधने भवती कृपया किमु न क्रियते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥२०॥

अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे

अयि जगतो जननीति यथाऽसि मयाऽसि तथाऽनुमतासि रमे ।

यदुचितमत्र भवत्पुरगं कुरु शाम्भवि देवि दयां कुरु मे

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥२१॥

स्तुतिमिमां स्तिमितः सुसमाधिना नियमतो यमतोऽनुदिनं पठेत् ।

परमया रमया स निषेव्यते परिजनोऽरिजनोऽपि च तं भजेत् ॥२२॥

इति सङ्कटास्तुतिः समाप्ता ॥१३९॥

१४०. विन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

निशुम्भ-शुम्भ-मर्दिनीं प्रचण्ड-मुण्ड-खण्डनीम् ।

वने रणे प्रकाशिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ १ ॥

त्रिशूल-मुण्डधारिणीं धराविघात-हारिणीम् ।

गृहे गृहे निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ २ ॥

दरिद्र-दुःख-हारिणीं सतां विभूतिकारिणीम् ।
वियोग-शोक-हारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ३ ॥
लसत्सुलोचलोचनं लतासदेवरप्रदम् ।
कपाल शूलधारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ४ ॥
करो मुदा गदाधरो शिवां शिवप्रदायिनीम् ।
वरावराननां शुभां भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ५ ॥
ऋषीन्द्रजामिनिप्रदं त्रिधास्यरूपधारिणीम् ।
जले स्थले निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ६ ॥
विशिष्ट-सृष्टि-कारिणीं विशाल-रूपधारिणीम् ।
महोदरे विशालिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ७ ॥
पुरन्दरादिसेवितां मुरादिवंशखण्डनीम् ।
विशुद्ध-बुद्धि-कारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥ ८ ॥

इति विन्ध्येश्वरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४०॥

१४१. विन्ध्यवासिनीस्तोत्रम्

श्रीनन्दगोपगृहिणीप्रभवा तनोतु
भद्रं सदा मम सुरार्थपरा प्रसन्ना ।
विन्ध्याद्रि-गह्वरगताष्टभुजा प्रसिद्धा
सिद्धैः सुसेवित-पदाब्जयुगा त्रिरूपा ॥ १ ॥
वेदैरगम्यमहिमा निजबोधतुष्टा
नित्या गुणत्रयपराऽखिलभेदशून्या ।
एका प्रपञ्चकरणे त्रिगुणोरुशक्ति-
रुच्चावचाकृतिरथोऽचलजङ्गमात्मा ॥ २ ॥
पीयूष-सिन्धु-सुरपादपवाटिरत्न-
द्वीपे सुनीपवनशालिनि दुष्प्रवेशे ।
चिन्तामणि-प्रखचिते भवने निषण्णा
विन्ध्येश्वरी श्रियमनल्पतरां करोतु ॥ ३ ॥
श्रुत्वा स्तुतिं विधिकृतां करुणार्द्रचित्ता
नारायणेन सबलौ मधुकैटभास्यौ ।

या संजहार जगतां प्रलये तथा सा
विन्ध्येश्वरी वितनुतां सुमनोरथान् मे ॥ ४ ॥
ब्रह्मेश-विष्णु-पुरुहूत-हुताशनादि
तेजोभवा महिषपीडित-निर्जराणाम् ।
स्थानाप्तयेऽतिकृपया महिषं ममर्द
विन्ध्येश्वरी हरतु रोगविपत्तिमाशु ॥ ५ ॥
या धूम्रचण्ड-बलिमुण्ड-निशुम्भ-शुम्भ-
रक्तान् पिपेष सुरकार्यरताप्यनेका ।
दुःखाम्बुधौ निपतितस्य विमूढबुद्धे-
र्विन्ध्येश्वरी मम ददातु सुबुद्धिमम्बा ॥ ६ ॥
या दुर्गमं दनुभवं परिमर्द्य नाम्ना
दुर्गा बभूव च ततान शुभं सुराणाम् ।
स्वाचारकर्म-विमुखस्य जुगुप्सितस्य
विन्ध्येश्वरी दहतु वैरिगणान् समस्तान् ॥ ७ ॥
सम्प्राप्य जन्म वपुषः परिपोषणाय
संख्यातिग-वृजिन-पुञ्जविधायिनो मे ।
चण्डासुरप्रमथिनी ललिता च नाम्ना
विन्ध्येश्वरी हरतु जाड्यमहान्धकारम् ॥ ८ ॥
या तारयत्यखिल-दुष्कृतिलोकपुञ्जात्
'तारे'ति नाम गदिता भुवनेषु देवी ।
अज्ञानसिन्धुतरणे दृढनौस्वरूपा
विन्ध्येश्वरी मम गुणाग्र्यसुतं ददातु ॥ ९ ॥
रक्ताम्बरा तरुणभानुरुचिः प्रसन्ना
रक्ताम्बुजासन-कृतांघ्रियुगा धृतास्त्रा ।
रक्तैः स्वलंकृत-तनुर्मणिभूषणैश्च
विन्ध्येश्वरी मम गिरं विशदां करोतु ॥१०॥
रात्रीशकान्त-मणिकान्त-तनुर्विशाल-
मुक्तालता-ललितवृत्त-कुचाकृशाङ्गी ।

श्वेताम्बरा सितसरोजकृताधिवासा
विन्ध्येश्वरी मम वचांसि पुनातु नित्यम् ॥११॥
आकर्ण्य दीनवचनं जननीव देवी
पुत्रस्य मे सपदि सर्वगदान् जहार।
लेखाङ्गनामुकुट-गुम्फित-चित्रपुष्प-
रेणूत्कराचित-पदाग्रनखांशुचन्द्रा ॥१२॥
देवान् विहाय सकलानथ कर्म सर्वं
लब्ध्वा जनुर्न कृतवांस्तव देवि! पूजाम्।
मातर्नमामि सततं मनसा च वाचा
देहेन पादकमलं शरणागतोऽहम् ॥१३॥
देहीष्टमाशु विपुलं निजसेवकेभ्यो
दारिद्र्यमम्ब हर चाऽरिवधं कुरुष्व।
शान्तिं च सर्वजगतां विशदां च बुद्धिं
त्वं पालयातिकृपया चरणाब्जगं माम् ॥१४॥
देव्याः स्तवं पठति यः शिवदं मनुष्यः
पूतः शृणोति च मनो विविधैरभीष्टैः।
पूर्णं हि तस्य भवति प्रसभं गदाश्च
यान्ति क्षयं झटिति मायुकफानिलोत्थाः ॥१५॥
त्र्यर्ष्यंष्टभूमिमित-सर्वजिदाख्यवर्षे
ईषे च मासि सितपक्षयुते कवीशः।
स्तोत्रं लिलेख मथुरेश्वरमालवीयः
सन्नाहमोचनभवो विधुरुद्रशम्याम् ॥१६॥
इति मालवीय-शुक्लमथुरानाथविरचितं विन्ध्यवासिनीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४१॥

१४२. मीनाक्षीस्तोत्रम्

श्रीविद्ये शिववामभागनिलये श्रीराजराजार्चिते
श्रीनाथादिगुरुस्वरूपविभवे चिन्तामणीपीठिके।
श्रीवाणीगिरिजानुताङ्घ्रिकमले श्रीशाम्भवि श्रीशिवे
मध्याह्ने मलयध्वजाधिपसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥१॥

चक्रस्थेऽचपले चराऽचरजगन्नाथे जगत्पूजिते
आर्तालीवरदे नताभयकरे वक्षोजभारान्विते ।
विद्ये वेदकलापमौलिविदिते विद्युल्लताविग्रहे
मातः पूर्णसुधारसार्द्रहृदये मां पाहि मीनाम्बिके ॥ २ ॥
कोटीराङ्गदरत्नकुण्डलधरे कोदण्डबाणाञ्चिते
कोकाकार-कुचद्वयोपरिलसत् प्रालम्बहाराञ्चिते ।
शिञ्जन्नूपुर-पादसारसमणी-श्रीपादुकालंकृते
मद्दारिद्र्यभुजङ्गारुडखगे मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ३ ॥
ब्रह्मेशाच्युतगीयमानचरिते प्रेतासनान्तःस्थिते
पाशोदङ्कुशचापबाणकलिते बालेन्दुचूडाञ्चिते ।
बाले बालकुरङ्गलोलनयने बालार्ककोटयुज्ज्वले
मुद्राराधितदैवते मुनिसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ४ ॥
गन्धर्वामर-यक्ष-पन्नगनुते गङ्गाधरालिङ्गिते
गायत्रीगरुडासने कमलजे सुश्यामले सुस्थिते ।
खातीते खलदारुपावकशिखे खद्योतकोटयुज्ज्वले
मन्वाराधितदैवते मुनिसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ५ ॥
नादे नारदतुम्बुराद्यविनुते नादान्तनादात्मिके
नित्ये नीललतात्मिके निरुपमे नीवारशूकोपमे ।
कान्ते कामकले कदम्बनिलये कामेश्वराङ्कस्थिते
मद्विद्ये मदभीष्टकल्पलतिके मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ६ ॥
वीणानादनिमीलितार्धनयने विस्रस्तचूलीभरे
ताम्बूलारुणपल्लवाधरयुते ताटङ्कहारान्विते ।
श्यामे चन्द्रकलावतंसकलिते कस्तूरिकफालिके
पूर्णे पूर्णकलाभिरामवदने मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ७ ॥
शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्त्वंमयी चिन्मयी ।
तत्त्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी
सर्वैश्वर्यमयी सदाशिवमयी मां पाहि मीनाम्बिके ! ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं मीनाक्षीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४२॥

१४३. मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूर-हारोज्ज्वलां
बिम्बोष्ठीं स्मितदन्तपङ्क्तिरुचिरां पीताम्बरालङ्कृताम् ।
विष्णु-ब्रह्म-सुरेन्द्र-सेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥ १ ॥
मुक्ताहार-लसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
शिञ्जन्नूपुर-किङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम् ।
सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेवितां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥ २ ॥
श्रीविद्यां शिवधामभागनिलयां ह्रींकारमन्त्रोज्ज्वलां
श्रीचक्राङ्कितबिन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायकीम् ।
श्रीमत्षण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीं
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥ ३ ॥
श्रीमत्सुन्दरनायकीं भयहरीं ज्ञानप्रदां निर्मलां
श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम् ।
वीणा-वेणु-मृदङ्ग-वाद्यरसिकां नानाविधाडम्बिकां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥ ४ ॥
नानायोगिमुनीन्द्रहृन्निवसतीं नानार्थ-सिद्धिप्रदां
नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम् ।
नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥ ५ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं मीनाक्षीपञ्चरत्नं सम्पूर्णम् ॥१४३॥

१४४. ललितापञ्चरत्नम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं
बिम्बाधरं पृथुल-मौक्तिक-शोभिनासम् ।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वल-भालदेशम् ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं
रक्ताङ्गुलीय-लसदङ्गुलि-पल्लवाढ्याम् ।
माणिक्य-हेम-वलयाङ्गद-शोभमानां
पुण्ड्रेक्षु - चाप - कुसुमेषु - सृणीर्दधानाम् ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम् ।
पद्मासनादि-सुरनायक-पूजनीयं
पद्माङ्कुश-ध्वज-सुदर्शन-लाञ्छनाढ्यम् ॥ ३ ॥
प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम् ।
विश्वस्य सृष्टि-विलय-स्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसाविदूराम् ॥ ४ ॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम-
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति ॥ ५ ॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते ।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यप्रणीतं ललितापञ्चरत्नं सम्पूर्णम् ॥ १४४ ॥

१४५. शीतलाष्टकम्

ॐ अस्य श्रीशीतलाष्टकस्तोत्रस्य महादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, शीतलादेवता, लक्ष्मीबीजम्, भवानी शक्तिः, सर्वविस्फोटक-निवृत्तये जपे विनियोगः ।

ईश्वर उवाच

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकाम् ॥ १ ॥

वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहाम् ।
यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ २ ॥
शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद् दाहपीडितः ।
विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ ३ ॥
यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा पूजयते नरः ।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥ ४ ॥
शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धयुतस्य च ।
प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥ ५ ॥
शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्त्यजान् ।
विस्फोटक-विदीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥ ६ ॥
गलगण्डग्रहा रोगा ये चाऽन्ये दारुणा नृणाम् ।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम् ॥ ७ ॥
न मन्त्रो नौषधं तस्य पापरोगस्य विद्यते ।
त्वामेकां शीतले धात्रीं नाऽन्यां पश्यामि देवताम् ॥ ८ ॥
मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम् ।
यस्त्वां सञ्चिन्तयेद् देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ ९ ॥
अष्टकं शीतलादेव्या यो नरः प्रपठेत् सदा ।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥१०॥
श्रोतव्यं पठितव्यं च श्रद्धा-भक्ति-समन्वितैः ।
उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥११॥
शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत् पिता ।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः ॥१२॥
रासभो गर्दभश्चैव खरो वैशाखनन्दनः ।
शीतलावाहनश्चैव दूर्वाकन्दनिकृन्तनः ॥१३॥
एतानि खरनामानि शीतलाग्रे तु यः पठेत् ।
तस्य गेहे शिशूनां च शीतलारुङ् न जायते ॥१४॥
शीतलाष्टकमेवेदं न देयं यस्य-कस्यचित् ।
दातव्यं च सदा तस्मै श्रद्धा-भक्ति-युताय वै ॥१५॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे शीतलाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४५॥

१४६. वाराहीनिग्रहाष्टकम्

देवि क्रोडमुखि त्वदङ्घ्रिकमल-द्वन्द्वानुरक्तात्मने
मह्यं द्रुह्यति यो महेशि मनसा कायेन वाचा नरः ।
तस्याशु त्वदयोग्रनिष्ठुरहला-घात-प्रभूत-व्यथा-
पर्यस्यन्मनसो भवन्तु वपुषः प्राणाः प्रयाणोन्मुखाः ॥ १ ॥
देवि त्वत्पदपद्म-भक्तिविभव-प्रक्षीण-दुष्कर्मणि
प्रादुर्भूतनृशंसभावमलिनां वृत्तिं विधत्ते मयि ।
यो देही भुवने तदीयहृदयान् निर्गत्वरैर्लोहितैः
सद्यः पूरयसे कराऽब्ज-चषकं वाञ्छाफलैर्मामपि ॥ २ ॥
चण्डोत्तुण्ड-विदीर्णदंष्ट्रहृदय-प्रोद्भिन्नरक्तच्छटा-
हालापान-मदाट्टहास-निनदाटोप-प्रतापोत्कटम् ।
मातर्मत्परिपन्थिनामपहृतैः प्राणैस्त्वदङ्घ्रिद्वयं
ध्यानोद्दामरवैर्भवोदयवशात् सन्तर्पयामि क्षणात् ॥ ३ ॥
श्यामां तामरसाननाङ्घ्रिनयनां सोमार्धचूडां जगत्-
त्राण-व्यग्र-हलायुधाग्रमुसलां सन्त्रासमुद्रावतीम् ।
ये त्वां रक्तकपालिनी हरवरारोहे वराहाननां
भावैः सन्दधते कथं क्षणमपि प्राणन्ति तेषां द्विषः ॥ ४ ॥
विश्वाधीश्वरवल्लभे विजयसे या त्वं नियन्त्र्यात्मिका
भूतान्ता पुरुषायुषावधिकरी पाकप्रदा कर्मणाम् ।
त्वां याचे भवतीं किमप्यवितथं यो मद्विरोधी जन-
स्तस्यायुर्मम वाञ्छितावधि भवेन्मातस्तवैवाज्ञया ॥ ५ ॥
मातः सम्यगुपासितुं जडमतिस्त्वां नैव शक्नोम्यहं
यद्यप्यन्वित-दैशिकाङ्घ्रिकमला-ऽनुक्रोशपात्रस्य मे ।
जन्तुः कश्चन चिन्तयत्यकुशलं यस्तस्य तद्वैशसं
भूयाद् देवि विरोधिनो मम च ते श्रेयः पदासङ्गिनः ॥ ६ ॥
वाराहि व्यथमान-मानसगलन् सौख्यं तदाशाबलिं
सीदन्तं यमपाकृताध्यवसितं प्राप्ताखिलोत्पादितम् ।
क्रन्दत्-बन्धुजनैः कलङ्कितकुलं कण्ठव्रणोद्यत्कृमिं

पश्यामि प्रतिपक्षमाशु पतितं भ्रान्तं लुठन्तं मुहुः ॥ ७ ॥
वाराहि त्वमशेषजन्तुषु पुनः प्राणात्मिका स्पन्दसे
शक्तिव्याप्त-चराऽचरा खलु यतस्त्वामेतदभ्यर्थये ।
त्वत्पादाम्बुजसङ्गिनो मम सकृत्पापं चिकर्षन्ति ये
तेषां मा कुरु शङ्करप्रियतमे देहान्तरावस्थितिम् ॥ ८ ॥

इति श्रीवाराहीनिग्रहाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १४६ ॥

१४७. वाराह्यनुग्रहाष्टकम्

ईश्वर उवाच

मातर्जगद्रचन-नाटक-सूत्रधार-
स्त्वद्रूपमाकलयितुं परमार्थतोऽयम् ।
ईशोऽप्यनीश्वरपदं समुपैति तादृक्
कोऽन्यः स्तवं किमिव तावकमादधातु ॥ १ ॥
नामानि किन्तु गृणतस्तव लोकतुण्डे
नाडम्बरं स्पृशति दण्डधरस्य दण्डः ।
यल्लेशलम्बित - भवाम्बुनिधिर्यतो यत्
त्वन्नामसंसृतिरियं ननु नः स्तुतिस्ते ॥ २ ॥
त्वच्चिन्तनादर-समुल्लसदप्रमेया-
ऽऽनन्दोदयात् समुदितः स्फुटरामहर्षः ।
मातर्नमामि सुदिनानि सदेत्यमुं त्वा-
मभ्यर्थयेऽर्थमिति पूरयताद् दयालो ॥ ३ ॥
इन्द्रेन्दुमौलि - विजि - केशवमौलिरत्न-
रोचिश्चयोज्ज्वलित - पादसरोजयुग्मे ।
चेतो मतौ मम सदा प्रतिबिम्बिता त्वं
भूया भवानि विदधातु सदोरुहारे ॥ ४ ॥
लीलोद्धृतक्षितितलस्य वराहमूर्ते-
र्वाराहमूर्तिरखिलार्थकरी त्वमेव ।
प्रालेयरश्मिसुकलोल्लसितावतंसा
त्वं देवि वामतनुभागहरा रहस्य ॥ ५ ॥

त्वामम्ब तप्तकनकोज्ज्वलकान्तिमन्त-
ये चिन्तयन्ति युवतीतनुमागलान्ताम् ।
चक्रायुधत्रिनयनाम्बरपोतृवक्त्रां
तेषां पदाम्बुजयुगं प्रणमन्ति देवाः ॥ ६ ॥
त्वत्सेवनस्खलितपापचयस्य मात-
र्मोक्षोऽपि यत्र न सतां गणनामुपैति ।
देवासुरोरगनृपालनमस्य पाद-
स्तत्र श्रियः पटुगिरः कियदेवमस्तु ॥ ७ ॥
किं दुष्करं त्वयि मनोविषयं गतायां
किं दुर्लभं त्वयि विधानवदर्चितायाम् ।
किं दुष्करं त्वयि सकृत्स्मृतिमागतायां
किं दुर्जयं त्वयि कृतस्तुतिवादपुंसाम् ॥ ८ ॥

इति श्रीवाराह्यनुग्रहाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १४७ ॥

१४८. कात्यायन्यष्टकम्

अवर्षिसंज्ञं पुरमस्ति लोके कात्यायनी तत्र विराजते या ।
प्रसाददा या प्रतिमा प्रदीया सा क्षत्रपुर्यां जयतीह गेया ॥ १ ॥
त्वमस्य भिन्नैव विभासि तस्यास्तेजस्विनी दीपजदीपकल्पा ।
कात्यायनी स्वाश्रितदुःखहर्त्री पवित्रगात्री मतिमानदात्री ॥ २ ॥
ब्रह्मोरु - बेतालक - सिंहदाढो - सुभैरवैरग्निगणाभिधेन ।
संसेव्यमाना गणपत्यभिख्या युजा च देवि स्वगणैरिहासि ॥ ३ ॥
गोत्रेषु जातैर्जमदग्नि-भारद्वाजा-ऽत्रि-सत्काश्यप-कौशिकानाम् ।
कौण्डिन्यवत्सान्वयजैश्च विप्रैर्निजैर्निषेव्ये वरदे नमस्ते ॥ ४ ॥
भजामि गोक्षीरकृताभिषेके रक्ताम्बरे रक्तसुचन्दनाक्ते ।
त्वां बिल्वपत्रीशुभदामशोभे भक्ष्यप्रिये हृत्प्रियदीपमाले ॥ ५ ॥
खड्गं च शङ्खं महिषासुरीयं पुच्छं त्रिशूलं महिषासुरास्ये ।
प्रवेशितं देवि करैर्दधाने रक्षानिशं मां महिषासुरघ्ने ॥ ६ ॥
स्वाग्रस्थबाणेश्वरनामलिङ्गं सुरत्नकं रुक्ममयं किरीटम् ।
शीर्षे दधाने जय हे शरण्ये विद्युत्प्रभे मां जयिनं कुरुष्व ॥ ७ ॥

नेत्रावती - दक्षिणपार्श्वसंस्थे विद्याधरैर्नागगणैश्च सेव्ये ।
दयाघने प्रापय शं सदाऽस्मान् मातर्यशोदे शुभदे शुभाक्षि ॥ ८ ॥
इदं कात्यायनीदेव्याः प्रसादाष्टकमिष्टदम् ।
कुमठाचार्यजं भक्त्या पठेद्यः स सुखी भवेत् ॥ ९ ॥

इति श्रीकात्यायन्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १४८ ॥

१४९. कालिकाकवचम्

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश देवानां भोगद प्रभो ।
प्रब्रूहि मे महादेव गोप्यं चेद् यदि हे प्रभो ॥ २ ॥
शत्रूणां येन नाशः स्यादात्मनो रक्षणं भवेत् ।
परमैश्वर्यमतुल लभेद्येन हि तद्वद ॥ ३ ॥

भैरव उवाच

वक्ष्यामि ते महादेवि सर्वधर्मविदां वरे ।
अद्भुतं कवचं देव्याः सर्वकामप्रसाधकम् ॥ ४ ॥
विशेषतः शत्रुनाशं सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
सर्वारिष्टप्रशमनं सर्वाभद्रविनाशनम् ॥ ५ ॥
सुखदं भोगदं चैव वशीकरणमुत्तमम् ।
शत्रुसङ्घाः क्षयं यान्ति भवन्ति व्याधिपीडिताः ॥ ६ ॥
दुःखिनो ज्वरिणश्चैव स्वाभीष्टद्रोहिणस्तथा ।
भोग-मोक्षप्रदं चैव कालिकाकवचं पठेत् ॥ ७ ॥

ॐ अस्य श्रीकालिकाकवचस्य भैरव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकालिका देवता, शत्रुसंहारार्थं जपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ध्यायेत् कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीम् ।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ ८ ॥
नीलोत्पलदलश्यामां शत्रुसङ्घविदारिणीम् ।

नरमुण्डं तथा खड्गं कमलं च वरं तथा ॥ ९ ॥
निर्भयां रक्तवदनां दंष्ट्रालीघोररूपिणीम् ।
साट्टहासाननां देवीं सर्वदां च दिगम्बरीम् ॥१०॥
शवासनस्थितां कालीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।
इति ध्यात्वा महाकालीं ततस्तु कवचं पठेत् ॥११॥
ॐ कालिका घोररूपा सर्वकामप्रदा शुभा ।
सर्वदेवस्तुता देवी शत्रुनाशं करोतु मे ॥१२॥
ॐ ह्रीं ह्रींरूपिणीं चैव ह्रां ह्रीं ह्रांरूपिणीं तथा ।
ह्रां ह्रीं क्षों क्षौंस्वरूपा सा सदा शत्रून् विदारयेत् ॥१३॥
श्रीं ह्रीं ऐंरूपिणी देवी भवबन्धविमोचनी ।
हुंरूपिणी महाकाली रक्षाऽस्मान् देवि सर्वदा ॥१४॥
यया शुम्भो हतो दैत्यो निशुम्भश्च महासुरः ।
वैरिनाशाय वन्दे तां कालिकां शङ्करप्रियाम् ॥१५॥
ब्राह्मी शैवी वैष्णवी च वाराही नारसिंहिका ।
कौमार्यैन्द्री च चामुण्डा खादन्तु मम विद्विषः ॥१६॥
सुरेश्वरी घोररूपा चण्डमुण्डविनाशिनी ।
मुण्डमालावृताङ्गी च सर्वतः पातु मां सदा ॥१७॥
ह्रीं ह्रीं ह्रीं कालिके घोरे दंष्ट्रेव रुधिरप्रिये ।
रुधिरापूर्णवक्त्रे च रुधिरेणावृतस्तनि ॥१८॥

मम शत्रून् खादय खादय हिंस हिंस मारय मारय भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि उच्चाटय उच्चाटय द्रावय द्रावय शोषय शोषय स्वाहा । ह्रां ह्रीं कालिकायै मदीयशत्रून् समर्पयामि स्वाहा । ॐ जय जय किरि किरि किटि किटि कट कट मर्द मर्द मोहय मोहय हर हर मम रिपून् ध्वंस ध्वंस भक्षय भक्षय त्रोटय त्रोटय यातुधानान् चामुण्डे सर्वजनान् राज्ञो राजपुरुषान् स्त्रियो मम वश्यान् कुरु कुरु तनु तनु धान्यं धनं मेऽश्वान् गजान् रत्नानि दिव्यकामिनीः पुत्रान् राजश्रियं देहि यच्छ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्वाहा ।

इत्येतत् कवचं दिव्यं कथितं शम्भुना पुरा ।

ये पठन्ति सदा तेषां ध्रुवं नश्यन्ति शत्रवः ॥१९॥
वैरिणः प्रलयं यान्ति व्याधिता वा भवन्ति हि।
बलहीनाः पुत्रहीनाः शत्रवस्तस्य सर्वदा ॥२०॥
सहस्रपठनात् सिद्धिः कवचस्य भवेत्तदा।
तत्कार्याणि च सिध्यन्ति यथा शङ्करभाषितम् ॥२१॥
श्मशानाङ्गारमादाय चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः।
पादोदकेन पिष्ट्वा तल्लिखेल्लोहशलाकया ॥२२॥
भूमौ शत्रून् हीनरूपानुत्तराशिरसस्तथा।
हस्तं दत्त्वा तु हृदये कवचं तु स्वयं पठेत् ॥२३॥
शत्रोः प्राणप्रतिष्ठां तु कुर्यान्मन्त्रेण मन्त्रवित्।
हन्यादस्त्रं प्रहारेण शत्रो गच्छ यमक्षयम् ॥२४॥
ज्वलदङ्गारतापेन भवन्ति ज्वरिता भृशम्।
प्रोञ्छनैर्वामपादेन दरिद्रो भवति ध्रुवम् ॥२५॥
वैरिनाशकरं प्रोक्तं कवचं वश्यकारकम्।
परमैश्वर्यदं चैव पुत्र-पौत्रादि-वृद्धिदम् ॥२६॥
प्रभातसमये चैव पूजाकाले च यत्नतः।
सायङ्काले तथा पाठात् सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥२७॥
शत्रुरुच्चाटनं याति देशाद् वा विच्युतो भवेत्।
पश्चात् किङ्करतामेति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२८॥
शत्रुनाशकरे देवि सर्वसम्पत्करे शुभे।
सर्वदेवस्तुते देवि कालिके! त्वां नमाम्यहम् ॥२९॥

इति रुद्रयामले कालिकाकवचं सम्पूर्णम् ॥१४९॥

१५०. चण्डिकाष्टकम्

सहस्रचन्द्रनिन्दकातिकान्त-चन्द्रिकाचयै-
दिशोऽभिपूरयद् विदूरयद् दुराग्रहं कलेः।
कृतामलाऽवलाकलेवरं वरं भजामहे
महेशमानसाश्रयन्वहो महो महोदयम् ॥ १ ॥

विशाल-शैलकन्दरान्तराल-वासशालिनीं
त्रिलोकपालिनीं कपालिनीं मनोरमामिमाम् ।
उमामुपासितां सुरैरुपास्महे महेश्वरीं
परां गणेश्वरप्रसूं नगेश्वरस्य नन्दिनीम् ॥ २ ॥
अये महेशि ! ते महेन्द्रमुख्यनिर्जराः समे
समानयन्ति मूर्द्धरागतः परागमङ्घ्रिजम् ।
महाविरागिशङ्कराऽनुरागिणीं नुरागिणी
स्मरामि चेतसाऽतसीमुमामवाससं नुताम् ॥ ३ ॥
भजेऽमराङ्गनाकरोच्छलत्सुचामरोच्चलन्
निचोल-लोलकुन्तलां स्वलोक-शोक-नाशिनीम् ।
अदभ्र-सम्भृतातिसम्भ्रम-प्रभूत-विभ्रम-
प्रवृत्त-ताण्डव-प्रकाण्ड-पण्डितीकृतेश्वराम् ॥ ४ ॥
अपीह पामरं विधाय चामरं तथाऽमरं
नुपामरं परेशिदृग्-विभाविता-वितत्रिके ।
प्रवर्तते प्रतोष-रोष-खेलन तव स्वदोष-
मोषहेतवे समृद्धिमेलनं पदन्नुमः ॥ ५ ॥
भभूव्-भभव्-भभव्-भभाभितो-विभासि-भास्वर-
प्रभाभर-प्रभासिताग-गह्वराधिभासिनीम् ।
मिलत्तर-ज्वलत्तरोद्वलत्तर-क्षपाकर-
प्रमूत-भाभर-प्रभासि-भालपट्टिकां भजे ॥ ६ ॥
कपोतकम्बु-काम्यकण्ठ-कण्ठचकङ्कणाङ्गदा-
दिकान्त-काञ्चिकाञ्चितां कपालिकामिनीमहम् ।
वराङ्घ्रिनूपुरध्वनि-प्रवृत्तिसम्भवद्-विशेष-
काव्यकल्पकौशलां कपालकुण्डलां भजे ॥ ७ ॥
भवाभय-प्रभावितद्भवोत्तरप्रभावि भव्य-
भूमिभूतिभावनं प्रभूतिभावुकं भवे ।
भवानि नेति ते भवानि ! पादपङ्कजं भजे
भवन्ति तत्र शत्रवो न यत्र तद्विभावनम् ॥ ८ ॥

दुर्गाग्रतोऽतिगरिमप्रभवां भवान्या
भव्यामिमां स्तुतिमुमापतिना प्रणीताम् ।
यः श्रावयेत् सपुरुहूतपुराधिपत्य-
भाग्यं लभेत रिपवश्च तृणानि तस्य ॥ ९ ॥
रामाष्टाङ्क-शशाङ्केऽब्देऽष्टम्यां शुक्लाश्विने गुरौ ।
शाक्तश्रीजगदानन्दशर्मण्युपहृता स्तुतिः ॥१०॥

इति कविपत्युपनामक-श्रीउमापतिद्विवेदि-विरचितं चण्डिकाष्टकं सम्पूर्णम् ।

१५१. दुर्गाष्टकम्

दुर्गे परेशि शुभदेशि परात्परेशि !
वन्द्ये महेशदयिते करुणार्णवेशि ! ।
स्तुत्ये स्वधे सकलतापहरे सुरेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥ १ ॥
दिव्ये नुते श्रुतिशतैर्विमले भवेशि !
कन्दर्पदारशतसुन्दरि माधवेशि ! ।
मेधे गिरीशतनये नियते शिवेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥ २ ॥
रासेश्वरि प्रणततापहरे कुलेशि !
धर्मप्रिये भयहरे वरदाग्रगेशि ! ।
वाग्देवते विधिनुते कमलासनेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥ ३ ॥
पूज्ये महावृषभवाहिनि मंगलेशि !
पद्मे दिगम्बरि महेश्वरि काननेशि ।
रम्ये धरे सकलदेवनुते गयेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥ ४ ॥
श्रद्धे सुराऽसुरनुते सकले जलेशि !
गङ्गे गिरीशदयिते गणनायकेशि ।
दक्षे स्मशाननिलये सुरनायकेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ॥ ५ ॥

तारे कृपार्द्रनयने मधुकैटभेशि !
विद्येश्वरेश्वरि यमे निखलाक्षरेशि ।
ऊर्जे चतुःस्तनि सनातनि मुक्तकेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितऽखिलेशि ॥ ६ ॥
मोक्षेऽस्थिरे त्रिपुरसुन्दरि पाटलेशि !
माहेश्वरि त्रिनयने प्रबले मखेशि ।
तृष्णे तरङ्गिणि बले गतिदे ध्रुवेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ॥ ७ ॥
विश्वम्भरे सकलदे विदिते जयेशि !
विन्ध्यस्थिते शशिमुखि क्षणदे दयेशि ! ।
मातः सरोजनयने रसिके स्मरेशि !
कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ॥ ८ ॥
दुर्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
सर्वार्थदं हरिहरादिनुतां वरेण्याम् ।
दुर्गां सुपूज्य महितां विविधोपचारैः
प्राप्नोति वाञ्छितफलं न चिरान्मनुष्यः ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमदुत्तराम्नायज्योतिष्पीठाधीश्वरजगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामि-श्रीशान्तानन्दसरस्वतीशिष्य-स्वामिश्रीमदनन्तानन्द-सरस्वतीविरचितं श्रीदुर्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १५१ ॥

१५२. दुर्गापदुद्धारस्तवराजः

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे ।
नमस्ते जगद्वन्द्य-पादारविन्दे नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥ १ ॥
नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे नमस्ते महायोगिनि ज्ञानरूपे ।
नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥ २ ॥
अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥ ३ ॥

अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्येऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥ ४ ॥
अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम् ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतुर्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥ ५ ॥
नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला समुत्खण्डिताखण्डिताशेषशत्रो ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥ ६ ॥
त्मेवाघभावाधृतासत्यवादीनं जाताजितक्रोधनात् क्रोधनिष्ठा ।
इडा पिंगला त्वं सुषुम्णा च नाडी नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥७॥
नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे ।
विभूतिः शची कालरात्रिः सतिस्त्वं नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥८॥

शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां
मुनि-मनुज-पशूनां दस्युभिस्त्रासितानाम् ।
नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां
त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद ॥ ९ ॥

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तमापदुद्धारहेतुकम् ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा पठनाद् घोरसङ्कटात् ॥१०॥
मुच्यते नाऽत्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले ।
स सर्वं वा श्लोकमेकं वा यः पठेद् भक्तिमान् सदा ॥११॥
स सर्वं दुष्कृतं त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ।
पठनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ॥१२॥
स्तवराजमिमं देवि संक्षेपात् कथितं मया ॥१३॥

इति सिद्धेश्वरीतन्त्रे उमामहेश्वरसंवादे श्रीदुर्गापदुद्धारस्तवराजः सम्पूर्णः ॥१५२॥

१५३. दुर्गासिद्धमन्त्रस्तोत्रम्

विश्वेश्वरि ! त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीह विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ १ ॥

देवि ! प्रपन्नार्ति हरे ! प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि ! पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि ! चराऽचरस्य ॥ २ ॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्य-दुःखभय-हारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ ३ ॥
विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ४ ॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया ।
सम्मोहितं देवि ! समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुविमुक्तिहेतुः ॥ ५ ॥
सर्वमङ्गल-माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ! ।
शरण्ये त्र्यम्बके ! गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
शरणागत - दीनार्त - परित्राण - परायणे !
सर्वस्यार्तिहरे देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥

इति श्रीमतीपुष्पामिश्रासङ्कलित-दुर्गासिद्धमन्त्रस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १५३ ॥

१५४. अन्नपूर्णास्तोत्रम् [१]

ध्यानम्

सिन्दूरा-ऽरुण-विग्रहां त्रिनयनां माणिक्य-मौलिस्फुरत्
तारानायक-शेखरां स्मितमुखीमापीन - वक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्ण-रत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थ-रक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिल-घोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचल-वंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ १ ॥
नानारत्न-विचित्र-भूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहार-विलम्बमान विलसद्वक्षोज-कुम्भान्तरी ।
काश्मीरा-ऽगुरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ २ ॥
योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्ऽथनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानल-भासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्य-समस्त-वाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ३ ॥
कैलासाचल-कन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी ।
मोक्षद्वार-कपाट-पाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ४ ॥
दृश्याऽदृश्य-प्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी ।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ५ ॥
उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती माताऽन्नपूर्णेश्वरी
वेणीनील-समान-कुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी ।
सर्वानन्दकरी दृशां शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ६ ॥
आदिक्षान्त-समस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरा त्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी ।
कामाकांक्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ७ ॥

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामस्वादु-पयोधर-प्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।
भक्ताऽभीष्टकरी दशाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ८ ॥
चन्द्रार्कानल-कोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्नि-समान-कुन्तलहरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी ।
माला-पुस्तक-पाश-साङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ९ ॥
क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी ।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी ।
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥१०॥
अन्नपूर्णे सदा पूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे ! ।
ज्ञान-वैराग्य-शिद्धयर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥११॥
माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१२॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितम् अन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५४॥

१५५. अन्नपूर्णास्तोत्रम् [२]

मन्दार-कल्प-हरिचन्दन-पारिजात-
मध्ये शशाङ्क - मणिमण्डत-वेदिसंस्थे ।
अर्धेन्दु-मौलि-सुललाट-षडर्धनेत्रे
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ १ ॥
केयूर-हार-कटाङ्गद - कर्णपूरे
काञ्ची - कलाप - मणिकान्त - लसद्दुकूले ।
दुग्धा-ऽन्नपात्र-वर-काञ्चन-दर्विहस्ते
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ २ ॥
आली-कदम्ब-परिसेवित-पार्श्वभागे
शक्रादिभि-र्मुकुलिताञ्जलिभिः पुरस्तात् ।

देवि ! त्वदीय-चरणौ शरणं प्रपद्ये
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ३ ॥
गन्धर्व-देव-ऋषि-नारद-कौशिका-ऽत्रि
व्यासा - ऽम्बरीष - कलशोद्भव - कश्यपाद्याः ।
भक्त्या स्तुवन्ति निगमाऽऽगम-सूक्तमन्त्रै-
र्भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ४ ॥
लीला-वचांसि तव देवि ! ऋगादिवेदाः
सृष्ट्यादि-कर्मरचना भवदीय-चेष्टा ।
त्वत्तेजसा जगदिदं प्रतिभाति नित्यं
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ५ ॥
शब्दात्मिके शशिकलाभरणार्धदेहे
शम्भोरुरस्थल - निकेतन - नित्यवासे ।
दारिद्र्य-दुःख-भयहारिणि का त्वदन्या
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ६ ॥
सन्ध्यात्रये सकल-भूसुर-सेव्यमाने
स्वाहा स्वधासि पितृदेवगणार्तिहन्त्री ।
जायाः सुताः परिजनातिथयोऽन्नकामाः
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ७ ॥
सद्भक्त-कल्पलतिके भुवनैकवन्द्ये
भूतेश - हृत्कमलमग्न - कुचाग्रभृङ्गे ।
कारुण्यपूर्णनयने किमुपेक्षसे मां
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ८ ॥
अम्ब ! त्वदीय - चरणाम्बुज-संश्रयेण
ब्रह्मादयोऽप्यविकलां श्रियमाश्रयन्ते ।
तस्मादहं तव नतोऽस्मि पदारविन्दं
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥ ९ ॥
एकाग्रमूलनिलयस्य महेश्वरस्य
प्राणेश्वरी प्रणत-भक्तजनाय शीघ्रम् ।

कामाक्षि-रक्षित-जगत्-त्रितयेऽन्नपूर्णे !
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् ॥१०॥
भक्त्या पठन्ति गिरिजा-दशकं प्रभाते
मोक्षार्थिनो बहुजनाः प्रथितोऽन्नकामाः ।
प्रीता महेश-वनिता हिमशैलकन्या
तेषां ददाति सुतरां मनसेप्सितानि ॥ ११ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितमन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५५॥

१५६ श्रीपूर्णाष्टकम्

भगवति भवबन्धच्छेदिनि ब्रह्मवन्द्ये
शशिमुखि रुचिपूर्णे भालचन्द्रेऽन्नपूर्णे ।
सकलदुरितहन्त्रि स्वर्गमोक्षादिदात्रि
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ १ ॥
तव गुणगरिमाणं वर्णितुं नैव शक्ता
विधि-हरि-हरदेवा नैव लोका न वेदाः ।
कथमहमनभिज्ञो वागतीतां स्तुवीयां
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ २ ॥
भगवति वसुकामाः स्वर्गमोक्षादिकामा-
दितिजसुर-मुनीन्द्रास्त्वां भजन्त्यम्ब सर्वे ।
तव पदयुगभक्तिं भिक्षुकस्त्वां नमामि
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ ३ ॥
यदवधि भवमातस्ते कृपा नास्ति जन्तौ
तदवधि भवजालं कः समर्थो विहातुम् ।
भवकृतभयभीतस्त्वां शिवेऽहं प्रसन्नो
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ ४ ॥
सुरसुरपतिवन्द्ये कोटिरित्येकरम्ये
निखिलभवनधन्ये कामदे कामदेहे ।
भवति भवपयोधेस्तारिणीं त्वां नतोऽहं
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ ५ ॥

त्वमिह जगति पूर्णा त्वद्विहीनं न किञ्चिद्
रजनि यदि विहीनं तत्स्वरूप तु मिथ्या।
इति निगदति वेदो ब्रह्मभिन्नं न सत्यं
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ ६ ॥
स्वजनशरणदक्षे दक्षजे पूर्णकामे
सुरहितकृतरूपे निर्विकल्पे निरीहे।
श्रुतिसमुदयगीते सच्चिदानन्दरूपे
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ ७ ॥
भगवति तव पुर्यां त्वां समाराध्य याचे
भवतु गणपमातर्भक्तितस्तेऽविरामः।
त्वदितरजन आर्ये पूर्णकामो न पूर्णे
जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमदुत्तराम्नायज्योतिष्पीठाधीश्वर-जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामिश्रीशान्तानन्दसरस्वतीशिष्य-स्वामिश्रीमदनन्तानन्द-सरस्वतीविरचितं श्रीपूर्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १५६ ॥

१५७. अन्नपूर्णाकवचम्

द्वात्रिंशद्वर्णमन्त्रोऽयं शङ्करप्रतिभाषितः।
अन्नपूर्णा महाविद्या सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमा ॥ १ ॥
पूर्वमुत्तरमुच्चार्य सम्पुटीकरणमुत्तमम्।
स्तोत्रमन्त्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दो त्रिष्टुबुदाहृतः ॥ २ ॥
देवता अन्नपूर्णा च ह्रीं बीजमम्बिका स्मृता।
स्वाहा शक्तिरिति ज्ञेयं भगवति कीलकं मतम् ॥ ३ ॥
धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोग उदाहृतः।
ॐ ह्रीं भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णायै स्वाहा।
सप्तार्णवमनुष्याणां जपमन्त्रः समाहितः ॥ ४ ॥

अन्नपूर्णे इमं मन्त्रं मनुसप्तदशाक्षरम्।
सर्वसम्पत्प्रदो नित्यं सर्वविश्वकरी तथा॥ ५॥
भुवनेश्वरीति विख्याता सर्वाऽभीष्टं प्रयच्छति।
हृल्लेखेयमिति ज्ञेयमोङ्काराक्षररूपिणी॥ ६॥
कान्ति-पुष्टि-धना-ऽऽरोग्य यशांसि लभते श्रियम्।
अस्मिन् मन्त्रे रतो नित्यं वशयेदखिलं जगत्॥ ७॥

अङ्गन्यासः—ॐ अस्य श्रीअन्नपूर्णामालामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषये नमः शिरसि। ॐ अन्नपूर्णादेवतायै नमः हृदये। ॐ ह्रीं बीजाय नमः नाभौ। ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः। ॐ धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यासः—ॐ ह्राम् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रूँ मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। ॐ ह्रैं कवचाय हुम्। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडाम्
अन्नप्रदान-निरतां स्तनभारनम्राम्।
नृत्यन्तमिन्दु-सकलाभरणं विलोक्य
हृष्टां भजे भगवतीं भव-दुःख-हन्त्रीम्॥

मालामत्रः—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे! ममाऽभिलषितमन्नं देहि स्वाहा।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मन्दार-कल्प-हरिचन्दन-पारिजात-मध्ये शशाङ्क-मणिमण्डित-वेदिसंस्थे। अर्धेन्दु-मौलि-सुललाट-षडर्धनेत्रे भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ॥ १॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं केयूर-हार-कनकाङ्गदकर्णपूरे काञ्चीकलाप-मणिकान्ति-लसद्दुकूले। दुग्धा-ऽन्नपात्र-वर-काञ्चन-दर्विहस्ते भिक्षां

प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् । क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥ २ ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीम् आली-कदम्बपरिसेवित-पार्श्वभागे शक्रादिभिर्मुकुलिताञ्जलिभिः पुरस्तात् । देवि ! त्वदीय-चरणौ शरणं प्रपद्ये भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥ ३ ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं गन्धर्व-देव-ऋषि-नारद-कौशिकाऽत्रि-व्यासाऽम्बरीष-कलशोद्भव-कश्यपाद्याः । भक्त्या स्तुवन्ति निगमा-ऽऽगम-सूक्त-मन्त्रैर्भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥४॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं लीलावचांसि तव देवि ! ऋगादिवेदाः सृष्टयादिकर्मरचना भवदीयचेष्टा । त्वत्तेजसा जगदिदं प्रतिभाति नित्यं भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥५॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं शब्दात्मिके शशिकलाभरणार्धदेहे शम्भोरुरस्थल-निकेतननित्यवासे । दारिद्र्य-दुःखभयहारिणि का त्वदन्या भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ऐं ॐ ॥ ६ ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सन्ध्यात्रये सकलभूसुरसेव्यमाने स्वाहा स्वधासि पितृदेवगणार्तिहन्त्री । जायाः सुताः परिजनातिथयोऽन्नकामाः भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥७॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सद्भक्तकल्पलतिके भुवनैकवन्द्ये भूतेश-हृत्कमलमग्न-कुचाग्रभृङ्गे । कारुण्यपूर्णनयने किमुपेक्षसे मां भिक्षां प्रदेहि गिरजे क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥८॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं अम्ब ! त्वदीय-चरणाम्बुज-संश्रयेण ब्रह्मादयोऽप्यविकलां श्रियमाश्रयन्ते । तस्मादहं तव नतोऽस्मि पदारविन्दे भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥९॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं एकाग्रमूलनिलयस्य महेश्वरस्य प्राणेश्वरि ! प्रणत-भक्तजनाय शीघ्रम् । कामाक्षि-रक्षित-जगत्-त्रितयेऽन्नपूर्णे भिक्षां प्रदेहि गिरिजे ! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥१०॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं भक्त्या पठन्ति गिरिजादशकं प्रभाते मोक्षार्थिनो बहुजनाः प्रथितान्नकामाः । प्रीता महेशवनिता हिमशैल-कन्या तेषां ददाति सुतरां मनसेप्सितानि क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥ ११ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितमन्नपूर्णाकवचं समाप्तम् ॥ १५७ ॥

१५८. लक्ष्मीस्तोत्रम्

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते ॥ १ ॥
उपमे सर्वसाध्वीनां देवीनां देवपूजिते ।
त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम् ॥ २ ॥
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी ।
रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः ॥ ३ ॥
कैलासे पार्वती त्वं च क्षारोदे सिन्धुकन्यका ।
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥ ४ ॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती ।
गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥ ५ ॥
कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।
रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दावनवने वने ॥ ६ ॥
कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने ।
विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥ ७ ॥
पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने ।
कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥ ८ ॥
कदम्बमाला त्वं देवि ! कदम्बकाननेऽपि च ।
राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥ ९ ॥
इत्युक्त्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा ।
रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥१०॥
इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवः कृतं शुभम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद् ध्रुवम् ॥११॥

अभार्यो लभते भार्यां विनीतां सुसुतां सतीम् ।
सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ॥१२॥
पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम् ॥१३॥
परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ॥१४॥
हतबन्धुर्लभेद् बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् ।
कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठां च लभेद् ध्रुवम् ॥१५॥
सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोक-सन्ताप-नाशनम् ।
हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्म-मोक्ष-सुहृत्प्रदम् ॥१६॥

इति श्रीदेवकृतं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५८॥

१५९. महालक्ष्म्यष्टकम्

इन्द्र उवाच

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
शङ्ख-चक्र-गदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि ।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि ।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
सिद्धि-बुद्धि-प्रदे देवि भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनि ।
मन्त्रमूर्ते सदा देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ॥ ४ ॥
आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
स्थूल-सूक्ष्म-महारौद्रे महाशक्ति महोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्म-स्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते ।
जगत्-स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

महालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रं यः पठेद् भक्तिमान्नरः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ॥ ९ ॥
एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् ।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धन-धान्य-समन्वितः ॥ १० ॥
त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् ।
महालक्ष्मी भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥ ११ ॥

इतीन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १५९ ॥

•

१६०. सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् [१]

सौन्दर्य-माधुर्य - सुधासमुद्र-विनिद्र - पद्मासन - सन्निविष्टाम् ।
चञ्चद्-विपञ्चीकल-नादमुग्धां शुद्धां दधेऽन्तर्विसरत्सुगन्धाम् ॥ १ ॥
श्रुतिः-स्मृतिस्तत्पद-पद्मगन्धि-प्रभामयं वाङ्मयमस्तपारम् ।
यत्कोण-कोणाभिनिविष्टमिष्टं तामम्बिकां सर्वसितां श्रिताः स्मः ॥ २ ॥
न कान्दिशीकं रवितोऽतिवेलं तं कौशिकं संस्पृहये निशातम् ।
सावित्र-सारस्वतधामपश्यं शस्यं तपोब्राह्मणमाद्रिये तम् ॥ ३ ॥
श्रीशारदा प्रार्थित-सिद्धविद्यां श्रीशारदाम्भोज-सगोत्रनेत्राम् ।
श्रीशारदाम्भोज-निवीज्यमानां श्रीशारदाङ्कानुजनिं भजामि ॥ ४ ॥
चक्राङ्क-राजाञ्चित-पादपद्मां पद्मालयाऽभ्यर्थित-सुस्मितश्रीः ।
स्मितश्रिया वर्षित-सर्वकामा वामा विधेः पूरयतां प्रियं नः ॥ ५ ॥
वाहो रमायाः किल कौशिकोऽसौ हंसो भवत्याः प्रथितो विविक्तः ।
जगद्-विधातुर्महिषि त्वमस्मान् विधेहि सभ्यान्नहि मातरिभ्यान् ॥ ६ ॥
स्वच्छव्रतः स्वच्छचरित्रचुञ्चुः स्वच्छान्तरः स्वच्छ-समस्त-वृत्तिः ।
स्वच्छं भवत्याः प्रपदं प्रपन्नः स्वच्छे त्वयि ब्रह्मणि जातु यातु ॥ ७ ॥
रवीन्दु-वह्नि-द्युति-कोटि-दीप्तं सिंहासनं सन्तत-वाद्य-गानम् ।
विदीपयन्मातृकधाम यामः कारुण्य-पूर्णामृत-वारिवाहम् ॥ ८ ॥
शुभ्रां शुभ्र-सरोज-मुग्धवदनां शुभ्राम्बरालङ्कृतां
शुभ्राङ्गीं शुभ-शुभ्रहास्यविशदां शुभ्रस्रगाशोभिनीम् ।

शुभ्रोद्दाम-ललाम-धाममहिमां शुभ्रान्तरङ्गागतां
शुभ्राभां भयहारि-भाव-भरितां श्रीभारतीं भावये ॥ ९ ॥
मुक्तालङ्कृत-कुन्तलान्तसरणिं रत्नालिहारावलिं
काञ्ची-कान्त-वलग्न-लग्नवलयां वज्राङ्गुलीयाङ्गुलिम् ।
लीला-चञ्चल-लोचनाञ्चल-चलल्लोकेश-लोलालकां
कल्यामाकलयेऽतिवेलमतुलां वित्कल्पवल्लीकलाम् ॥१०॥
प्रयतो धारयेद् यस्तु सारस्वतमिमं स्तवम् ।
सारस्वतं तस्य महः प्रत्यक्षमचिराद् भवेत् ॥११॥
वाग्बीजसम्पुटं स्तोत्रं जगन्मातुः प्रसादजम् ।
शिवालये जपन् मर्त्यः प्राप्नुयाद् बुद्धिवैभवम् ॥१२॥
सूर्यग्रहे प्रजपितः स्तवः सिद्धिकरः परः ।
वाराणस्यां पुण्यतीर्थे सद्यो वाञ्छितदायकः ॥१३॥
पादाम्भोजे सरस्वत्याः शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
काशीपीठाधिपतिना गुम्फिता स्रक् समर्पिता ॥१४॥

इति काशीपीठाधीश्वर-जगद्गुरुशङ्कराचार्य-स्वामिश्रीमहेश्वरानन्दसरस्वती-विरचितं सिद्धसरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ॥ १६० ॥

१६१. सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् [२]

ॐ अस्य श्रीसरस्वतीस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः, स्रग्धरा-ऽनुष्टुप्-छन्दः, सरस्वतीदेवता, ऐं बीजं, वद वद शक्तिः, स्वाहा कीलकं मम वाक्सिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

न्यासः—ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ऐं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ धीं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ क्लीं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ सौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्रीं हृदयाय नमः । ॐ ऐं शिरसे स्वाहा । ॐ धीं शिखायै वषट् । ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ सौं कवचाय हुम् । ॐ श्रीं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

शुक्लां ब्रह्मविचार-सार-परमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणा-पुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिक-मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥ १॥
दोर्भिर्युक्तैश्चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधानां
हस्तेनैकेन पद्ममं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।
पाशं वीणां मुकुन्द-स्फटिकमणिनिभां भासमाना समाना
सा मे वादे च तथ्यं निवमतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना॥ २॥
या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणा-वरदण्ड-मण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्मा-ऽच्युत-शङ्कर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥ ३॥

इति ध्यात्वा, १०८ मन्त्रं जपेत्। ॐ ऐं धीं क्लीं सौं श्रीं सरस्वत्यै नमः।

ह्लीं ह्लीं ह्लीं हृद्यैकबीजे शशि-रुचि-कमले कल्पविस्पष्टशोभे
भव्ये व्यानुकूले शुभमतिवरदे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणत-जनमनोमोद-सम्पादयित्रि
प्रोत्फुल्लज्ञानकूले हरिहरनमिते देवि! संसारसारे॥ १॥
ऐं ऐं ऐं जाप्यतुष्टे हिमरुचि-मुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम्।
विद्ये वेदान्तवेद्ये श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे
मार्गातीतस्वरूपे भव मम वरदे शारदे शुभ्रहारे॥ २॥
धीं धीं धीं धारणाख्ये धृति-मति-नुतिभिर्नामभिः कीर्त्तनीये
नित्ये नित्ये निमित्ते मुनिजन-नमिते नूतने वै पुराणे।
पुण्ये पुण्यप्रभावे हरिहरनमिते पूर्णतत्त्वस्वरूपे
मातर्मात्रार्थतत्त्वे! मति-मति-मतिदे! माधवप्रीतिनादे॥ ३॥
क्लीं क्लीं क्लीं सुस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकं व्यग्रहस्ते
सन्तुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जृम्भिणि स्तम्भनीये।

मोहे मुग्धप्रबोधे मम कुरु कुमति-ध्वान्त-विध्वंसमीड्ये
गी-र्गी-र्वाग्भारतीत्वं कविधृतरसने सिद्धिदे सिद्धिसाध्ये ॥ ४ ॥
सौं सौं सौं शक्तिबीजे कमल-भवमुखाम्भोजमूर्त्तिस्वरूपे
रूपे रूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकल्पे ।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे जाप्यविज्ञानतुष्टे
विश्वे विश्वान्तराले सकलगुणमये निष्कले नित्यशुद्धे ॥ ५ ॥
श्रीं श्रीं श्रीं स्तौमि त्वाऽहं मम खलु रसनां मा कदाचित् त्यज त्वं
मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु मम मनो पातु मां देवि ! पापात् ।
मा मे दुःखं कदचित् क्वचिदपि विषये पुस्तके नाकुलत्वं
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदाऽपि ॥ ६ ॥
इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
वाणी वाचस्पतेरप्यविदितविभवो वाक्यतत्त्वार्थवेत्ता ।
स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिव सततं पातु तं सा च देवी
सौभाग्यं तस्य लोके प्रसरतु कविता विघ्नमस्तं प्रयातु ॥ ७ ॥
निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाऽऽशु ग्रन्थप्रबोधः
कीर्त्तिस्त्रैलोक्यमध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षाद् ।
दीर्घायुर्लोकपूज्यः सकलगुणनिधिः सन्ततं राजमान्यो
वाग्देव्याः सम्प्रसादात् त्रिजगति विजयो जायते तस्य साक्षाद् ॥८॥
ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यामहर्निशम् ।
सारस्वतो जनः पाठाद् भवेदिष्टार्थलाभवान् ॥ ९ ॥
पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशतिसंख्यया ।
अविच्छिन्नं पठेद्यस्तु सुभगो लोकविश्रुतः ।
वाञ्छितं फलमाप्नोति षण्मासैर्नाऽत्र संशयः ॥१०॥

ॐ ह्रीं ऐं धीं क्लीं सौं श्रीं वद वद वाग्वादिन्यै स्वाहा । मालां शिरसि धृत्वा—

त्वं माले ! सर्वदेवानां सर्वकामप्रदा मता ।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते ॥ इत्यर्पणम् ॥

इति सनत्कुमारसंहितायां सिद्धसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १८५ ॥

१५९. सरस्वतीस्तोत्रम्

श्वेत-पद्मासना देवी श्वेत-पुष्पोप-शोभिता ।
श्वेताम्बर-धरा नित्या श्वेत-गन्धानुलेपना ॥ १ ॥
श्वेताक्षी शुक्लवस्त्रा च श्वेत-चन्दन-चर्चिता ।
वरदा सिन्धु-गन्धर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा ॥ २ ॥
स्तोत्रेणाऽनेन तां देवीं जगद्धात्रीं सरस्वतीम् ।
ये स्तुवन्ति त्रिकालेषु सर्वविद्या लभन्ति ते ॥ ३ ॥
या देवी स्तूयते नित्यं ब्रह्मेन्द्र-सुर-किन्नरैः ।
सा ममैवाऽस्तु जिह्वाग्रे पद्महस्ता सरस्वती ॥ ४ ॥

इति सरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ॥ १५९ ॥

●

१६०. सरस्वतीकवचम्

गुरुरुवाच

शृणु शिष्य ! प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ।
धृत्वा सततं सर्वैः प्रपाठ्योऽयं स्तवः शुभः ॥

अस्य श्रीसरस्वतीस्तोत्रकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, शारदादेवता, 'सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थसाधनेषु च । कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥' इति पठित्वा, विनियोगं कुर्यात् ।

ॐ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ।
ॐ श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ।
ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम् ।
ॐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै-सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु ।
ॐ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं विद्याऽधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु ।
ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तिं सदाऽवतु ।
ॐ ऐं इत्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु ।
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीः सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं विद्याऽधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ।

ॐ ह्रीं विद्याऽधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।
ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदाऽवतु ।
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु ।
ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ।

तत्पश्चादाशाबन्धं कुर्यात्—

ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु ।
ॐ सर्वजिह्वाऽग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ।
ॐ सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्ये सर्वदाऽवतु ।
ॐ ऐं ह्रीं जिह्वाऽग्रवासिन्यै स्वाहा प्रतीच्यां मां सर्वदाऽवतु ।
ॐ सर्वाऽम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु ।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं गद्य-पद्य-वासिन्यै स्वाहा मामुत्तरे सदाऽवतु ।
ॐ ऐं सर्वशास्त्रवादिन्यै स्वाहेशान्ये सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै सदाऽधो मां सदाऽवतु ।
ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ।
इति ते कथितं शिष्य ! ब्रह्म-मन्त्रौघ-विग्रहम् ।
इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥

इति श्रीसरस्वतीकवचं समाप्तम् ॥ १६० ॥

●

१६१. सरस्वत्यष्टकम्

शतानीक उवाच

महामते ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्र-विशारद ।
अक्षीणकर्मबन्धस्तु पुरुषो द्विजसत्तम ! ॥ १ ॥
मरणे यज्जपेज्जाप्यं पञ्चभावमनुस्मरन् ।
परम्पदमवाप्नोति तन्मे ब्रूहि महामुने ! ॥ २ ॥

शौनक उवाच

इदमेव महाराज! पृष्टवांस्ते पितामहः।
भीष्मं धर्मविदां श्रेष्ठ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३॥

युधिष्ठिर उवाच

पितामह! महाप्राज्ञ! सर्वशास्त्रविशारद!।
बृहस्पतिस्तुता देवी वागीशाय महात्मने।
आत्मानं दर्शयामास सूर्यकोटि-समप्रभम्॥ ४॥

सरस्वत्युवाच

वरं वृणीष्व भगवन्! यत्ते मनसि वर्तते।

बृहस्पतिरुवाच

यदि मे वरदा देवि! दिव्यज्ञानं प्रयच्छ नः॥ ५॥

देव्युवाच

हन्त ते निर्मलं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम्।
स्तोत्रेणाऽनेन भक्त्या मां स्तुवन्ति मनीषिणः॥ ६॥

बृहस्पतिरुवाच

लभते परमं ज्ञानं यत् सुरैरपि दुर्लभम्।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः॥ ७॥

सरस्वत्युवाच

त्रिसन्ध्यं प्रयतो नित्यं पठेदष्टकमुत्तमम्।
तस्य कण्ठे वासं करिष्यामि न संशयः॥ ८॥

इति श्रीपद्मपुराणे दिव्यज्ञानप्रदायकं सरस्वत्यष्टकं समाप्तम्॥१६१॥

१६२. नीलसरस्वतीस्तोत्रम्

घोररूपे महारावे सर्वशत्रुभयङ्करि।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ १॥
ॐ सुराऽसुरार्चिते देवि सिद्धगन्धर्वसेविते।
जाड्य-पापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ २॥

जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वान्तकारिणि ।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥ ३ ॥
सौम्यक्रोधधरे रूप चण्डरूपे नमोऽस्तु ते ।
सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम् ॥ ४ ॥
जडानां जडतां हन्ति भक्तानां भक्तवत्सला ।
मूढतां हर मे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥ ५ ॥
वं ह्लं ह्लूं कामये देवि बलिहोमप्रिये नमः ।
उग्रतारे नमो नित्यं त्राहि मां शरणागतम् ॥ ६ ॥
बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि मे ।
मूढत्वं च हरेद् देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥ ७ ॥
इन्द्रादि-विलसद्-द्वन्द्ववन्दिते करुणामयि ।
तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम् ॥ ८ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां यः पठेन्नरः ।
षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ९ ॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकम् ॥१०॥
इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं श्रद्धयाऽन्वितः ।
तस्य शत्रुः क्षयं जाति महाप्रज्ञा प्रजायते ॥११॥
पीडायां वाऽपि संग्रामे जाड्ये दाने तथा भये ।
य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः ।
इति प्रणम्य स्तुत्वा च योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥१२॥

इति नीलसरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ॥ १६२ ॥

१६३. गायत्रीस्तोत्रम्

नमस्ते देवि गायत्रि सावित्रि त्रिपदेऽक्षरे ।
अजरे अमरे मातस्त्राहि मां भवसागरात् ॥ १ ॥
नमस्ते सूर्यसङ्काशे सूर्यसावित्रिकेऽमले ।
ब्रह्मविद्ये महाविद्ये वेदमातर्नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डव्यापिनि ब्रह्मचारिणि।
नित्यानन्दे महामाये परेशानि नमोऽस्तु ते॥ ३॥
त्वं ब्रह्मा त्वं हरिः साक्षाद् रुद्रस्त्वमिन्द्रदेवता।
मित्रस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निरश्विनौ भगः॥ ४॥
पूषार्ऽयमा मरुत्वांश्च ऋषयोऽपि मुनीश्वराः।
पितरो नागा यक्षाश्च गन्धर्वाऽप्सरसां गणाः॥ ५॥
रक्षो-भूत-पिशाचाश्च त्वमेव परमेश्वरि।
ऋग्-यजुः-सामविद्याश्च ह्यथर्वाङ्गिरसानि च॥ ६॥
त्वमेव सर्वशास्त्राणि त्वमेव सर्वसंहिताः।
पुराणानि च तन्त्राणि महागममतानि च॥ ७॥
त्वमेव पञ्च भूतानि तत्त्वानि जगदीश्वरि।
ब्राह्मी सरस्वती सन्ध्या तुरीया त्वं महेश्वरि॥ ८॥
तत्सद्ब्रह्मस्वरूपा त्वं किञ्चित् सदसदात्मिका।
परात्परेशि गायत्रि नमस्ते मातरम्बिके॥ ९॥
चन्द्रे कलात्मिके नित्ये कालरात्रि स्वधे स्वरे।
स्वाहाकारेऽग्निवक्त्रे त्वां नमामि जगदीश्वरि॥१०॥
नमो नमस्ते गायत्रि सावित्रि त्वां नमाम्यहम्।
सरस्वति नमस्तुभ्यं तुरीये ब्रह्मरूपिणि॥११॥
अपराधसहस्राणि त्वसत्कर्मशतानि च।
मत्तो जातानि देवेशि त्वं क्षमस्व दिने दिने॥१२॥

इति वसिष्ठसंहितोक्तं गायत्रीस्तोत्रं समाप्तम्॥ १६३॥

१६४. गायत्री-कवचम्

विनियोगः—अस्य श्रीगायत्रीकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषयः, ऋग्-यजुः-सामा-ऽथर्वाणि छन्दांसि, परब्रह्मस्वरूपिणी गायत्री देवता, तद्बीजम्, भर्गः शक्तिः, धियः कीलकम्, मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

न्यासः—ॐ तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः, ॐ वरेण्यं

विष्ण्वात्मने शिरसे स्वाहा, ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट्, ॐ धीमहि ईश्वरात्मने कवचाय हुम् ॐ धियो यो नः सदाशिवात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ प्रचोदयात् परब्रह्मतत्त्वात्मने अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील-धवलच्छायैर्मुखस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुकला-निबद्धमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदा-ऽभय-ऽङ्कुश-कशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दुयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

कवचम्

गायत्री पूर्वंत पातु सावित्री पातु दक्षिणे ।
ब्रह्मसन्ध्या तु मे पश्चादुत्तरस्यां सरस्वती ॥ १ ॥
पावकीं च दिशं रक्षेत् पावमानी विलासिनी ।
दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ।
एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी ॥ ३ ॥
तत्पदं पातु मे पादौ जङ्घे मे सवितु पदम् ।
वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥ ४ ॥
देवस्य मे तु हृदयं धीमहीति च गल्लयोः ।
धियःपदं च मे नेत्रे यःपदं मे ललाटके ॥ ५ ॥
नःपदं पातु मे मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात् ।
तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम् ॥ ६ ॥
चक्षुषी तु विकारार्णं तुकारस्तु कपोलयोः ।
नासापुटे वंकारश्च रेकारस्तु मुखे तथा ॥ ७ ॥
णिकार ऊर्ध्वं ओष्ठे तु यकारस्त्वधरोष्ठके ।
आस्यमध्ये भकारस्तु र्गोकारश्चिबुके तथा ॥ ८ ॥
देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशके ।
स्यकारो दक्षिणे हस्ते धीकारो वामहस्तके ॥ ९ ॥

मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा।
धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥१०॥
गुह्यं रक्षतु योकार ऊरुणी नःपदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जङ्घदेशकम् ॥११॥
दकारो गुल्फदेशेषु याकारः पादयुग्मकम्।
तकारव्यञ्जनं चैव देवताभ्यो नमो नमः ॥१२॥
इदं तु कवचं दिव्यं बद्ध्वा शत्रून् विनाशयेत्।
चतुःषष्टिकला विद्या अङ्गाद्यखिलपातकैः ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१३॥

इति गायत्रीकवचं समाप्तम् ॥ १६४ ॥

इति देवीस्तोत्राणि समाप्तानि।

गङ्गादितीर्थस्तोत्राणि

१६५. गङ्गाष्टकम् [१]

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधा-शृङ्गार-हारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥ १ ॥
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तर्गतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।
नैवाऽन्यत्र मदान्ध-सिन्धुरघटा-सङ्घट्ट-घण्टारणत्
कारत्रस्त-समस्त - वैरिवनिता-लब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥
उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वाराणस्यां जननमरण-क्लेश-दुःखासहिष्णुः।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्-कङ्कणक्वाणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ॥ ३ ॥
काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुललितं वीचीभिरान्दोलितम्।

दिव्यस्त्री-करचारु-चामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्ववंपुः ॥ ४ ॥
अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
र्मदन - मथन - मौलेर्मालतीपुष्पमाला ।
जयति जयपताका काऽप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥
एतत्ताल-तमाल-सालसरल - व्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दु-कुन्दोज्ज्वलम् ।
गन्धर्वामर-सिद्ध - किन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥ ६ ॥
गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम् ।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥ ७ ॥
पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि ।
झङ्कारकारि हरिपादरजोपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥ ८ ॥
गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः ।
प्रक्षाल्य गात्रकलि - कल्मष - पङ्कमाशु
मोक्षं लभेत् पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥ ९ ॥

इति श्रीमहर्षि-वाल्मीकिविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १६५ ॥

१६६. गङ्गाष्टकम् [२]

नमस्तेऽस्तु गङ्गे त्वदङ्गप्रसङ्गाद्-
भुजङ्गास्तुरङ्गाः कुरङ्गाः प्लवङ्गाः ।
अनङ्गारिरङ्गाः ससङ्गाः शिवाङ्गा
भुजङ्गाधिपाङ्गीकृताङ्गा भवन्ति ॥ १ ॥
नमो जह्नुकन्ये न मन्ये त्वदन्यैर्निसर्गेन्दुचिह्नादिभिर्लोकभर्तुः ।
अतोऽहं नतोऽहं सतो गौरतोये वसिष्ठादिभिर्गीयमानाभिधेये ॥ २ ॥

त्वदामज्जनात् सज्जनो दुर्जनो वा विमानैः समानः समानैर्हि मानैः ।
समायाति तस्मिन् पुरारातिलोके पुरद्वार-संरुद्ध-दिक्पाललोके ॥३॥
स्वरावासदम्भोलिदम्भोऽपि रम्भा-परीरम्भ-सम्भावनाधीरचेताः ।
समाकांक्षते त्वत्तटे वृक्षवाटीकुटीरे वसन्नर्तुमायुर्दिनानि ॥४॥
त्रिलोकस्य भर्तुर्जटा-जूटबन्धात् स्वसीमान्तभागे मनाक्प्रस्खलन्तः ।
भवान्या रुषा प्रौढसापत्न-भावात् करेणाहतास्त्वत्तरङ्गा जयन्ति ॥५॥
जलोन्मज्जदैरावतोद्दानकुम्भ-स्फुरत् - प्रस्खलन्-सान्द्रसिन्दूररागे ।
क्वचित् पद्मिनीरेणुभङ्गे प्रसङ्गे मनःखेलतां जह्नुकन्यातरङ्गे ॥६॥
भवत्तीर-वानीर-वातोत्थधूली-लवस्पर्शतस्तत्क्षणं क्षीणपापः ।
जनोऽयं जगत्पावने त्वत्प्रसादात् पदे पौरुहूतेऽपि धत्तेऽवहेलाम् ॥७॥
त्रिसन्ध्यानमल्लेखकोटीरनानाविधानैक - रत्नांशुबिम्बप्रभाभिः ।
स्फुरत्पादपीठे हठेनाष्टमूर्तेर्जटाजूटवासे नताः स्मः पदं ते ॥८॥
इदं यः पठेदष्टकं जह्नुपुत्र्यास्त्रिकालं कृतं कालिदासेन रम्यम् ।
समायास्यतीन्द्रादिभिर्गीयमानं पदं कैशवं शैशवं न लभेत् सः ॥९॥

इति श्रीकालिदासकृतं गङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १६६ ॥

१६७. गङ्गाष्टकम् [३]

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति ।
अमर - नगरनारी - चामरग्राहिणीनां
विगत - कलिकलङ्का - तङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ १ ॥
ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहा-गण्डशैलात् स्खलन्ती ।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥ २ ॥
मज्जन्मातङ्गकुम्भ - च्युतमदमदिरामोद - मत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्-कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ।
सायं - प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः-करिकलभ-कराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ ३ ॥

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात् पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी भूतले ॥ ४ ॥
शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाङ्गैरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ॥ ५ ॥
कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥ ६ ॥
गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ ७ ॥
भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ ८ ॥
मातः शाम्भवि शम्भुसङ्गमिलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद् भक्तिरविच्युता हरिहरद्वैतात्मिका शाश्वती ॥ ९ ॥
गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥१०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १६७ ॥

१६८. गङ्गाष्टकम् [४]

न शक्तास्त्वां स्तोतुं विधिहरिहरा जह्नुतनये
गुणोत्कर्षाख्यानं त्वयि न घटते निर्गुणपदे ।
अतस्ते संस्तुत्यै कृतमतिरहं देवि सुधियां
विनिन्द्यो यद्वेदाश्चकितमभिगायन्ति भवतीम् ॥ १ ॥
तथाऽपि त्वां पापः पतितजनतोद्धारनिपुणे
प्रवृत्तोऽहं स्तोतुं प्रकृतिचलया बालकधिया ।
अतो दृष्टोत्साहे भवति भवभारैकदहने
मयि स्तुत्ये गङ्गे कुरु परकृपां पर्वतसुते ॥ २ ॥
न संसारे तावत्कलुषमिह यावत्तव पयो
दहत्यार्ये सद्यो दहन इव शुष्कं तृणचयम् ।
पलायन्ते दृष्ट्वा तव परिचरानन्तकजना
यथा वन्या वाऽन्ये वनपतिभयाद् वामनमृगाः ॥ ३ ॥
जना ये ते मातर्निधनसमये तोयकणिकां
मुखे कृत्वा प्राणाञ्जहति सुरसङ्घैरनुवृता ।
विमाने क्रीडन्तोऽमरपतिपदं यान्ति नियतं
कथा तेषां का वा जननि तव तीरे निवसताम् ॥ ४ ॥
शिवः सर्वाराध्यो जननि विषतापोपशमनं
चरीकर्तुं गङ्गे कलिकलुषभङ्गे पशुपतिः ।
जटायां सन्धत्त ललितलहरीं त्वां सुरनदी
त्वदन्या का वन्द्या परममहिता वा त्रिभुवने ॥ ५ ॥
जनस्तावन्मातर्दुरितभयतो बिभ्यति सृतौ
न यावत्त्वत्तीरं नयनपथमायाति विमलम् ।
यदाप्तं त्वत्तीरं तदनु दुरितानां न गणना
ततो गङ्गे! वन्द्या मुनिसमुदयास्त्वां न जहति ॥ ६ ॥
नमामि त्वां गङ्गे श्रुतिवनविहारैकनिपुणे
जगन्मातर्मातस्त्रिपुरहरसेव्ये विधिनुते ।

त्वमेवाद्या दुर्गा जनहितकृते त्वं द्रवमयी
स्वयं जाता देवि त्वमसि परमं ब्रह्म विदितम् ॥ ७ ॥
कदा गङ्गे रम्ये तटमधिवसस्ते शिवनुते
शिवे दुर्गे मातः सकलफलदे देवदयिते ।
परेशे सर्वेशे श्रुतिशतनुते दक्षतनये
सदाऽहं सञ्जल्पन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ८ ॥
गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं प्रभाते यः पठेच्छुचिः ।
सर्वाभीष्टं ततस्तस्मै ददाति सुरनिम्नगा ॥ ९ ॥

इति स्वामि-श्रीमदनन्तानन्दसरस्वतीविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१६८॥

१६९. गङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥ १ ॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
नाऽहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ॥ २ ॥
हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे ।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम् ॥ ३ ॥
तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम् ।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ॥ ४ ॥
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे ।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये ॥ ५ ॥
कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके ।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे ॥ ६ ॥
तव चेन्मातः स्रोतः स्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः ।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥ ७ ॥
पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे ।
इन्द्र-मुकुटमणि-राजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये ॥ ८ ॥

रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥ ९॥
अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः॥१०॥
वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः॥११॥
भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये।
गङ्गास्तवमिममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम्॥१२॥
येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः।
मधुराकान्तापज्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः॥१३॥
गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम्।
शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः॥१४॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥ १६९॥

१७०. गङ्गास्तवः

सूत उवाच

श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे गङ्गास्तवकमुत्तमम्।
शोक-मोह-हरं पुंसामृषिभिः परिकीर्तितम्॥ १॥

ऋषय ऊचुः

इयं सुरतरङ्गिणी भुवनवारिधेस्तारिणी
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालिनी
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी॥ २॥
भगीरथरथानुगा सुकरीन्द्रदर्पापिहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरःपताका सिता।
सुराऽसुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते॥ ३॥
पितामह-कमण्डलुप्रभव-मुक्तिबीजा लता
श्रुति-स्मृतिगणस्तुत-द्विजकुलालबालावृता।

सुमेरुशिखराभिदानिपातिता त्रिलोकावृता
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ॥ ४ ॥
चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनीन्द्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसन्दर्शन-
प्रणामगुणकीर्तनादिषु जगत्सु संराजते ॥ ५ ॥
महाविषसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तना
सफेनजलहासिनी सितमरालसञ्चारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ॥ ६ ॥
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनङ्गसम्पूजिता
क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणा ।
क्वचिद्रविकरोज्ज्वला क्वचिदुग्रपाताकुला
क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममाता सती ॥ ७ ॥
स एव कुशली जनः प्रणमतीह भागीरथी
स एव तपसा निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरङ्गिणीं सेवते ॥ ८ ॥
तवामलजलाचितं खगश्रृगालमीनक्षतं
चलल्लहरिलोलितं रुचिरतीरजम्बालितम् ।
कदा निजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः
संस्तुतोऽप्यहं त्रिपथगामिनि प्रियमतीव पश्याम्यहो ॥९॥
त्वत्तीरे वसतिस्तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंल्लापनं पावनम् ।
गङ्गे मे तव सेवनैकनिपुणाऽप्यानन्दितश्चादृतः
स्तुत्वा चोद्गतपातकी भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम् ।१०।
इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गङ्गास्तवनमुत्तमम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥११॥

सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्धनम् ।
प्रात-र्मध्याह्न-सायाह्ने गङ्गासान्निध्यता भवेत् ॥१२॥
इत्येतद् भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम् ।
पाठितं श्रावितं चाऽत्र पुण्यं धन्यं यशस्करम् ॥१३॥
अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम् ।
पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाऽशुभविनाशनम् ॥१४॥
इति श्रीकल्किपुराणे ऋषिकृतो गङ्गास्तवः समाप्तः ॥१७०॥

१७१. दशहरा गङ्गास्तुतिः

ब्रह्मोवाच

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः ॥ १ ॥
नमस्ते विश्वरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः ।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै ततो भेषजमूर्तये ॥ २ ॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।
स्थाणु-जङ्गम-सम्भूत-विषहन्त्र्यै नमो नमः ॥ ३ ॥
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः ।
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः ॥ ४ ॥
नमस्त्रैलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमो नमः ।
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः ।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः ॥ ६ ॥
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्रे नमो नमः ।
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः ॥ ७ ॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुदृशायै नमो नमः ।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः ॥ ८ ॥
उमायै सुखदोग्ध्र्यै च सञ्जीविन्यै नमो नमः ।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः ॥ ९ ॥

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते ।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः ॥१०॥
शरणागत - दीनार्त - परित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः ।
परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा ॥१२॥
गङ्गे ममाऽग्रतो भूया गङ्गे मे देवि पृष्ठतः ।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेहि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः ॥१३॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे ।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः ॥१४॥
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिव तुभ्यं नमः शिवे ।
य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोऽपि यः ॥१५॥
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः काय-वाक्-चित्तसम्भवैः ।
दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते ॥१६॥
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥१७॥
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ।
यः पठेद् दशकृत्वस्तु दरिद्रो वाऽपि चाऽक्षमः ॥१८॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोनि गङ्गां सम्पूज्य यत्नतः ।
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥१९॥
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चाऽपि सर्वशः ॥२०॥
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥२१॥
वितथाऽभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।
एतानि दश पापानि हर त्वं मम जाह्नवि ! ॥२२॥
दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ।
त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान् पितॄनथ पितामहान् ॥२३॥

उद्धरत्येव संसारान् मन्त्रेणाऽनेन पूजिता ॥२४॥
नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै
नारायण्यै रेवत्यै शिवायै ।
दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै
नन्दिन्यै ते नमो नमः ॥२५॥
सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां
करधृत-कलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
विधि-हरि-हररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां
ललितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥२६॥
आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात् पन्नगशायिनी भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शम्भुजटा-विभूषणमणि-र्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥२७॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥

इति धर्माब्धिस्था दशहरा-गङ्गास्तुतिः सम्पूर्णा ॥१७१॥



१७२. यमुनाष्टकम् [१]

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारि-प्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम् ।
वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्ते प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम् ॥१॥
मधुवन-चारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसङ्गिनि सिन्धुसुते
मधुरिपुभूषिणि माधव-तोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते ।
जगदघमोचिनि मानसदायिनि केशव-केलि-निदानगते
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥२॥
अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे ।

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते ।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः ॥१०॥
शरणागत - दीनार्त - परित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः ।
परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा ॥१२॥
गङ्गे ममाऽग्रतो भूया गङ्गे मे देवि पृष्ठतः ।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेहि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः ॥१३॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे ।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः ॥१४॥
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिव तुभ्यं नमः शिवे ।
य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोऽपि यः ॥१५॥
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः काय-वाक्-चित्तसम्भवैः ।
दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते ॥१६॥
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥१७॥
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ।
यः पठेद् दशकृत्वस्तु दरिद्रो वाऽपि चाऽक्षमः ॥१८॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोनि गङ्गां सम्पूज्य यत्नतः ।
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥१९॥
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चाऽपि सर्वशः ॥२०॥
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥२१॥
वितथाऽभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।
एतानि दश पापानि हर त्वं मम जाह्नवि ! ॥२२॥
दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ।
त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान् पितॄनथ पितामहान् ॥२३॥

उद्धरत्येव संसारान् मन्त्रेणाऽनेन पूजिता ॥२४॥
नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै
नारायण्यै रेवत्यै शिवायै ।
दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै
नन्दिन्यै ते नमो नमः ॥२५॥
सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां
करधृत-कलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
विधि-हरि-हररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां
ललितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥२६॥
आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात् पन्नगशायिनी भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शम्भुजटा-विभूषणमणि-र्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥२७॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥

इति धर्माब्धिस्था दशहरा-गङ्गास्तुतिः सम्पूर्णा ॥१७१॥



१७२. यमुनाष्टकम् [१]

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारि-प्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम् ।
वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्ते प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम् ॥१॥
मधुवन-चारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसङ्गिनि सिन्धुसुते
मधुरिपुभूषिणि माधव-तोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते ।
जगदघमोचिनि मानसदायिनि केशव-केलि-निदानगते
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥२॥
अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे ।

व्रजपुरवासि-जनार्जितपातक-हारिणि विश्वजनोद्धरिके
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥३॥
अतिविषदम्बुधिमग्नजनं भवताप-शताकुलमानसकं
गति - मति - हीनमशेषभयाकुलमागतपाद - सरोजयुगम् ।
ऋणभयभीतिमनिष्कृतिपातक-कोटिशतायुतपुञ्जतरं
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥४॥
नवजलदद्युति-कोटिलसत्तनु-हेममयाभर-रञ्जितके
तडिदवहेलि - पदाञ्चल - चञ्चल-शोभितपीत-सुचैलधरे ।
मणिमय-भूषण-चित्रपटासन-रञ्जित-गञ्जित-भानुकरे
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि शङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥५॥
शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भव-रासमहोत्सव-केलिभरे
उच्चकुलाचल - राजि त-मौक्तिक-हारमयाभररोदसिके ।
नवमणिकोटिक-भास्करकञ्चुकि-शोभिततारक-हारयुते
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥६॥
करिवरमौक्तिक-नासिकभूषण-वातचमत्कृत-चञ्चलके
मुखकमलामल - सौरभचञ्चल - मत्तमधुव्रतलोचनिके ।
मणिगणकुण्डल-लोलपरिस्फुरदाकुल-गण्डयुगामलके
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥७॥
कलरवनूपुर-हेममयाचित-पादसरोरुह-सारुणिके
धिमि-धिमि-धिमि-धिमि-तालविनोदित-मानसमञ्जुल-पादगते ।
तव पदपङ्कजमाश्रितमानव-चित्तसदाऽखिल-तापहरे
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥८॥
भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया ।
हयाह्लेषैः कामं करकुसुमपुञ्जैरविरतां
सदा भोक्ता भोगान्मरणसमये याति हरिताम् ॥९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७२॥

१७३. यमुनाष्टकम् [२]

मुरारि-कायकालिमा-ललामवारि-धारिणी
तृणीकृत-त्रिविष्टपा-त्रिलोक-शोकहारिणी।
मनोऽनुकूल - कूलकुञ्ज - पुञ्जधूतदुर्मदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ १ ॥
मलापहारि - वारिपूर - भूरिमण्डितामृता-
भृशं प्रपातक - प्रवञ्चनातिपण्डितानिशम् ।
सुनन्द-नन्दिनाङ्ग - सङ्ग-रागरञ्जिताहिता
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ २ ॥
लसत्तरङ्ग - सङ्गधूत - भूतजातपातका
नवीन-माधुरीधुरीण-भक्तिजात - चातका ।
तटान्तवासदासहंस - संसृताह्निकामदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ३ ॥
विहार-रास - खेदभेद - धीर-तीर - मारुता
गता गिरामगोचरे यदीयनीरचारुता ।
प्रवाहसाहचर्यपूत - मेदिनी - नदीनदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ४ ॥
तरङ्गसङ्ग-सैकताञ्चितान्तरा सदाऽसिता
शरन्निशाकरांशुमञ्जु-मञ्जरीसभाजिता ।
भवार्चनाय चारुणाम्बुनाधुना - विशारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ५ ॥
जलान्त-केलिकारि-चारु-राधिकाङ्गरागिणी
स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्ग - सङ्गतांशभागिनी ।
स्वदत्त - सुप्तसप्तसिन्धु - भेदनातिकोविदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ६ ॥
जलच्युता-ऽच्युताङ्गराग-लम्पटालिशालिनी
विलोलराधिका-कचान्त-चम्पकालि-मालिनी ।

सदावगाहनावतीर्ण-भर्तृभृत्यनारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ७ ॥
सदैव नन्दिनन्दकेलिशालिकुञ्ज-मञ्जुला
तटोत्थफुल्लमल्लिका-कदम्बरेणुसूज्ज्वला ।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७३॥

●

१७४. नर्मदाष्टकम [१]

सबिन्दु-सिन्धु-सुस्खलत्तरङ्ग-भृङ्गरञ्जितं
द्विषत्सु पाप-जातजातकारि-वारिसंयुतम् ।
कृतान्तदूत - कालभूत - भीतिहारिवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ १ ॥
त्वदम्बुलीन-दीन मीन - दिव्य - सम्प्रदायकं
कलौ मलौघभारहारि सर्वतीर्थनायकम् ।
सुमच्छ - कच्छ-नक्र - चक्रवाकशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ २ ॥
महागभीर - नीरपूर - पापधूत - भूतलं
ध्वनत्समस्त-पातकारि-दारितापदाचलम् ।
जगल्लये महाभये मृकण्डसूनु - हर्म्यदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ३ ॥
गतं सदैव मे भवं त्वदम्बु वीक्षितं यदा
मृकण्डसूनु - शौनकासुरारिसेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ४ ॥
अलक्ष - लक्ष - किन्नरामरासुरादि - पूजितं
सुलक्ष - नीर-तीर-धीरपक्षि-लक्षकूजितम् ।

वसिष्ठ-शिष्ट-पिप्पलादि-कर्दमादि-शर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ५ ॥
सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यपादिषट्पदै-
र्धृतं स्वकीय-मानसेषु नारदादिषट्पदैः ।
रवीन्दु-रन्तिदेव-देवराजकर्मशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ६ ॥
अलक्ष-लक्ष-लक्षपाप-लक्षसार-सायुधं
ततस्तु जीवजन्तुतन्तु-भुक्ति-मुक्तिदायम् ।
विरञ्चि - विष्णु - शङ्कर - स्वकीयधाम-वर्मदे
त्वदीय-पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ७ ॥
अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेश-केशजातटे
किरातसूत-वाडवेषु पण्डिते शठे नटे ।
दुरन्तपापतापहारि-सर्वजन्तुशर्मदे
त्वदीयपापङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ८ ॥
इदं तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा ।
सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधामगौरवं
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं नर्मदाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७४॥

१७५. नर्मदाष्टकम् [२]

श्रीनर्मदे सकल-दुःखहरे पवित्रे
ईशान-नन्दिनि कृपाकरि देवि धन्ये ।
रेवे गिरीन्द्र-तनयातनये वदान्ये
धर्मानुराग-रसिके सततं नमस्ते ॥ १ ॥
विन्ध्याद्रिमेकलसुते विदितप्रभावे
शान्ते प्रशान्तजन-सेवितपापद्मे ।

सदावगाहनावतीर्ण-भर्तृभृत्यनारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ७ ॥
सदैव नन्दिनन्दकेलिशालिकुञ्ज-मञ्जुला
तटोत्थफुल्लमल्लिका-कदम्बरेणुसूज्ज्वला ।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ८ ॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७३॥

●

१७४. नर्मदाष्टकम [१]

सबिन्दु-सिन्धु-सुस्खलत्तरङ्ग-भृङ्गरञ्जितं
द्विषत्सु पाप-जातजातकारि-वारिसंयुतम् ।
कृतान्तदूत - कालभूत - भीतिहारिवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ १ ॥
त्वदम्बुलीन-दीन मीन - दिव्य - सम्प्रदायकं
कलौ मलौघभारहारि सर्वतीर्थनायकम् ।
सुमच्छ - कच्छ-नक्र - चक्रवाकशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ २ ॥
महागभीर - नीरपूर - पापधूत - भूतलं
ध्वनत्समस्त-पातकारि-दारितापदाचलम् ।
जगल्लये महाभये मृकण्डसूनु - हर्म्यदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ३ ॥
गतं सदैव मे भवं त्वदम्बु वीक्षितं यदा
मृकण्डसूनु - शौनकासुरारिसेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ४ ॥
अलक्ष - लक्ष - किन्नरामरासुरादि - पूजितं
सुलक्ष - नीर-तीर-धीरपक्षि-लक्षकूजितम् ।

वसिष्ठ-शिष्ट-पिप्पलादि-कर्दमादि-शर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ५ ॥
सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यपादिषट्पदै-
र्धृतं स्वकीय-मानसेषु नारदादिषट्पदैः ।
रवीन्दु-रन्तिदेव-देवराजकर्मशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ६ ॥
अलक्ष-लक्ष-लक्षपाप-लक्षसार-सायुधं
ततस्तु जीवजन्तुतन्तु-भुक्ति-मुक्तिदायम् ।
विरञ्चि - विष्णु - शङ्कर - स्वकीयधाम-वर्मदे
त्वदीय-पादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ७ ॥
अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेश-केशजातटे
किरातसूत-वाडवेषु पण्डिते शठे नटे ।
दुरन्तपापतापहारि-सर्वजन्तुशर्मदे
त्वदीयपापङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ८ ॥
इदं तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा ।
सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधामगौरवं
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं नर्मदाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७४॥

•

१७५. नर्मदाष्टकम् [२]

श्रीनर्मदे सकल-दुःखहरे पवित्रे
ईशान-नन्दिनि कृपाकरि देवि धन्ये ।
रेवे गिरीन्द्र-तनयातनये वदान्ये
धर्मानुराग-रसिके सततं नमस्ते ॥ १ ॥
विन्ध्याद्रिमेकलसुते विदितप्रभावे
शान्ते प्रशान्तजन-सेवितपापद्मे ।

भक्तार्तिहारिणि मनोहर-दिव्यधारे
सोमोद्भवे मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥ २ ॥
आमेकलादपर-सिन्धु-तरङ्गमाला
यावद् बृहद् - विमल - वारि-विशालधारा।
सर्वत्र धार्मिकजनाऽऽप्लुत-तीर्थदेशा
श्रीनर्मदा दिशतु मे निजभक्तिमीशा ॥ ३ ॥
सर्वाः शिला यदनुषङ्गमवाप्य लोला
विश्वेशरूपमधिगम्य चमत्कृताङ्गाः ।
पूज्या भवन्ति जगतां स-सुराऽसुराणां
तस्यै नमोऽस्तु सततं गिरिशाङ्गजायै ॥ ४ ॥
यस्यास्तटीमुभयतः कृतसन्निवेशा
देशाः समीर-जलबिन्दु-कृताभिषेकाः ।
सोत्कण्ठ-देवगण-वर्णित-पुण्यमालाः
श्रीभारतस्य गुणगौरवमुद्गृणन्ति ॥ ५ ॥
स्वास्थ्याय सर्वविधये धन-धान्य-सिध्यै
वृद्धिप्रभावनिधये जनजागरायै ।
विद्यावबोध-विभवाय महेश्वरायै
भूयो नमोऽस्तु वरमञ्जुल-मङ्गलायै ॥ ६ ॥
कल्याण-मङ्गल-समुज्ज्वल-मञ्जुलायै
पीयूषसार-सरसीरुह-राजहंस्यै ।
मन्दाकिनी-कनक-नीरज-पूजितायै
स्तोत्रार्चनान्यमर-कण्टक-कन्यकायै ॥ ७ ॥
श्यामां मुग्धसुधा-मयूरवदनां रत्नोज्ज्वलालङ्कृतिं
रामां फुल्ल-सहस्रपत्रनयनां हासोल्लसन्तीं शिवाम् ।
वामां बाहुविशाल-वल्लिवलया-लोलाङ्गुलीपल्लवां
लालित्योल्लसितालकावलिकलां श्रीनर्मदां भावये ॥८॥
श्रीनर्मदाङ्घ्रि-सरसीरुह-राजहंसी
स्तोत्राष्टकावलिरियं कलगीतवंशी ।

संवाद्यतेऽनुदिनमेकसमां भजद्भि-
यैस्ते भवन्ति जगदम्बिकयाऽनुकम्प्याः ॥ ९ ॥
काशीपीठाधिनाथेन शङ्कराचार्यभिक्षुणा।
कृता महेश्वरानन्द-स्वामिनाऽऽस्तां सतां मुदे ॥१०॥

इति काशीपीठाधीश्वर-जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामि-श्रीमहेश्वरानन्द-सरस्वती-विरचितं नर्मदाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७५॥

●

१७६. पुष्कराष्टकम्

श्रिया युतं त्रिदेहताप - पापराशि - नाशकं
मुनीन्द्र - सिद्धसाध्यदेव-दानवैरभिष्टुतम् ।
तटेऽस्ति यज्ञपर्वतस्य मुक्तिदं सुखाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ १ ॥
सदार्यमास - शुष्कपश्चवासरे वरागतं
तदन्यथाऽन्तरिक्षगं सुतन्त्रभावनानुगम् ।
तदम्बुपानमज्जनं दृशां सदामृताकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ २ ॥
त्रिपुष्कर त्रिपुष्कर त्रिपुष्करेति संस्मरेत्
स दूरदेशगोऽपि यस्तदङ्गपापनाशनम् ।
प्रपन्न - दुःख - भञ्जनं सुरञ्जनं सुखाकरे
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ ३ ॥
मृकण्डमङ्कणौ पुलस्त्य - कण्वपर्वतासिता
अगस्त्य-भार्गवौ दधीचि-नारदौ शुकादयः ।
सपद्मतीर्थपावनैक - दृष्टयो दयाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ ४ ॥
सदा पितामहेक्षितं वराहविष्णुनेक्षितं
तथाऽमरेश्वरेक्षितं सुराऽसुरैः समीक्षितम् ।

इहैव भुक्ति - मुक्तिदं प्रजाकरं धनाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ ५ ॥
त्रिदण्डिदण्डि - ब्रह्मचारितापसैः सुसेवितं
पुरार्धचन्द्र - प्राप्तदेव - नन्दिकेश्वराभिधैः ।
सवैद्यनाथ - नीलकण्ठसेवितं सुधाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ ६ ॥
सुपञ्चधा सरस्वती विराजते यदन्तरे
तथैकयोजनायतं विभाति तीर्थनायकम् ।
अनेकदैव - पैत्रतीर्थसागरं रसाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ ७ ॥
यमादिसंयुतो नरस्त्रिपुष्करं निमज्जति
पितामहश्च माधवोऽप्युमाधवः प्रसन्नताम् ।
प्रयाति तत्पदं ददात्ययत्नतो गुणाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥ ८ ॥
इदं हि पुष्कराष्टकं सुनीतिनीरजाश्रितं
स्थितं मदीयमानसे कदाऽपि माऽपगच्छतु ।
त्रिसन्ध्यमापठन्ति ये त्रिपुष्कराष्टकं नराः
प्रदीप्तदेहभूषणा भवन्ति मेशकिङ्कराः ॥ ९ ॥

इति श्रीपुष्कराष्टकं समाप्तम् ॥१७६॥

●

१७७. प्रयागराजाष्टकम्

मुनय ऊचुः

सुरमुनिदितिजेन्द्रैः सेव्यते योऽस्ततन्द्रै-
गुरुतरदुरितानां का कथा मानवानाम् ।
स भुवि सुकृतकर्तुर्वाञ्छिताऽवाप्तिहेतु-
र्जयति विजितयागस्तीर्थराज प्रयागः ॥ १ ॥
श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम् ।
यत्राऽस्ति गङ्गा यमुना प्रमाणं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ २ ॥

न यत्र योगाचरणप्रतीक्षा न यत्र यज्ञेष्टिविशिष्टदीक्षा।
न तारकज्ञानगुरोरपेक्षा स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ ३॥
चिरं निवासं न समीक्षते यो ह्युदारचित्तः प्रददाति च क्रमात्।
यः कल्पितार्थांश्च ददाति पुंसः स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ ४॥
यत्राऽऽप्लुतानां न यमो नियन्ता यत्र स्थितानां सुगतिप्रदाता।
यत्राश्रितानाममृतप्रदाता स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ ५॥
पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः प्रतिवचनकरीस्तीर्थराजस्य नार्यो
नैकट्यान्मुक्तिदाने प्रभवति सुगुणा काश्यते ब्रह्म यस्याम्।
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदानेन युक्ता
येन ब्रह्माण्डमध्ये स जयति सुतरां तीर्थराजः प्रयागः॥ ६॥
तीर्थावली यस्य तु कण्ठभागे दानावली वल्गति पादमूले।
व्रतावली दक्षिणपादमूले स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ ७॥
आज्ञापि यज्ञाः प्रभवोऽपि यज्ञाः सप्तर्षिसिद्धाः सुकृतानभिज्ञाः।
विज्ञापयन्तः सततं हि काले स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ ८॥
सिताऽसिते यत्र तरङ्गचामरे नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके।
लीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ ९॥
तीर्थराज-प्रयागस्य माहात्म्यं कथयिष्यति।
शृण्वतः सततं भक्त्या वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥१०॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागराजाष्टकं समाप्तम्॥१७७।

१७८. श्रीसिद्धसरयूस्तोत्राष्टकम्

श्रीरामनाम - महिमानमुदीरयन्ती
तद्धाम-साम-गुण-गौरवमुद्गीरन्ती।
आपूर-पूर-परिपूत-गभीरघोषा
दोषाटवी-विघटनं सरयूस्तनोतु॥ १॥
श्रीभारतीय-विजय-ध्वज-शैलराज-
प्रोड्डीयमान-कलकेतन-कीर्तिवल्ली।
श्रीमानसोत्तरसरः-प्रभवाद्यशक्ति-
मूर्त्ता नदीशतनुता सरयूर्विभाति॥ २॥

साकेत-गौरवगिरः परिबृंहयन्ती
श्रीराघवेन्द्रमभितःकिल दर्शयन्ती ।
गङ्गां भृगुप्रवरतीर्थमनुस्रवन्ती
धन्या पुनातु सरयूर्गिरिराजकन्या ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकुमुख्य-रविवंश-समर्चितांघ्रि-
र्दिव्यावदात-जलराशि-लसत्प्रवाहा ।
पापौघ - काननघटा - दहनप्रभावा
दारिद्र्य-दुःख-दमनी सरयूर्धिनोतु ॥ ४ ॥

त्रैलोक्यपुण्यमिव विद्रुतमेकनिष्ठं
निस्तन्द्र-चन्द्रकिरणामृत-लोभनीयम् ।
सर्वार्थदं सकल-मङ्गल-दानदक्षं
वन्दे प्रवाहमतुलं ललितं सरय्वाः ॥ ५ ॥

नित्यं समस्त-जन-तापहरं पवित्रं
देवासुरार्चितमुदग्र - समग्रधारम् ।
हारं हरेर्हरिण-रेणुविलासकूलं
श्रीसारवं सलिलमुद्धमुपघ्नमीडे ॥ ६ ॥

वन्याः सरिद्-द्रुमलता-गज-वाजि-सिंहा
हंसाः शुका हरिण-मर्कट-कोल-कीटाः ।
मत्स्या भुजङ्ग-कमठा अपि संश्रितास्त्वां
पूज्या भवन्ति जगतां महिता महार्हाः ॥७॥

एकादशीमथ महानवमीं भजन्तो
दिव्यावगाहनरता समुपेत्य धीराः
श्रीजानकीशचरणाम्बुज - दत्तचित्ता-
नावर्तयन्ति भवमत्र जले सरय्वाः ॥ ८ ॥

पुण्यैर्धन्यैर्वसिष्ठादिभिरथ मुनिभिः सेवितां दिव्यदेहां
गौराङ्गीं स्वर्णरत्नोज्ज्वल-पटल-लसद्-भूषणाख्यां दयार्द्राम् ।
श्रीनागेशाभिमुख्यां सुरवरझरिणीं सर्वसिद्धिप्रदात्रीं
तोष्टये ब्रह्मरूप-प्रकटित-सरयूं कोटिसूर्य-प्रकाशाम् ॥ ९ ॥

देव्याः सरय्वाः स्तवनं सर्वमङ्गल-मङ्गलम् ।
श्रीरामेश्वरयोः सद्यो वशीकरणमुत्तमम् ॥१०॥
काशीपीठाधिनाथेन शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
महेश्वरेण रचितः स्तवोऽयं सत्सु राजताम् ॥११॥

इति काशीपीठाधीश्वर-जगद्गुरु शङ्कराचार्य-स्वामि-श्रीमहेश्वरानन्द-सरस्वतीविरचितं सिद्धसरयूस्तोत्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७८॥

१७९. त्रिवेणीस्तोत्रम्

मुक्तामयालंकृतमुद्रवेणी भक्ताभयत्राणसुबद्धवेणी ।
मत्तालिगुञ्जन्मकरन्दवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ १ ॥
लोकत्रयैश्वर्यनिदानवेणी तापत्रयोच्चाटनबद्धवेणी ।
धर्मा-ऽर्थ-कामाकलनैकवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ २ ॥
मुक्ताङ्गनामोहन-सिद्धवेणी भक्तान्तरानन्द-सुबोधवेणी ।
वृत्यन्तरोद्वेगविवेकवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ३ ॥
दुग्धोदधिस्फूर्जसुभद्रवेणी नीलाभ्रशोभाललिता च वेणी ।
स्वर्णप्रभाभासुरमध्यवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ४ ॥
विश्वेश्वरोत्तुङ्गकपर्दिवेणी विरिञ्चिविष्णुप्रणतैकवेणी ।
त्रयीपुराणा सुरसार्धवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ५ ॥
माङ्गल्यसम्पत्तिसमृद्धवेणी भात्रान्तरन्यस्तनिदानवेणी ।
परम्परापातकहारिवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ६ ॥
निमज्जदुन्मज्जमनुष्यवेणी त्रयोदयोभाग्यविवेकवेणी ।
विमुक्तजन्माविभवैकवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ७ ॥
सौन्दर्यवेणी सुरसार्धवेणी माधुर्यवेणी महनीयवेणी ।
रत्नैकवेणी रमणीयवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ८ ॥
सारस्वताकार-विघातवेणी कालिन्दकन्यामयलक्ष्यवेणी ।
भागीरथीरूप-महेशवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥ ९ ॥
श्रीमद्भवानीभवनैकवणी लक्ष्मीसरस्वत्यभिमानवेणी ।
माता त्रिवेणी त्रयीरत्नवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥१०॥

त्रिवेणीदशकं स्तोत्रं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः ।
तस्य वेणी प्रसन्ना स्याद् विष्णुलोकं स गच्छति ॥११॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं त्रिवेणीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१७९॥

१८०. मणिकर्णिकाष्टकम्

त्वत्तीरे मणिकर्णिके हरिहरौ सायुज्यमुक्तिप्रदौ
वादं तौ कुरुतः परस्परमुभौ जन्तोः प्रयाणोत्सवे ।
मद्रूपो मनुजोऽयमस्तु हरिणा प्रोक्तः शिवस्तत्क्षणात्
तन्मध्याद् भृगुलाञ्छनो गरुडगः पीताम्बरो निर्गतः ॥ १ ॥
इन्द्राद्यास्त्रिदशाः पतन्ति नियतं भोगक्षये ते पुन-
र्जायन्ते मनुजास्ततोऽपि पशवः कीटाः पतङ्गादयः ।
ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति निष्कल्मषाः
सायुज्येऽपि किरीटकौस्तुभधरा नारायणाः स्युर्नराः ॥ २ ॥
काशी धन्यतमा विमुक्तिनगरी साऽलंकृता गङ्गया
तत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत्किङ्करी ।
स्वर्लोकस्तुलितः सहैव विबुधैः काश्या समं ब्रह्मणा
काशी क्षोणितले स्थिता गुरुतरा स्वर्गो लघुः खे गतः ॥ ३ ॥
गङ्गातीरमनुत्तमं हि सकलं तत्राऽपि काश्युत्तमा
तस्यां सा मणिकर्णिकोत्तमतमा यत्रेश्वरो मुक्तिदः ।
देवानामपि दुर्लभं स्थलमिदं पापौघनाशक्षमं
पूर्वोपार्जित-पुण्यपुञ्जगमकं पुण्यैर्जनैः प्राप्यते ॥ ४ ॥
दुःखाम्भोनिधि-मग्नजन्तुनिवहास्तेषां कथं निष्कृति-
र्ज्ञात्वैतद्धि विरञ्चिना विरचिता वाराणसी शर्मदा ।
लोकाः स्वर्गमुखास्ततोऽपि लघवो भोगान्तपातप्रदाः
काशी मुक्तिपुरी सदा शिवकरी धर्मार्थकामोत्तरा ॥ ५ ॥
एको वेणुधरो धराधरधरः श्रीवत्सभूषाधरो
यो ह्येकः किल शङ्करो विषधरो गङ्गाधरो माधवः ।
ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति ते मानवा
रुद्रा वा हरयो भवन्ति बहवस्तेषां बहुत्वं कथम् ॥ ६ ॥

त्वत्तीरे मरणं तु मङ्गलकरं देवैरपि श्लाघ्यते
शक्रस्तं मनुजं सहस्रनयनैर्द्रष्टुं सदा तत्परः ।
आयान्तं सविता सहस्रकिरणैः प्रत्युद्गतोऽभूत् सदा
पुण्योऽसौ वृषगोऽथवा गरुडगः किं मन्दिरं यास्यति ॥ ७ ॥
मध्याह्ने मणिकर्णिकास्नपनजं पुण्यं न वक्तुं क्षमः
स्वीयैरब्दशतैश्चतुर्मुखसुरो वेदार्थदीक्षागुरुः ।
योगाभ्यासबलेन चन्द्रशिखरस्तत्पुण्यपारं गत-
स्त्वत्तीरे प्रकरोति सुप्तपुरुषं नारायणं वा शिवम् ॥ ८ ॥
कृच्छ्रैः कोटिशतैः स्वपापनिधनं यच्चाऽश्वमेधैः फलं
तत्सर्वं मणिकर्णिकास्नपनजे पुण्ये प्रविष्टं भवेत् ।
स्नात्वा स्तोत्रमिदं नरः पठति चेत् संसारपाथोनिधिं
तीर्त्वा पल्वलवत् प्रयाति सदनं तेजोमयं ब्रह्मणः ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं मणिकर्णिकाष्टकं समाप्तम् ॥१८०॥

१८१. काशीपञ्चकम्

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च ।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा काशिकाऽयं निजबोधरूपा ॥ १ ॥
यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं चराऽचरं भाति मनोविलासम् ।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥ २ ॥
कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम् ।
साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥ ३ ॥
काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका ।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥ ४ ॥
काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरण-ध्यानयोगः प्रयागः ।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनः साक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत् किमस्ति ॥ ५ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं काशीपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥१८१॥

इति गङ्गादितीर्थस्तोत्राणि ।

अवतारस्तोत्राणि

१८२. केशवादिचतुर्विंशत्यवतारस्तोत्रम्

अधरं दक्षिणं हस्तमारभ्यैव प्रदक्षिणम् ।
मूर्तिभेदान् हरेर्वक्ष्ये भवबन्धविमुक्तये ॥
श्रीमत्पङ्कज-शङ्ख-चक्र-गदया सम्भूषिते केशवे
शङ्खाम्भोज-गदा-सुदर्शनधरे नारायणे सर्वदा ।
भक्तिर्मेऽस्तु गदा-ऽरि-शङ्ख-जलजैर्युक्ता दृढा माधवे
गोविन्दे वर-चक्र-धारिणि-गदाफुल्लाब्ज-शङ्खान्विते ॥ १ ॥
कौमोदक्यरिविन्द-शङ्खविदधच्चक्रं च विष्णुमुदा
चक्राङ्को मधुसूदनो दधदसौ शङ्खा-ऽब्ज - कौमोदकी ।
नित्यं पद्म-गदारि-शङ्खसहितश्चित्ते मम त्रिक्रमो
युक्तास्तिष्ठतु शङ्ख-चक्र-गदया पद्मी सदा वामनः ॥ २ ॥
वन्दे श्रीधरमब्ज-चक्र-गदया शङ्खेन चाऽलङ्कृतो
नित्यं पाहि गदारि-पङ्कजदरान् विभ्रदृषीकेश माम् ।
शङ्खा-ऽब्जारि-गदाधराद्य कुरु मे श्रीपद्मनाभाभयं
श्रीदामोदरमब्ज-शङ्ख-गदिनं सारिं प्रपन्नोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥
कौमोदक्युरु-शङ्ख-पद्मसदरिः सङ्कर्षणः शर्मदो
भूयात् सोऽन्य-गदाधरारिकमलः श्रीवासुदेवोऽस्तु मे ।
प्रद्युम्नश्च रथाङ्गकं जगदया युक्तोऽब्जपाणिर्मुदे
चक्री चारुगदी सशङ्खकमलो देवोऽनिरुद्धस्तु मे ॥ ४ ॥
देवेशः पुरुषोत्तमोऽरिकमलः शङ्खो गदी चिद्वपु-
र्बिभ्रत्-पद्म-गदोरु-शङ्खमरिणा साकं सदाऽधोक्षजः ।
चक्रा-म्भोज-गदादराङ्कित-चतुर्बाहुः सुखं नृहरि-
र्दद्यादद्य ममाऽच्युतः पृथुगदा-पद्मारिशङ्खी परम् ॥ ५ ॥
साऽब्जारिः स जनार्दनोऽस्तु सदयः शङ्खी गदी मे सदा
मूर्ध्नोपेन्द्रमहं नतोऽस्मि सदरं युक्तं गदार्यम्बुजैः ।

वन्दे शङ्ख-सुदर्शनाम्बुज-गदापाणिं हरिं मुक्तये
कृष्णं शङ्ख-गदा-ऽब्ज-चक्रिणमलं भक्त्या समभ्यर्चये ॥ ६ ॥
वादिराज - यति - प्रोक्त - केशवादि - स्तुतिं नरः ।
पठेत् सर्वेष्टमाप्नोति सर्वानिष्ट-निवृत्तिमान् ॥ ७ ॥

इति श्रीवादिराजकृत-केशवादिचतुर्विंशत्यवतारस्तोत्रम् ॥१८२॥

१८३. मत्स्यस्तोत्रम्

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ १ ॥
नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २ ॥
सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ ३ ॥
न तेऽरविन्दाक्ष-पदोपसर्पणं मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं मत्स्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८३॥

१८४. कूर्मस्तोत्रम्

देवा ऊचुः

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु-संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥ १ ॥
धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥ २ ॥
मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दः सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोद-सरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ३ ॥
यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधार्य ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४ ॥
विश्वस्य जन्म-स्थिति-संयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाऽहमित्यूढ-दुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवान् पदाब्जम् ॥ ६ ॥
तान् वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यास-विलास-लक्ष्म्या ॥ ७ ॥
पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम्॥ ८ ॥
तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषा विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्नतु सेवया ते ॥ ९ ॥
तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।
सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥१०॥
यावद् बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चाऽन्नमदाय यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥११॥
त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
त्वं देवशक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥१२॥
ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देवक्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं कूर्मस्तोत्रं समाप्तम् ॥१८४॥

१८५. वराहस्तोत्रम्

ऋषय ऊचुः

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं त्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ १ ॥
रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वंघ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ २ ॥
स्रुक् तुण्ड आसीत् स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्ण-रन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसते ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३ ॥
दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वां प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ४ ॥

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ५ ॥
नमो नमस्तेऽखिलयज्ञदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयाऽनुभावित-ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ६ ॥
दंष्ट्राग्रकोटच्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ७ ॥
त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डले नाथ दत्ता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ८ ॥
संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः॥ ९ ॥
कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम्॥१०॥
विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो जनाः ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विसृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥११॥
स वै बत भ्रष्टमतिस्तवेष ते यः कर्मणा पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥१२॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं वराहस्तोत्रं समाप्तम् ॥१८५॥

१८६. नृसिंहस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्ग-स्थिति-संयमान् गुणैः स्वलीलया सन्दधतेऽव्ययात्मने॥ १ ॥

श्रीरुद्र उवाच

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायतां नः स्वभागा
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।

कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते
मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद्विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४ ॥

पितर ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥५॥

सिद्धा ऊचुः

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ।
नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ६ ॥

विद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ७ ॥

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।
तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

मनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥ ९ ॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एव त्वया भिन्नवक्षाऽनुशेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥१०॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद् वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एव नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥११॥

चारणा ऊचुः

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदेष साधु हृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥१२॥

यक्षा ऊचुः

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंशः ॥१३॥

किंपुरुषा ऊचुः

वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥१४॥

वैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।
यस्तां व्यनैषीद् भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन् यथाऽऽमयः ॥१५॥

किन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥१६॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गते सप्तमस्कन्धेऽष्टमध्याये
नृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १८६ ॥

१८७. लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे भोगीन्द्रभोगमणिरञ्जितपुण्यमूर्ते ।
योगीश शाश्वतशरण्यभवाब्धिपोतलक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥१॥
ब्रम्हेन्द्र-रुद्र-मरुदर्क-किरीट-कोटि-सङ्घट्टिताङ्घ्रि-कमलामलकान्तिकान्त,
लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥२॥
संसारघोरगहने चरतो मुरारे मारोग्र - भीकर - मृगप्रवरार्दितस्य ।
आर्तस्य मत्सर-निदाघ-निपीडितस्यलक्ष्मीनृसिंहममदेहि करावलम्बम् ॥३॥

संसारकूप-मतिघोरमगाधमूलं सम्प्राप्य दुःखशत-सर्पसमाकुलस्य।
दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ।४।
संसार-सागरविशाल-करालकाल-नक्रग्रहग्रसन-निग्रह-विग्रहस्य ।
व्यग्रस्य रागदसनोर्मिनिपीडितस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहिकरावलम्बम् ।५।
संसारवृक्ष - भवबीजमनन्तकर्म - शाखाशतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम् ।
आरुह्य दुःखफलितं पततो दयालो लक्ष्मीनृसिंहमदेहिकरावलम्बम् ।६।
संसारसर्पघनवक्त्र - भयोग्रतीव्र - दंष्ट्राकरालविषदग्ध - विनष्टमूर्ते ।
नागारिवाहन-सुधाब्धिनिवास-शौरे लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ।७।
संसारदावदहनातुर - भीकरोरु - ज्वालावलीभिरतिदग्धतनूरुहस्य ।
त्वत्पादपद्म-सरसीशरणागतस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ।८।
संसारजालपतितस्य जगन्निवास सर्वेन्द्रियार्थ - बडिशार्थझषोपमस्य ।
प्रोत्खण्डित-प्रचुरतालुक-मस्तकस्य लक्ष्मीनृसिंह मम देहिकरावलम्बम् ।९।
सारभी-करकरीन्द्र कलाभिघात-निष्पिष्टमर्मवपुषः सकलार्तिनाश ।
प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्यलक्ष्मीनृसिंहमम देहि करावलम्बम् ।१०।
अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ।११।
लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष ।
ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ।१२।
यन्माययोर्जितवपुःप्रचुरप्रवाहमग्नार्थमत्र निबहोरुकरावलम्बम् ।
लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रतेत स्तोत्रं कृतं सुखकरं भुवि शङ्करेण ।१३।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १८७ ॥

१८८. वामनस्तोत्रम्

अदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाऽद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ।१।
विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ।२।

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्यौभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति दुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः३

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं वामनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८८।

१८९. दशावतारस्तोत्रम्

नमोऽस्तु नारायण-मन्दिराय नमोऽस्तु हारायणकन्धराय।
नमोऽस्तु पारायण-चर्चिताय नमोऽस्तु नारायण तेऽर्चिताय ॥ १ ॥
नमोऽस्तु मत्स्याय लयाब्धिगाय नमोऽस्तु कूर्माय पयोऽब्धिगाय।
नमो वराहाय धराधराय नमो नृसिंहाय परात्पराय ॥ २ ॥
नमोऽस्तु शुक्राश्रयवामनाय नमोऽस्तु विप्रोत्सवभार्गवाय।
नमोऽस्तु सीताहितराघवाय नमोऽस्तु पार्थस्तुतयादवाय ॥ ३ ॥
नमोऽस्तु बुद्धाय विमोहकाय नमोऽस्तु ते कल्किपदोदिताय।
नमोऽस्तु पूर्णामितसद्‌गुणाय समस्तनाथाय हयाननाय ॥ ४ ॥
करस्थ - शङ्खोल्लसदक्षमाला प्रबोधमुद्राभयपुस्तकाय।
नमोऽस्तु वक्त्रोद्‌गिरदागमाय निरस्तहेयाय हयाननाय ॥ ५ ॥
रमासमाकारचतुष्टयेन क्रमाच्चतुर्दिक्षु निषेविताय।
नमोऽस्तु पार्श्वद्वयगद्विरूप - श्रियाभिषिक्ताय हयाननाय ॥ ६ ॥
किरीट - पट्टाङ्गद-हार-काञ्ची-सुरत्न - पीताम्बर - नूपुराद्यैः।
विराजिताङ्गाय नमोऽस्तु तुभ्यं सुरैः परीताय हयाननाय ॥ ७ ॥
विदोषि - कोटीन्दुनिभ - प्रभाय विशेषतो मध्वमुनिप्रियाय।
विमुक्तवन्द्याय नमोऽस्तु विष्वग् विधूतविघ्नाय हयाननाय ॥ ८ ॥
नमोऽस्तु शिष्टेष्टद - बादिराजकृताष्टकाभिष्टुतचेष्टिताय।
दशावतारैस्त्रिदशार्थदाय निशेशबिम्बस्थहयाननाय ॥ ९ ॥

इति दशावतारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८९॥

१९०. परशुरामाष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

ऋषिरुवाच

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम्।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १ ॥

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ।
तस्य नामानि पुण्यानि वच्मि ते पुरुषर्षभ ॥ २ ॥
भू-भार-हरणार्थाय माया-मानुष-विग्रहः ।
जनार्दनांशसम्भूतः स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वरः ॥ ३ ॥
भार्गवो जामदग्न्यश्च पित्राज्ञापरिपालकः ।
मातृप्राणप्रदो धीमान् क्षत्रियान्तकरः प्रभु ॥ ४ ॥
रामः परशुहस्तश्च कार्तवीर्यमदापह ।
रेणुकादुःखशोकघ्नो विशोकः शोकनाशनः ॥ ५ ॥
नवीन-नीरद-श्यामो रक्तोत्पलविलोचनः ।
घोरो दण्डधरो धीरो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः ॥ ६ ॥
तपोधनो महेन्द्रादौ न्यस्तदण्डः प्रणान्तधीः ।
उपगीयमानचरित-सिद्ध-गन्धर्व-चारणैः ॥ ७ ॥
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-दुःख-शोक-भयातिगः ।
इत्यष्टाविंशतिर्नाम्नामुक्ता स्तोत्रात्मिका शुभा ॥ ८ ॥
अनया प्रीयतां देवो जामदग्न्यो महेश्वरः ।
नेदं स्तोत्रमशान्ताय नादान्तायातपस्विने ॥ ९ ॥
नावेदविदुषे वाच्यमशिष्याय खलाय च ।
नासूयकायानृजवे न चाऽनिर्दिष्टकारिणे ॥१०॥
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय च ।
रहस्यधर्मं वक्तव्यं नाऽन्यस्मै तु कदाचन ॥११॥

इति परशुरामाष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९०॥

●

रामस्तोत्राणि

१९१. रामरक्षास्तोत्रम् [१]

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य बुधकौशिक ऋषिः, श्रीसीतारामचन्द्रो देवता, अनुष्टुप्-छन्दः, सीता-शक्तिः, श्रीमद्धनुमान् कीलकम् श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थे रामरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदल-स्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्कारूढसीता-मुखकमलमिलल्-लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् ।
जानकीं लक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥ २ ॥
सासितूण-धनुर्बाणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम् ।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ३ ॥
राम-रक्षां पठेत् प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ॥ ४ ॥
कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥ ५ ॥
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥ ६ ॥
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ॥ ७ ॥
सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ॥ ८ ॥
जानुनी सेतुकृत् पातु जङ्घे दशमुखान्तकः ।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ॥ ९ ॥
एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥१०॥
पाताल - भूतल - व्योमचारिणश्छद्मचारिणः ।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥११॥

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥१२॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाऽभिरक्षितम्।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१३॥
वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१४॥
आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः।
तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥१५॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥१६॥
तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीक-विशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१७॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ ॥१८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥१९॥
आत्तसज्जधनुषाविषुविस्पृशा-वक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥२०॥
सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा।
गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः ॥२२॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः।
अश्वमेधायुतं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥२४॥
रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥२५॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥२६॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥२७॥
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ।२८।
श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ।२९
माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नाऽन्यं जाने नैव जाने न जाने ॥३०॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा ।
पुरतो, मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३१॥
लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥३२॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३३॥
कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥३४॥
आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥३५॥
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम् ॥३६॥
रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाऽभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम ! मामुद्धर ॥३७॥

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥३८॥
इति श्रीबुधकौशिकविरचितं रामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९१॥

१९२. रामरक्षास्तोत्रम्

ॐ रामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहर्षिविश्वामित्र - ऋषिः, श्रीरामचन्द्रो देवता, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीविष्णुप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्।
धात्वा वै पुण्डरीकाक्षं श्रीरामं विष्णुमव्ययम् ॥ १ ॥
पातु वो हृदयं रामः श्रीकण्ठः कण्ठमेव च।
नाभिं पातु मखत्राता कटिं मे विश्वरक्षकः ॥ २ ॥
करौ पातु दाशरथिः पादौ मे विश्वरूपधृक्।
चक्षुषी पातु वै देवः सीतापतिरनुत्तमः ॥ ३ ॥
शिखां मे पातु विश्वात्मा कर्णौ मे पातु कामदः।
पार्श्वयोस्तु सुरत्राता कालकोटिदुरासदः ॥ ४ ॥
अनन्तः सर्वदा पातु शरीरं विश्वनायकः।
जिह्वां मे पातु पापघ्नो लोकशिक्षाप्रवर्त्तकः ॥ ५ ॥
राघवः पातु मे दन्तान् केशान् रक्षतु केशवः।
सक्थिनी पातु मे दत्तविजयो नाम विश्वसृक् ॥ ६ ॥
एतां रामबलोपेतां रक्षां यो वै पुमान् पठेत्।
स चिरायुः सुखी विद्वान् लभते दिव्यसम्पदम् ॥ ७ ॥
रक्षां करोति भूतेभ्यः सदा रक्षतु वैष्णवी।
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति यः स्मरेत् ॥ ८ ॥
विमुक्तः स नरः पापान् मुक्तिं प्राप्नोति शाश्वतीम्।
वसिष्ठेन इदं प्रोक्तं गुरवे विष्णुरूपिणे ॥ ९ ॥
ततो मे ब्रह्मणः प्राप्तं मयोक्तं नारदं प्रति।
नारदेन तु भूर्लोके प्रापितं सुजनेष्विह ॥१०॥
सुप्त्वा वाऽथ गृहे वाऽपि मार्गे गच्छति एव वा।
ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पुण्यभागिनः ॥११॥
इति श्रीपद्मपुराणोक्तं रामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९२॥

१९३. रामस्तोत्रम् [१]

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्-स्थिति-संयमादिहेतुम् ।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥ १ ॥
निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपित-सुरेन्द्र-चतुर्मुखादिदुःखम् ।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वर-चाप-बाणहस्तम् ॥ २ ॥
त्रिभुवन-कमनीय-रूपमीड्यं रविशतभासुरमीहित-प्रदानम् ।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥ ३ ॥
भवविपिन-दवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम् ।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥ ४ ॥
अविरत-भवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणांघ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥ ५ ॥
गिरिश-गिरिसुता-मनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
सुरवरदनुजेन्द्रसेवितांघ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥ ६ ॥
परधन-परदार-वर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥ ७ ॥
स्मितरुचिर-विकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम् ।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ॥ ८ ॥
हरिकमलजशम्भुरूप-भेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपति-स्तुतिपात्रमीशमीडे ॥ ९ ॥
रतिपति-शतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥१०॥
इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः ।
उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ॥११॥
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद् वा नियतः पठेत् ।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥ १२ ॥

इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥१३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणेऽरण्यकाण्डेऽष्टमे सर्गे जटायुकृतं रामस्तोत्रम् ।

१९४. रामस्तोत्रम् [२]

श्रीमहादेव उवाच

नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पल-श्यामल-कोमलाय ।
किरीटहाराङ्गदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय ॥ १ ॥
त्वमादि-मध्यान्तविहीन एकः सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम् ।
स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं यत्स्वे सुखेऽजस्ररतोऽनवद्यः ॥ २ ॥
लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वं प्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ।
नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम् ॥ ३ ॥
स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तं विभर्षि च त्वं त्वदधः फणीश्वर ।
उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधि-प्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत् ॥ ४ ॥
त्वमिह देहभृतां शिखिरूपः पचसि भुक्तमशेषमजस्रम् ।
पवनपञ्चकरूपसहायो जगदखण्डमनेन बिभर्षि ॥ ५ ॥
चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतं यत्तेज ईश चिदशेषतनूनाम् ।
प्राभवत्तनुभृतामिह धैर्यं शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम् ॥ ६ ॥
त्वं विरिञ्चि-शिव-विष्णुविभेदात् कालकर्मशशि-सूर्यविभागात् ।
वादिनां पृथगिवेश विभासि ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम् ॥ ७ ॥
मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकः श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः ।
तथैव सर्वं सदसद्विभागस्त्वमेव नाऽन्यद् भवतो विभाति ॥ ८ ॥
यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टावुत्पत्स्यते यद्यभवच्च यच्च ।
न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ त्वया विनाऽतः परतः परस्त्वम् ॥ ९ ॥
तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव माययातः ।
त्वद्भक्तसेवामलमानसानां विभाति तत्त्वं परमेकमेशम् ॥१०॥
ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावः ।
ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्य दुःखः ॥११॥

अहं भवन्नामगृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥१२॥
इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै।
ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात् ॥१३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे पञ्चदशसर्गे श्रीमहादेवकृतं
रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९४॥

१९५. रामस्तोत्रम् [३]

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं भवारण्यदावानलाभाभिधानम्।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥ १ ॥
सुरानीक-दुःखौघ-नाशैकहेतुं नराकारदेहं निराकारमीड्यम्।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥ २ ॥
प्रपन्नाऽखिलानन्ददोहं प्रपन्नं प्रपन्नार्ति-निःशेष-नाशाभिधानम्।
तपोयोग-योगीश-भावानुभाव्यं कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥ ३ ॥
सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये ॥ ४ ॥
महायोगमाया-विशेषानुयुक्तो विभासीश लीलानराकारवृत्तिः।
त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके ॥ ५ ॥
अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः।
इदानीं भवत्पाद-पद्मप्रसादात् त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥ ६ ॥
स्फुरद्रत्न-केयूर - हाराभिरामं धराभारभूतासुरानीकदावम्।
शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥ ७ ॥
सुराधीश-नीलाभ्र-नीलाङ्गकान्तिं विराधादि-रक्षोवधाल्लोकशान्तिम्।
किरीटादिशोभं पुरारातिलोभं भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥ ८ ॥
लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे समासीनमङ्के समाधाय सीताम्।
स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोदशसर्गे इन्द्रकृतं
रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९५॥

१९६. रामस्तुतिः

ब्रह्मोवाच

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
हेयाऽहेय-द्वन्द्वविहीनं परमेकं सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशि रूपम् ॥ १ ॥
प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥ २ ॥
मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥३॥
भावाभाव-प्रत्ययहीनं भवमुख्यैर्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥४॥
त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी योगाभ्यासैर्भावितचेतः सहचारी ।५।
त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥६॥
को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं मायासक्तो माधवशक्तो मुनिमान्यम् ।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥७॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥८॥
श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः ।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोदशसर्गे

ब्रह्मदेवकृता रामस्तुतिः समाप्ता ॥१९६॥

१९७. रामहृदयम्

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामः स्वयं प्राह हनुमन्तमुपस्थितम् ।
शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्म-परात्मनाम् ॥ १ ॥

आकाशस्य यया भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥ २ ॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥ ३ ॥
साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥ ४ ॥
आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ।
अविच्छिन्नं तु तद् ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पितः ॥ ५ ॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥ ६ ॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ।
तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥ ७ ॥
एतद् विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥ ८ ॥
इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात् कथितं तवानघ ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे रामहृदयं सम्पूर्णम् ॥१९७॥

१९८. रामाष्टकम् [१]

भजे विशेषसुन्दरं समस्तपापखण्डनम् ।
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव राममद्वयम् ॥ १ ॥
जटाकलापशोभितं समस्तपापनाशकम् ।
स्वभक्तभीतिभञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ॥ २ ॥
निजस्वरूपबोधकं कृपाकरं भवापहम् ।
समं शिवं निरञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ॥ ३ ॥
सप्रपञ्चकल्पितं ह्यनामरूपवास्तवम् ।
निराकृतिं निरामयं भजे ह राममद्वयम् ॥ ४ ॥

निष्प्रपञ्च - निर्विकल्प - निर्मलं निरामयम् ।
चिदेकरूपसन्ततं भजे ह राममद्वयम् ॥ ५ ॥
भवाब्धिपोतरूपकं ह्यशेषदेहकल्पितम् ।
गुणाकरं कृपाकरं भजे ह राममद्वयम् ॥ ६ ॥
महासुवाक्य - बोधकैर्विराजमान - वाक्पदैः ।
परब्रह्म व्यापकं भजे ह राममद्वयम् ॥ ७ ॥
शिवप्रदं सुखप्रदं भवच्छिदं भ्रमापहम् ।
विराजमानदैशिकं भजे ह राममद्वयम् ॥ ८ ॥
रामाष्टकं पठति यः सुकरं सुपुण्यं
व्यासेन भाषितमिदं शृणुते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्ति
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥ ९ ॥

इति व्यासविरचितं रामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१९८॥

१९९. रामाष्टकम् [२]

कृतार्तदेववन्दनं दिनेशवंशनन्दनम् ।
सुशोभिभालचन्दनं नमामि राममीश्वरम् ॥ १ ॥
मुनीन्द्र - यज्ञकारकं शिलाविपत्तिहारकम् ।
महाधनुर्विदारकं नमामि राममीश्वरम् ॥ २ ॥
स्वतातवाक्यकारिणं तपोवने विहारिणम् ।
करेषु चापधारिणं नमामि राममीश्वरम् ॥ ३ ॥
कुरङ्गमुक्तसायकं जटायुमोक्षदायकम् ।
प्रविद्धकीशनायकं नमामि राममीश्वरम् ॥ ४ ॥
प्लवङ्गसङ्गसम्मतिं निबद्धनिम्नगापतिम् ।
दशास्यवंशसंक्षतिं नमामि राममीश्वरम् ॥ ५ ॥
विदीनदेवहर्षणं कपीप्सितार्थवर्षणम् ।
स्वबन्धुशोककर्षणं नमामि राममीश्वरम् ॥ ६ ॥
गतारिराज्यरक्षणं प्रजाजनार्तिभक्षणम् ।
कृतास्तमोहलक्ष्मणं नमामि राममीश्वरम् ॥ ७ ॥

हृदाखिलाचलाभरं स्वधामनीतनागरम् ।
जगत्तमोदिवाकरं नमामि राममीश्वरम् ॥ ८ ॥
इदं समाहितात्मना नरो रघूत्तमाष्टकम् ।
पठेन्निरन्तरं भयं भवोद्भवं न विन्दते ॥ ९ ॥
इति श्रीब्रह्मानन्दविरचितं रामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१९९॥

२००. रामचन्द्राष्टकम्

चिदाकारो धाता परमसुखदः पावनतनु-
मुनीन्द्रैर्योगीन्द्रैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता ।
सदा सेव्यः पूर्णो जनकतनयाङ्गः सुरगुरू
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ १ ॥
मुकुन्दो गोविन्दो जनकतनयालालितपदः
पदं प्राप्ता यस्याधमकुलभवा चाऽपि शबरी ।
गिरातीतो गम्यो विमलधिषणैर्वेदवचसा
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ २ ॥
धराधीशोऽधीशः सुरनरवराणां रघुपतिः
किरीटी केयूरी कनककपिशः शोभितवपुः ।
समासीनः पीठे रविशतनिभे शान्तमनसो
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ३ ॥
वरेण्यः शारण्यः कपिपतिसखा चान्तविधुरो
ललाटे काश्मीरी रुचिरगतिभङ्गः शशिमुखः ।
नराकारो रामो यतिपतिनुतः संसृतिहरो
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ४ ॥
विरूपाक्षः काश्यामुपदिशति यन्नाम शिवदं
सहस्रं यन्नाम्नां पठति गिरिजा प्रत्युषसि वै ।
कलौ के गायन्तीश्वरविधिमुखा यस्य चरितं
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ५ ॥
परो धीरोऽधीरोऽसुरकुल - भवश्चाऽसुरहरः
परात्मा सर्वज्ञो नरसुरगणैर्गीतसुयशाः ।

अहल्याशापघ्नः शरकर अजः कौशिकसखा
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ६ ॥
हृषीकेशः शौरिर्धरणिधरशायी मधुरिपु-
रुपेन्द्रो वैकुण्ठी गजरिपुहरस्तुष्टमनसः ।
बलिध्वंसी वीरो दशरथसुतो नीतिनिपुणो
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ७ ॥
कविः सौमित्रीड्यः कपटमृगघाती वनचरो
रणश्लाघी दान्तो धरणिभरहर्ता सुरनुतः ।
अमानी मानज्ञो निखिलजनपूज्यो हृदिशयो
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ८ ॥
इदं रामस्तोत्रं वरममरदासेन रचित-
मुःषकाले भक्त्या हृदि पठति यो भावसहितम् ।
मनुष्यः सः क्षिप्रं जनिमृतिभयं तापजनकं
परित्यज्य श्रेष्ठं रघुपतिपदं याति शिवदम् ॥ ९ ॥
इति कविश्रीमदमरदासविरचित श्रीमद्रामचन्द्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥२००॥

२०१. रामचन्द्रस्तुतिः

नमामि भक्तवत्सलं कृपालुशीलकोमलं
भजामि ते पदाम्बुजमकामिनां स्वधामदम् ।
निकाम - श्याम - सुन्दरं भवाम्बुनाथमन्दरं
प्रफुल्लकञ्जलोचनं मदादिदोषमोचनम् ॥ १ ॥
प्रलम्बबाहुविक्रमं प्रभोऽप्रमेयवैभवं
निषङ्गचापसायकं धरं त्रिलोकनायकम् ।
दिनेशवंशमण्डनं महेशचापखण्डनं
मुनीन्द्रसन्तरञ्जनं सुरारिवृन्दभञ्जनम् ॥ २ ॥
मनोजवैरिवन्दित - मजादि - देवसेवितं
विशुद्धबोधविग्रहं समस्तदूषणापहम् ।
नमामि इन्दिरापतिं सुखाकरं सतां गतिं
भजे सशक्तिसानुजं शचीपतिप्रियानुजम् ॥ ३ ॥

त्वदङ्घ्रिमूल ये नरा भजन्ति हीनमत्सराः
पतन्ति नो भवार्णवे वितर्कवीचिसङ्कुले ।
विविक्तवासिनः सदा भजन्ति मुक्तये मुदा
निरस्य इन्द्रियादिकं प्रयान्ति ते गतिं स्वकाम् ॥ ४ ॥
त्वमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं
जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलम् ।
भजामि भाववल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं
स्वभक्तकल्पपादपं समस्तसेव्यमन्वहम् ॥ ५ ॥
अनूपरूपभूपतिं नतोऽहमुर्विजापतिं
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्जभक्ति देहि मे ।
पठन्ति ये स्तवमिदं नरादरेण ते पदं
व्रजन्ति नाऽत्र संशयस्त्वदीयभावसंयुतम् ॥ ६ ॥
इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृता रामचन्द्रस्तुतिः सम्पूर्णा ॥२०१॥

२०२. सीतारामाष्टकम्

ब्रह्म-महेन्द्र-सुरेन्द्र-मरुद्गण-रुद्र-मुनीन्द्रगणैरतिरम्यं
क्षीरसरित्पतितीरमुपेत्य नुतं हि सतामवितारमुदारम् ।
भूमिभरप्रशमार्थमथ प्रथित-प्रकटीकृत-चिद्घनमूर्तिं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ १ ॥
पद्मदलायतलोचन हे रघुवंशविभूषण देव दयालो
निर्मल-नीरद-नीलतनोऽखिल-लोकहृदम्बुज-भासकभानो ।
कोमलगात्र-पवित्रपदाब्ज-रजःकणपावित-गौतमकान्तं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ २ ॥
पूर्ण परात्पर पालय मामतिदीनमनाथ-मनन्तसुखाब्धे
प्रावृडदभ्र-तडित्सुमनोहर-पीतवराम्बर राम नमस्ते ।
कामविभञ्जन कान्ततरानन काञ्चनभूषण रत्नकिरीटं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ ३ ॥
दिव्यशरच्छशिकान्ति-हरोज्ज्वल-मौक्तिकमाल विशालसुमौले
कोटिरविप्रभ चारुचरित्रपवित्र-विचित्रधनुःशरपाणे ।

चण्डमहाभुज-दण्डविखण्डित-राक्षसराज-महागजदण्डं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ ४ ॥
दोषविहिंस्र-भुजङ्गसहस्र-सुरोषमहानल-कालकलापे
जन्म - जरा-मरणोर्मि-मनोमद-मन्मथ-नक्रविचक्र-भवाब्धौ ।
दुःखनिधौ च चिरं पतितं कृपयाऽद्य समुद्धर राम ततो मां
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ ५ ॥
संसृतिघोर-मदोत्कटकुञ्जर-तृट्-क्षुदनीरद-पिण्डिततुण्डं
दण्डकरोन्मथितं च रजस्तम उन्मदमोह-मदोज्झि-मार्तम् ।
दीनमनन्यगतिं कृपणं शरणागतमाशु विमोचय मूढं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ ६ ॥
जन्मशतार्जित-पापसमन्वित-हृत्कमले पतिते पशुकल्पे
हे रघुवीर महारणधीर दयां कुरु मय्यतिमन्दमनीषे ।
जननी भगिनी च पिता मम तावदसि त्ववितापि कृपालो
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ ७ ॥
त्वां तु दयालुमकिञ्चन-वत्सल-मुत्पलहारमपारमुदारं
राम विहाय कमन्यमनामयमीश जनं शरणं ननु यायाम् ।
त्वत्पदपद्मतः श्रितमेव मुदा खलु देव सदाऽव स-सीतं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥ ८ ॥
यः करुणामृत-सिन्धुरनाथ-जनोत्तमबन्धुरजोत्तमकारि-
भक्तभयोर्मिभवाब्धितरी-सरयूतटिनीतट-चारुविहारी ।
तस्य रघुप्रवरस्य निरन्तरमष्टकमेतदनिष्टहरं वै
यस्तु पठेदमरः स नरो लभतेऽच्युतरामपदाम्बुजदास्यम् ॥ ९ ॥
इत्यच्युतयतिविरचितं सीतारामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ २०२ ॥

२०३. रघुनाथाष्टकम्

शुनासीराधीशैरवनितल-ज्ञप्तीडित-गुणं
प्रकृत्याऽजं जातं तपनकुल-चण्डांशुमपरम् ।

सिते वृद्धिं ताराधिपतिमिव यन्तं निजगृहे
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ १ ॥
निहन्तारं शैवं धनुरिव इवेक्षुं नृपगणे
पथि ज्याकृष्टेन प्रबलभृगुवर्यस्य शमनम् ।
विहारं गार्हस्थ्यं तदनु भजमानं सुविमलं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ २ ॥
गुरोराज्ञां नीत्वा वनमनुगतं दारसहितं
ससौमित्रिं त्यक्त्वेप्सितमपि सुराणां नृपसुखम् ।
विरूपाद्राक्षस्याः प्रियविरहसन्तप्तमनसं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ ३ ॥
विराधं स्वर्नीत्वा तदनु च कबन्धं सुररिपुं
गतं पम्पातीरे पवनसम्मेलनसुखम् ।
गतं किष्किन्ध्यायां विदितगुण-सुग्रीवसचिवं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ ४ ॥
प्रियाप्रेक्षोत्कण्ठं जलनिधिगतं वानरयुतं
जले सेतुं बद्ध्वाऽसुरकुल-निहन्तारमनघम् ।
विशुद्धामर्धाङ्गीं हुतभुजि समीक्षन्तमचलं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ ५ ॥
विमानं चारुह्यानुज-जनकजा-सेवितपद-
मयोध्यायां गत्वा नृपपदमवाप्तारमजरम् ।
सुयज्ञैस्तृप्तारं निजमुखसुरान् शान्तमनसं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ ६ ॥
प्रजां संस्थातारं विहितनिजधर्मे श्रुतिपथं
सदाचारं वेदोदितमपि च कर्तारमखिलम् ।
नृषु प्रेमोद्रेकं निखिलमनुजानां हितकरं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ ७ ॥
तमः कीर्त्याशेषः श्रवणगदनाभ्यां द्विजमुखा-
स्तरिष्यन्ति ज्ञात्वा जगति खलु गन्तारमजवम् ।

अतस्त्वां संस्थाप्य स्वपुरमनुनेतारमखिलं
ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥ ८ ॥
रघुनाथाष्टकं हृद्यं रघुनाथेन निर्मितम् ।
पठता पापराशिघ्नं भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ॥ ९ ॥

इति रघुनाथाष्टकं समाप्तम् ॥ २०३ ॥

•

२०४. रा० प्रेमाष्टकम्

श्यामाम्बुदाभमरविन्द-विशालनेत्रं
बन्धूकपुष्पसदृशाधर-पाणिपादम् ।
सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम् ॥ १ ॥
पटुजलधरधीर-ध्वानमादाय चापं
पवनदमनमेकं बाणमाकृष्य तूणात् ।
अभयवचनदायी सानुजः सर्वतो मे
रणहतदनुजेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ २ ॥
दशरथकुलदीपोऽमेयबाहुप्रतापो
दशवदनसकोपः क्षालिताशेषपापः ।
कृतसुररिपुतापो नन्दितानेकभूपो
विगततिमिरपङ्को रामचन्द्रः सहायः ॥ ३ ॥
कुवलयदलनीलः कामितार्थप्रदो मे
कृतमुनिजनरक्षो रक्षसामेकहन्ता ।
अपहृतदुरितोऽसौ नाममात्रेण पुंसा-
मखिलसुरनृपेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ४ ॥
असुरकुलकृशानुर्मानसाम्भोजभानुः
सुरनरनिकराणामग्रणीर्मे रघूणाम् ।
अगणितगुणसीमा नीलमेघौघधामा
शमदमितमुनीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ५ ॥

कुशिकतनययागं रक्षिता लक्ष्मणाढ्यः
पवनशरनिकाय - क्षिप्तमारीचमायः ।
विदलितहरचापो मेदिनीनन्दनाया
नयनकुमुदचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ६ ॥
पवनतनयहस्त - न्यस्तपादाम्बुजात्मा
कलशभववचोभिः प्राप्तमाहेन्द्रधन्वा ।
अपरिमितशरौघैः पूर्णतूणीरधीरो
लघुनिहतकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ७ ॥
कनकविमलकान्त्या सीतयाऽऽलिङ्गिताङ्गो
मुनिमनुजवरेण्यः सर्ववागीशवन्द्यः ।
स्वजननिकरबन्धुर्लीलया बद्धसेतुः
सुरमनुजकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ८ ॥
यामुनाचार्यकृतं दिव्यं रामाष्टकमिदं शुभम् ।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा स श्रीरामान्तिकं व्रजेत् ॥९॥

इति यामुनाचार्यकृतं श्रीरामप्रेमाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ २०४ ॥

कृष्णस्तोत्राणि

२०५. गर्भस्तुतिः

देवा ऊचुः

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च ।
ज्योतिः स्वरूपो ह्यनिशः सगुणो निर्गुणो महान् ॥ १ ॥
भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः ।
निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः ॥ २ ॥
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः ।
स्वात्मारामः पूर्णकामोऽनिमिषो नित्य एव च ॥ ३ ॥
स्वेच्छामयः सर्वहेतुः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वदो दुःखदो दुर्गो दुर्गनान्तक एव च ॥ ४ ॥

सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः।
वेदहेतुश्च वेदश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ॥ ५ ॥
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुस्त मुहुर्मुहुः।
हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च ॥ ६ ॥
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ७ ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः।
बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरापुरी ॥ ८ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते देवकृता गर्भस्तुतिः सम्पूर्णा । २० ॥

●

२०६. कृष्णस्तोत्रम् [१]

बाला ऊचु

यथा संरक्षितं ब्रह्मन् सर्वापत्स्वेव नः कुलम्।
तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन ॥ १ ॥
त्वमिष्टदेवताऽस्माकं त्वमेव कुलदेवता।
स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते ॥ २ ॥
वह्निर्वा वरुणो वाऽपि चन्द्रो वा सूर्य एव च।
नमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवता ॥ ३ ॥
ब्रह्मेश-शेष-धर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः।
मानवाश्च तथा दैत्या यक्ष-राक्षस-किन्नराः ॥ ४ ॥
ये ये चराऽचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया ॥ ५ ॥
अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु।
वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥ ६ ॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम्।
दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः ॥ ७ ॥
दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदान्विताः।
सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः ॥ ८ ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि ॥ ९ ॥
शत्रुग्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसङ्कटे ।
स्तोत्रमेतत् पठित्वा तु मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥१०॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते बालकृतं कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ २०६ ॥

२०७. कृष्णस्तोत्रम् [२]

ब्रह्मोवाच

रक्ष रक्ष हरे मां च निमग्नं कामसागरे ।
दुष्कीर्तिजलपूर्णे च दुष्पारे बहुसङ्कटे ॥ १ ॥
भक्तिविस्मृतिबीजे च विपत्सोपानदुस्तरे ।
अतीव निर्मलज्ञानचक्षुः-प्रच्छन्नकारणे ॥ २ ॥
जन्मोर्मि-सङ्गसहिते योषिन्नक्रौघसङ्कुले ।
रतिस्रोतःसमायुक्ते गम्भीरे घोर एव च ॥ ३ ॥
प्रथमासृतरूपे च परिणामविषालये ।
यमालयप्रवेशाय मुक्तिद्वारातिविस्तृतौ ॥ ४ ॥
बुद्धया तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयम् ।
स्वयं च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन ॥ ५ ॥
मद्विधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि ।
सन्ति विश्वेश विधयो हे विश्वेश्वर माधव ॥ ६ ॥
न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः ।
तथाऽपि न स्पृहा कामे त्वद्भक्तिव्यवधायके ॥ ७ ॥
हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु ।
त्वं महेश महाज्ञाता दुःस्वप्नं मां न दर्शय ॥ ८ ॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम सनातनः ।
ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत् सस्मार मामिति ॥ ९ ॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
स चैवाकर्मविषये न निमग्नो भवेद् ध्रुवम् ॥१०॥

मम मायां विनिर्जित्य स ज्ञानं लभते ध्रुवम् ।
इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रवरो भवेत् ॥११॥

इति श्रीब्रह्मदेवकृतं कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ २०७ ॥

●

२०८. कृष्णस्तोत्रम् [३]

इन्द्र उवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् ।
गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तजम् ॥ १ ॥
भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम् ।
शुक्ल-रक्त-पीत - श्यामं युगानुक्रमणेन च ॥ २ ॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणाम् ।
त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥ ३ ॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा ।
कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ४ ॥
नवधाराधरोत्कृष्ट-श्यामसुन्दर - विग्रहम् ।
नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम् ॥ ५ ॥
गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम् ।
विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥ ६ ॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम् ।
कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं विभ्रतं शान्तमीश्वरम् ॥ ७ ॥
क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित् ।
कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ ८ ॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित् ।
राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद् वने ॥ ९ ॥
कुत्रचिद् राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम् ।
राधाचर्बितताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१०॥
पश्यन्तं कुत्रचिद् राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।
दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित् ॥११॥

कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं राममण्डलम् ।
राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित् ॥१२॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित् ।
राधां गृहीत्वा गच्छन्तं तां विहाय च कुत्रचित् ॥१३॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्त च कुत्रचित् ।
भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥१४॥
वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा ।
गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचित् बालकैः सह ॥१५॥
कालीय ्र्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित् ।
विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१६॥
गायन्तं रम्यसङ्गीतं कुत्रचिद् बालकैः सह ।
स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया ॥१७॥
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च ।
कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१८॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम् ।
दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥१९॥
तेन चाऽङ्गिरसे दत्तं गुरवेऽङ्गिरसां मुने ।
इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ॥२०॥
इह प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम् ।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोकेभ्यो मुच्यते नरः ॥२१॥
न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥२२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते इन्द्रकृतं कृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥२०८॥

२०९. कृष्णस्तोत्रम् [४]

मोहिन्युवाच

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशं च मानसम् ।
तदेव कर्मणां बीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
स्वयमात्मा हि भगवान् ज्ञानरूपो महेश्वरः ।
नमो ब्रह्मन् ! जगत्स्रष्टस्तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

सर्वाजित जगज्जेतर्जीवजीव मनोहर ।
रतिबीज रतिस्वामिन् रतिप्रिय नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
शश्वद्योषिदधिष्ठाने योषित्प्राणाधिकप्रिय ।
योषिद्वाहन योषास्त्र योषिद्वन्द्य नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
पतिसाध्यकराशेषरूपाधार गुणाश्रय ।
सुगन्धिवातसचिव मधुमित्र नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
शश्वद्योनिकृताधार स्त्रीसन्दर्शनवर्धन ।
विदग्धानां विरहिणां प्राणान्तक नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
अकृपा येषु तेऽनर्थं तेषां ज्ञानविनाशनम् ।
अनूहरूपभक्तेषु कृपासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
तपस्विनां च तपसां विघ्नबीजाय लीलया ।
मनः सकामं मुक्तानां कर्तुं शक्तं नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
तपःसाध्यस्तथाऽऽराध्यः सदैवं पाञ्चभौतिकः ।
पञ्चेन्द्रियकृताधार पञ्चबाण नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः ।
विरराम नम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा ॥१०॥
उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम् ।
पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥११॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत् ः
अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद् ध्रुवम् ॥१२॥
चेष्टां न कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम् ।
भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः ।
वनितां लभते साध्वीं पत्नीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥१३॥

इति मोहिनीकृतं कृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥२०९॥

●

२१०. कृष्णस्तोत्रम् [५]

वन्दे नवघनश्यामं पीतकौशेयवाससम्
सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥ १ ॥

राधेशं राधिकाप्राणवल्लभं बल्लवीसुतम् ।
राधासेवितपादाब्जं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ २ ॥
राधानुगं राधिकेष्टं राधापहृतमानसम् ।
राधाधारं भवाधारं सर्वाधारं नमामि तम् ॥ ३ ॥
राधाहृत्पद्ममध्ये च वसन्तं सन्ततं शुभम् ।
राधासहचरं शश्वद्राधाज्ञापरिपालकम् ॥ ४ ॥
ध्यायन्ते योगिनो योगान् सिद्धाः सिद्धेश्वराश्च यम् ।
तं ध्यायेत् सततं शुद्धं भगवन्तं सनातनम् ॥ ५ ॥
सेवन्ते सततं सन्तो ब्रह्मेशशेषसञ्ज्ञकाः ।
सेवन्ते निर्गुणं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ ६ ॥
निर्लिप्तं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम् ।
नित्यं सत्यं च परमं भगवन्तं सनातनम् ॥ ७ ॥
यं सृष्टेरादिभूतं च सर्वबीजं परात्परम् ।
योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥ ८ ॥
बीजं नानावताराणां सर्वकारणकारणम् ।
वेदावेद्यं वेदबीजं वेदकारणकारणम् ॥ ९ ॥
योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम् ।
इत्येवमुक्त्वा गन्धर्वः पपात धरणीतले ॥१०॥
ननाम दण्डवद् भूमौ देवदेवं परात्परम् ।
इति तेन कृतं स्तोत्रं यः पठेत् प्रयतः शुचिः ॥११॥
इहैव जीवन्मुक्तश्च परं याति परां गतिम् ।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं गोलोके च निरामयः ॥१२॥
पार्षदप्रवरत्वं च लभते नाऽत्र संशयः ॥१३॥

इति नारदपञ्चरात्रे कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२१०॥

२११. कृष्णस्तोत्रम् [६]

विप्रपत्न्य ऊचुः

त्वं ब्रह्म परमं धाम निरीहो निरहंकृतिः ।
निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम् ॥ १ ॥

साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः ।
प्रकृतिः पुरुषस्त्वं च कारणं च तयोः परम् ॥ २ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तविषये ये च देवास्त्रयः स्मृताः ।
ते त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ॥ ३ ॥
यस्य लोम्नां च विवरे चाऽखिलं विश्वमीश्वरः ।
महाविराण्महाविष्णुस्तं तस्य जनको विभो ॥ ४ ॥
तेजस्त्वं चाऽपि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः ।
वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ५ ॥
महदादिसृष्टिसूत्रं पञ्चतन्मात्रमेव च ।
बीजं त्वं सर्वशक्तीनां शर्वशक्तिस्वरूपकः ॥ ६ ॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा ।
त्वमनीहः स्वयंज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः ॥ ७ ॥
अहो आकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि ।
सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियी भवान् ॥ ८ ॥
सरस्वती जडीभूता यत् स्तोत्रे यन्निरूपणे ।
जडीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम् ॥ ९ ॥
पार्वती कमला राधा सावित्री देवसूरपि ।
वेदश्च जडतां याति के वा शक्ता विपश्चितः ॥१०॥
वयं किं स्तवनं कूर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वर ।
प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु ॥११॥
इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्बुजे ।
अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥१२॥
विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् ।
स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नाऽत्र संशयः ॥१३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते विप्रपत्नीकृतं कृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥२११॥

२१२. कृष्णस्तोत्रम् [७]

ज्वर उवाच

नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्ति-स्थान-संरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥ १ ॥
कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २ ॥
नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधून् लोकसेतून् बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ ३ ॥
तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ।
यो नो स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥ ५ ॥
इत्युक्तोऽच्युतमानस्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन् जनार्दनम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्भागवते ज्वरकृतं कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११२॥

२१३. कृष्णाष्टकम् [१]

भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं
स्वभक्त-चित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम् ।
सुपिच्छ-गुच्छ-मस्तकं सुनाद-वेणुहस्तकं
ह्यनङ्ग-रङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम् ॥ १ ॥
मनोजगर्वमोचनं विशाल-लोल-लोचनं
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम् ।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम् ॥ २ ॥

कदम्बसूनुकुण्डलं सुचारु-गण्ड-मण्डलं
व्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम् ।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम् ॥ ३ ॥
सदैव पादपङ्कजं मदीयमानसे निजं
दधानमुत्तमालकं नमामि नन्दबालकम् ।
समस्त-दोष-शोषणं समस्तलोकपोषणं
समस्तगोपमानसं नमामि कृष्णलालसम् ॥ ४ ॥
भुवो भरावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं
यशोमतीकिशोरकं नमामि दुग्धचोरकम् ।
दृगन्तकान्तभङ्गिनं सदासदालसङ्गिनं
दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम् ॥ ५ ॥
गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपावरं
सुरद्विषन्निकन्दनं नमामि गोपनन्दनम् ।
नवीनगोपनागरं नवीनकेलिलम्पटं
नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभालसत्पटम् ॥ ६ ॥
समस्तगोपनन्दनं हृदम्बुजैकमोहनं
नमामि कुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानुशोभनम् ।
निकामकामदायकं दृगन्तचारुसायकं
रसालवेणुगायकं नमामि कुञ्जनायकम् ॥ ७ ॥
विदग्ध-गोपिकामनो-मनोज्ञ-तल्पशायिनं
नमामि कुञ्जकानने प्रवृद्ध-वह्नि-पायिनम् ।
यदा तदा यथा तथा तथैव कृष्णसत्कथा
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम् ।
प्रमाणिकाष्टकद्वयं जपत्यधीत्य यः पुमान्
भवेत् स नन्द-नन्दने भवे भवे सुभक्तिमान् ॥ ८ ॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२१३॥

२१४. कृष्णाष्टकम् [२]

चतुर्मुखादि-संस्तुतं समस्तसात्वतानुतम् ।
हलायुधादि-संयुतं नमामि राधिकाधिपम् ॥ १ ॥
बकादि-दैत्यकालकं स-गोप-गोपिपालकम् ।
मनोहरासितालकं नमामि राधिकाधिपम् ॥ २ ॥
सुरेन्द्रगर्वभञ्जनं विरञ्चि-मोह-भञ्जनम् ।
व्रजाङ्गनानुरञ्जनं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ३ ॥
मयूरपिच्छमण्डनं गजेन्द्र-दन्त-खण्डनम् ।
नृशंसकंशदण्डनं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ४ ॥
प्रसन्नविप्रदारकं सुदामधामकारकम् ।
सुरद्रुमापहारकं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ५ ॥
धनञ्जयाजयावहं महाचमूक्षयावहम् ।
पितामहव्यथापहं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ६ ॥
मुनीन्द्रशापकारणं यदुप्रजापहारणम् ।
धराभरावतारणं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ७ ॥
सुवृक्षमूलशायिनं मृगारिमोक्षदायिनम् ।
स्वकीयधाममायिनं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ८ ॥
इदं समाहितो हितं वराष्टकं सदा मुदा ।
जपञ्जनो जनुर्जरादितो द्रुतं प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

इति श्रीपरमहंसब्रह्मानन्दविरचितं कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ २१४ ॥

२१५. कृष्णाष्टकम् [३]

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिर-चर-पुरुर्वेद-विषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताऽब्जनयनः ।
गदी शङ्खी चक्री विमल-वनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ १ ॥
यतः सर्वं जातं वियदनिलमुख्यं जगदिदं
स्थितो निःशेषं योऽवति निजसुखांशेन मधुहा ।

लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस्तु स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ २ ॥
असूनायम्यादौ यम-नियम-मुख्यैः सुकरणै-
र्निरुध्येदं चित्तं हृदि विलयमानीय सकलम् ।
यमीड्यं पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ३ ॥
पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम् ।
नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां मोक्षदमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ४ ॥
महेन्द्रादिर्देवो जयति दितिजान्यस्य बलतो
न कस्य स्वातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते ।
कवित्वादेर्गर्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ५ ॥
विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता ।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ६ ॥
निरातङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो
घनश्यामो वामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः ।
स्वयम्भूर्भूतानां जनक उचिताचारसुखदः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ७ ॥
यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः ।
सतां धाता स्वच्छो निगमगुणगीतो व्रजपतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ८ ॥
इति हरिरखिलात्मा-ऽऽराधितः शङ्करेण
श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः ।

यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव
स्वगुणवृत उदारः शङ्ख-चक्राब्ज-हस्तः ॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ २२५ ॥

२१६. कृष्णद्वादशनामस्तोत्रम्

श्रीकृष्ण उवाच

किं ते नामसहस्रेण विज्ञातेन तवार्जुन।
तानि नामानि विज्ञाय नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
प्रथमं तु हरिं विन्द्याद् द्वितीयं केशवं तथा।
तृतीयं पद्मनाभं च चतुर्थं वामनं स्मरेत् ॥ २ ॥
पञ्चमं वेदगर्भं तु षष्ठं च मधुसूदनम्।
सप्तमं वासुदेवं च वराहं चाऽष्टमं तथा ॥ ३ ॥
नवमं पुण्डरीकाक्षं दशमं तु जनार्दनम्।
कृष्णमेकादशं विन्द्याद् द्वादशं श्रीधरं तथा ॥ ४ ॥
एतानि द्वादश नामानि विष्णुप्रोक्ते विधीयते।
सायं-प्रातः पठेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५ ॥
चान्द्रायण-सहस्राणि कन्यादानशतानि च।
अश्वमेधसहस्राणि फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ६ ॥
अमायां पौर्णमास्यां च द्वादश्यां तु विशेषतः।
प्रातःकाले पठेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७ ॥

इति श्रीमन्महाभारतेऽरण्यपर्वणि कृष्णद्वादशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ २१६ ॥

२१७. कृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रमन्त्रस्य, श्रीशेष-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामजपे विनियोगः।

शेष उवाच

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः।
वासुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ॥ १ ॥

श्रीवत्स-कौस्तुभधरो यशोदा-वत्सलो हरिः ।
चतुर्भुजात्त-चक्रासि-गदा-शङ्खाम्बुजायुधः ॥ २ ॥
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ।
यमुनावेगसंहारो बलभद्रप्रियानुजः ॥ ३ ॥
पूतनाजीवितहरः शकटासुरभञ्जनः ।
नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ४ ॥
नवनीतनवाहारी मुचुकुन्दप्रसादकः ।
षोडशस्त्री-सहस्रांशुस्त्रिभङ्गी मधुराकृतिः ॥ ५ ॥
शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो गोविदां पतिः ।
वत्सपालनसञ्चारी धेनुकासुरभञ्जनः ॥ ६ ॥
तृणीकृत-तृणावर्तो यमलार्जुनभञ्जनः ।
उत्तालतालभेत्ता च तमाल-श्यामलाकृतिः ॥ ७ ॥
गोपीगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।
इलापतिः परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः ॥ ८ ॥
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।
गोवर्धनाचलोद्धर्ता गोपालः सर्वपालकः ॥ ९ ॥
अजो निरञ्जनः कामजनकः कञ्जलोचनः ।
मधुहा मथुरानाथो द्वारकानायको बली ॥१०॥
वृन्दावनान्तसञ्चारी तुलसीदासभूषणः ।
स्यमन्तकमणेर्हर्ता नरनारायणात्मकः ॥११॥
कुब्जाकृष्णाम्बरधरो मायी परमपूरुषः ।
मुष्टिकासुर - चाणूर - महायुद्ध - विशारदः ॥१२॥
संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः ।
अनादिर्ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥१३॥
शिशुपाल - शिरच्छेत्ता दुर्योधनकुलान्तकृत् ।
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ॥१४॥
सत्यवाक् सत्यसङ्कल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥१५॥
जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्य - विशारदः ।

वृषभासुर - विध्वंसी बाणासुर - बलान्तकृत् ॥१६॥
युधिष्ठिर - प्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ॥१७॥
कालीयफणिमाणिक्य - रञ्जित - श्रीपदाम्बुजः ।
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्र - विनाशनः ॥१८॥
नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।
जलक्रीडासमासक्त - गोपीवस्त्रापहारकः ॥१९॥
पुण्यश्लोकस्तीर्थकरो देववेद्यो दयानिधिः ।
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपो परात्परः ॥२०॥
इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ॥२१॥
स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया पुरा ।
कृष्णनामामृतं नाम परमानन्ददायकम् ॥२२॥
अनुपद्रव - दुःखघ्नं परमायुष्यवर्धनम् ।
दानं श्रुतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ॥२३॥
पठतां शृण्वतां चैव कोटि - कोटिगुणं भवेत् ।
पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥२४॥
धनावहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुष्टिवर्धनम् ॥२५॥
वातग्रह-ज्वरादीनां शमनं शान्तिमुक्तिदम् ।
समस्त - कामदं सद्यः कोटिजन्माघनाशनम् ॥२६॥
अन्ते कृष्णस्मरणदं भवतापभयापहम् ।
कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ।
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्तवेदिने ॥२७॥
इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ।
सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥२८॥
पुत्र - पौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धि - समृद्धिमान् ।
निर्विश्य भोगानन्तेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥२९॥

इति श्रीनारदपञ्चरात्रे कृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ॥२१७॥

२१८. कृष्णस्तवराजः

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्गच्छेन्नरो निरययातनाम् ॥ १ ॥
नारदाय च यत्प्रोक्तं ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
सनत्कुमारेण पुरा योगीन्द्रगुरुवर्त्मना ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

प्रसीद भगवन्मह्यमज्ञानात् कुण्ठितात्मने ।
तवांघ्रिपङ्कजरजोरागिणीं भक्तिमुत्तमाम् ॥ ३ ॥
अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर ।
अप्रमेयं प्रसीदास्मद्दुःखहन् पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥
स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय ।
अचिन्त्यसार विश्वात्मन् प्रसीद परमेश्वर ॥ ५ ॥
प्रसीद तुङ्गतुङ्गानां प्रसीद शिवशोभन ।
प्रसीद गुणगम्भीर गम्भीराणां महाद्युते ॥ ६ ॥
प्रसीद व्यक्तं विस्तीर्णं विस्तीर्णानामगोचर ।
प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदान्तान्तदायिनाम् ॥ ७ ॥
गुरोर्गरीयः सर्वेश प्रसीदानन्त देहिनाम् ।
जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शङ्खभृत् ॥ ८ ॥
जय शङ्खधर श्रीमन् जय नन्दननन्दन ।
जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन ॥ ९ ॥
जय रत्नवराबद्ध - किरीटाकान्त - मस्तक ।
जय पक्षिपतिच्छाया - निरुद्धार्ककरारुण ॥१०॥
नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन ।
नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक ॥११॥
नमः पापहरेशान नमः सर्पभवापह ।
नमः सम्भूत - सर्वात्मन्नमः सम्भृतकौस्तुभ ॥१२॥

नमस्ते नयनातीत नमस्ते भयहारक।
नमो विभिन्नवेषाय नमः श्रुतिपथातिग ॥१३॥
नमश्चिन्मूर्तिभेदेन सर्ग - स्थित्यन्त - हेतवे।
विष्णवे त्रिदशारीति - जिष्णवे परमात्मने ॥१४॥
चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रवल्लभ।
विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्तिने ॥१५॥
नमोऽस्तु योगिध्येत्यात्मन्नमोऽस्त्वध्यात्मिरूपिणे।
भक्तिप्रदाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने ॥१६॥
पूजनं हवनं चेज्या ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया।
देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव ॥१७॥
इति हवन - जपार्चाभिदतो विष्णुपूजा
नियतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय।
स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा
जननमृतिविमुक्तोऽत्युत्तमां भक्तिमेति ॥१८॥
गोगोपगोपिकावीतं गोपालं गोषु गोप्रदम्।
गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नौमि गोकुलनायकम् ॥१९॥
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम्।
धर्मार्थ - काम - मोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ।२०॥
इति श्रीनारदपञ्चरात्रे कृष्णस्तवराजः सम्पूर्णः ॥२१८॥

२१९. गोविन्दाष्टकम्

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्राङ्गण-रिङ्गल-लोलमनायासं परमायासम्।
मायाकल्पित - नानाकारमनाकारं भुवनाकारं
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ १ ॥
मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडन - शैशव - सन्त्रासं
व्यादित-वक्त्रालोकित-लोकालोक-चतुर्दशलोकालिम्।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकं
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ २ ॥

त्रैविष्टप-रिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम्।
वैमल्य - स्फुटचेतोवृत्ति - विशेषाभासमनाभासं
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ३॥
गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालम्
गोपीखेलन-गोवर्धन-धृतिलीलालालित - गोपालम्।
गोभिर्निगदित-गोविन्द-स्फुटनामानं बहुनामानं
गोपीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ४॥
गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थामभेदाभं
शश्वद्गोखुर-निर्धूतोत्कृत-धूलीधूसर - सौभाग्यम्।
श्रद्धाभक्ति-गृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं
चिन्तामणिमहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ५॥
स्नानव्याकुल - योषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्राद्युपदातुमुपाकर्षन्तम्।
निर्धूतद्वय - शोक - विमोहं बुद्धं बुद्धेरप्यन्तस्थं
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ६॥
कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
कालिन्दीगत-कालियशिरसि मुहुर्नृत्यन्तं सुनृत्यन्तम्।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ७॥
वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधित वन्देऽहं
कुन्दाभामल - मन्दस्मेर - सुधानन्दं सुहृदानन्दम्।
वन्द्याशेष - महामुनिमानस - वन्द्यं नन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ८॥
गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्णेति।
गोविन्दांघ्रिसरोज-ध्यानसुधाजल-धौतसमस्ताघो
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तःस्थं स समभ्येति॥ ९॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गोविन्दाष्टकं समाप्तम्॥२१९॥

२२०. गोपालस्तोत्रम्

नारद उवाच

नवीन - नीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
बल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥ १ ॥
स्फुरद्बर्हि-दलोद्बद्ध-नील - कुञ्चित - मूर्धजम् ।
कदम्ब - कुसुमोद्बद्ध - वनमाला - विभूषितम् ॥ २ ॥
गण्डमण्डलसंसर्गि - चलत्कुञ्चितकुन्तलम् ।
स्थूलं मुक्ताफलोदार - हारोद्योतितवक्षसम् ॥ ३ ॥
हेमाङ्ग - तुलाकोटि - किरीटोज्ज्वल - विग्रहम् ।
मन्दमारुत - संक्षोभ - चलिताम्बर - सञ्चयम् ॥ ४ ॥
रुचिरौष्ठ - पुटन्यस्त - वंशीमधुरनिःस्वनैः ।
लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्त पुनः पुनः ॥ ५ ॥
बल्लवीवदनाम्भोज - मधुपानमधुव्रतम् ।
क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥ ६ ॥
यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
विचित्राम्बर - भूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥ ७ ॥
प्रभिन्नाञ्जन-कालिन्दी-जलकेलि-कलोत्सुकम् ।
योधयन्तं क्वचिद् गोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥ ८ ॥
कालिन्दीजल - संसर्गि - शीतलानिलसेविते ।
कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥ ९ ॥
रत्नभूधर - संलग्न - रत्नासन - परिग्रहम् ।
कल्पपादप - मध्यस्थ - हेममण्डपिकागतम् ॥१०॥
वसन्तकुसुमामोद - सुरभीकृत - दिङ्मुखे ।
गोवर्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥११॥
सव्यहस्त - तलन्यस्त - गिरिवर्यातपत्रकम् ।
खण्डिताखण्डलोन्मुक्त-मुक्तासार - घनाघनम् ॥१२॥

वेणुवाद्य - महोल्लास - कृतहुङ्कार - निःस्वनैः ।
सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥१३॥
कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चेष्टावशवर्तिभिः ।
दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥१४॥
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेद - वेदाङ्गपारगैः ।
प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥१५॥
य एवं चिन्तयेद् देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।
त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१६॥
राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः ।
अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥१७॥

इति नारदपञ्चरात्रे गोपालस्तोत्रं समाप्तम् ॥२२०॥

२२१. गोपालविंशतिस्तोत्रम्

श्रीमान् वेङ्कटनाथार्यः कवि - तार्किक - केसरी ।
वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि ॥ १ ॥
वन्दे वृन्दावनचरं बल्लवीजनवल्लभम् ।
जयन्तीसम्भवं धाम वैजयन्तीं विभूषणम् ॥ २ ॥
वाचं निजाङ्करसिकां प्रसमीक्षमाणे वक्त्रारविन्दविनिवेशितपाञ्चजन्यः।
वर्णः त्रिकोणरुचिरे वरपुण्डरीके बद्धासनो जयति बल्लवचक्रवर्ती ।३।
आम्नायगन्धरुचिर-स्फुरिताधरोष्ठ-मस्राविलेक्षणमनुक्षणमन्दहासम् ।
गोपालडिम्भवपुषं कुहुना जनन्याः प्राणस्तनन्धयमवैमि परं पुमांसम् ।४।
आविर्भवत्यनिभृताभरणं पुरस्तादाकुञ्चितैकचरणं निहितान्यपादम् ।
राधानिबद्धमुकुरेण निबद्धतालं नाथस्य नन्दभवने नवनीतनाट्यम् ।५।
कुन्दप्रसून-विशदैर्दशनैश्चतुर्भिः संदश्य मातुरनिशं कुचचूचुकाग्रम् ।
नन्दस्य वक्त्रमवलोकयतो मुरारेर्मन्दस्थितं मम मनीषितमातनोतु ।६।
हर्तुं कुम्भे विनिहितकरः स्वादु हैयङ्गवीनं
दृष्ट्वा दामग्रहणचटुलां मातरं जातरोषाम् ।

पायादीषत् - प्रचलितपदो नापगच्छन्न तिष्ठन्
मिथ्यागोपः सपदि नयनेऽमीलयद् विश्वगोप्ता ॥ ७ ॥
व्रजयोषिदपाङ्गवेदनीयं मथुराभाग्यमनन्यभोग्यमीडे ।
वसुदेववधूस्तनन्धयं तत्किमपि ब्रह्म किशोरभावदृश्यम् ॥ ८ ॥
परिवर्तितकन्धरं भयेन स्मितफुल्लाधरपल्लवं स्मरामि ।
विटपित्वनिरासकं कयोश्चिद् विपुलोलूखलकर्षकं कुमारम् ॥ ९ ॥
निकटेषु निशामयामि नित्यं निगमान्तैरधुनाऽपि मृग्यमाणम् ।
यमलार्जुनदृष्टबालकेलिं यमुनासाक्षिकयौवनं युवानम् ॥१०॥
पदवीमदवीयसीं विमुक्तेरटवीं सम्पदमम्बु वाहयन्तीम् ।
अरुणाधरसाभिलाषवंशां करुणां कारणमानुषं भजामि ॥११॥
अनिमेष - निषेवणीयमक्ष्णोरजहद्यौवनमाविरस्तु चित्ते ।
कलहायितकुन्तलं कलापैः करुणोन्मादक - विग्रहं मनो मे ॥१२॥
अनुयायिमनोज्ञवंशनालैरवतु स्पर्शितबल्लवीविमोघैः ।
अनघस्मित-शीतलैरसौ मामनुकम्पासरिदम्बुजैरपाङ्गैः ॥१३॥
अधराहित-चारुवंशनाला मुकुटालम्बि-मयूरपिच्छमालाः ।
हरिनीलशिलाविहङ्ग-लीलाः प्रतिभास्वन्तु ममान्तिमप्रयाणे ॥१४॥
अखिलानवलोकयामि कालान्महिलादीनभुजान्तरस्य यूनः ।
अभिलाषपदं व्रजाङ्गनानामभिलाषक्रमदूरमाभिरूप्यम् ॥१५॥
महसे महिताय मौलिना विनतेनाञ्जलिमञ्जनत्विषे ।
कलयामि विदग्धबल्लवी - बलयाभाषितमञ्जुवेषवे ॥१६॥

जयतु ललितकृत्यं शिक्षको बल्लवीनां
शिथिल - वलयसिञ्जा - शीतलैर्हस्ततालैः ।
अखिलभुवनरक्षा - गोपवेषस्य विष्णो-
रधरमणिसुधाया वंशवान् वंशनालः ॥१७॥

चित्राकल्पश्श्रवसि कलयंल्लाङ्गलीकर्णपूरं
बर्होत्तंस-स्फुरितचिकुरो बन्धुजीवं दधानः ।
गुञ्जाबद्धामुरसि ललितां धारयन् हारयष्टिं
गोपस्त्रीणां जयति कितवः कोऽपि कौमारहारी ॥१८॥

लीलायष्टिं करकिसलये दक्षिणे न्यस्य धन्या-
मंसे देव्याः पुलकनिबिडे सन्निविष्टान्यबाहुः ।
मेघश्यामो जयति ललितं मेखलादत्तवेणु-
र्गुञ्जापीड-स्फुरितचिकुरो गोपकन्याभुजङ्गः ॥१९॥
प्रत्यालीढ - स्मृतिमधिगतां प्राप्तगाढाङ्गपालीं
पश्चादीषन्मिलितनयनां प्रेयसीं प्रेक्षमाणः ।
भस्त्रायन्त्रप्रणिहितकरो भक्तजीवातुरव्याद्
वारिक्रीडा-निबिडवसनो बल्लवीवल्लभो नः ॥२०॥
वासो हृत्वा दिनकरसुतासन्निधौ बल्लवीनां
लीलास्मेरो जयति ललितामास्थितः कुन्दशाखाम् ।
सव्रीडाभिस्तदनु वसनं ताभिरभ्यर्थ्यमानः
कामी कश्चित्करकमलयोरञ्जलिं याचमानः ॥२१॥
इत्यनन्यमनसा विनिर्मितां वेंकटेशकविना स्तुतिं पठन् ।
दिव्यवेणुरसिकैः समीक्ष्यते दैवतं किमपि यौवतप्रियम् ॥२२॥
इति गोपालविंशतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२१॥

●

२२२. गोपालहृदयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीगोपालहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य, श्रीभगवान् सङ्कर्षण ऋषिः, गायत्री छन्दः, ॐ बीजम्, लक्ष्मी शक्तिः, गोपालः परमात्मा देवता, प्रद्युम्नः कीलकम्, मनो-वाक् - कायार्जित - सर्वपापक्षयार्थे श्रीगोपालप्रीत्यर्थे गोपालहृदयस्तोत्रजपे विनियोगः ।

श्रीसङ्कर्षण उवाच

ॐ ममाऽग्रतः सदा विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः ।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे च मधुसूदनः ॥ १ ॥
उपरिष्ठात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले ।
अवान्तरदिशः पातु तासु सर्वासु माधवः ॥ २ ॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।
नरसिंहकृताद् गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्ययम् ॥ ३ ॥

अव्यक्तं चैवास्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं दीर्घमायुर्गतिश्च।
वह्निर्वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमायुश्च वायुम् ॥ ४ ॥
वाचं वेदा हृदयं वै नभश्च पृथ्वी पादौ तारका रोमकूपाः।
अङ्गान्युपाङ्गान्यधिदेवता च विद्यादुपस्थं हि तथा समुद्रम् ॥ ५ ॥
तं देवदेवं शरणं प्रजानां यज्ञात्मकं सर्वलोकप्रतिष्ठम्।
अजं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं ब्रह्माणमीशं पुरुषं नमस्ते ॥ ६ ॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरस्कृतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताऽव्यक्तं सनातनम् ॥ ७ ॥
महाभारतमाख्यानं कुरुक्षेत्रं सरस्वतीम्।
केशवं गां च गङ्गां च कीर्तयन् मां प्रसीदति ॥ ८ ॥

ॐ भूः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ भुवः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ स्वः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ महः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ जनः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ तपः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ सत्यं पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ वासुदेवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ सङ्कर्षणाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ प्रद्युम्नाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ अनिरुद्धाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ हयग्रीवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ भवोद्भवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ केशवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ नारायणाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ माधवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ गोविन्दाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ विष्णवे पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ मधुसूदनाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ वैकुण्ठाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः।

ॐ अच्युताय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ त्रिविक्रमाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ वामनाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ श्रीधराय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ हृषीकेशाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ पद्मनाभाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ मुकुन्दाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ दामोदराय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ सत्याय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ ईशानाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ तत्पुरुषाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ पुरुषोत्तमाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ श्रीरामचन्द्राय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ श्रीनृसिंहाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ अनन्ताय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः। ॐ प्रणवेन्दु-वह्नि-रवि-सहस्रनेत्राय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः।

य इदं गोपालहृदयमधीते स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति। सुरापानात् स्वर्णस्तेयात् वृषलीगमनात् पतिसम्भाषणात् असत्यात् अगम्यागमनात् अपेयपानात् अभक्ष्यभक्षणाच्च पूतो भवति। अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। भगवान् महाविष्णुरित्याह।

इति गोपालहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२२॥

●

२२३. गोपालस्तुतिः

नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः॥ १॥
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः॥ २॥
नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः॥ ३॥

बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः॥ ४॥
कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने।
कालिन्दीकूललीलाय लोलकुण्डलधारिणे॥ ५॥
वृषभध्वज - वन्द्याय पार्थसारथये नमः।
वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने॥ ६॥
बल्लवीवदनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः॥ ७॥
नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च।
पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे॥ ८॥
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः॥ ९॥
प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर।
आधि-व्याधि-भुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो॥१०॥
श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो॥११॥
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन।
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव॥१२॥

इत्याथर्वणे गोपालतापिन्युपनिषदन्तर्गता गोपालस्तुतिः समाप्ता॥२२३॥

२२४. गोपालाक्षयकवचम्

श्रीनारद उवाच

इन्द्राद्यमरवर्गेषु ब्रह्मन् यत्परमाऽद्भुतम्।
अक्षयं कवचं नाम कथयस्व मम प्रभो॥ १॥
यद्धृत्वाऽऽकर्ण्य वीरस्तु त्रैलोक्यविजयी भवेत्।

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र! मुनिश्रेष्ठ! कवचं परमाद्भुतम्॥ २॥

इन्द्रादि - देववृन्दैश्च नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥ ३ ॥
ऋषिश्छन्दो देवता च सदा नारायणः प्रभुः ।

अस्य श्रीत्रैलोक्यविजयाक्षयकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीनारायणः परमात्मा देवता, धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

पादौ रक्षतु गोविन्दो जङ्घे पातु जगत्प्रभुः ॥ ४ ॥
ऊरू द्वौ केशवः पातु कटी दामोदरस्ततः ।
वदनं श्रीहरिः पातु नाडी देशं च मेऽच्युतः ॥ ५ ॥
वामपार्श्वं तथा विष्णुर्दक्षिणं च सुदर्शनः ।
बाहुमूले वासुदेवो हृदयं च जनार्दनः ॥ ६ ॥
कण्ठं पातु वराहश्च कृष्णश्च मुखमण्डलम् ।
कर्णौ मे माधवः पातु हृषीकेशश्च नासिके ॥ ७ ॥
नेत्रे नारायणः पातु ललाटं गरुडध्वजः ।
कपोलं केशवः पातु चक्रपाणिः शिरस्तथा ॥ ८ ॥
प्रभाते माधवः पातु मध्याह्ने मधुसूदनः ।
दिनान्ते दैत्यनाशश्च रात्रौ रक्षतु चन्द्रमाः ॥ ९ ॥
पूर्वस्यां पुण्डरीकाक्षो वायव्यां च जनार्दनः ।
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥१०॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं न वक्तव्यं तु कस्यचित् ।
कवचं धारयेद् यस्तु साधको दक्षिणे भुजे ॥११॥
देवा मनुष्या गन्धर्वा यज्ञास्तस्य न संशयः ।
योषिद्वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे भुजे ॥१२॥
बिभृयात् कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् ।
कण्ठे यो धारयेदेतत् कवचं मत्स्वरूपिणम् ॥१३॥
युद्धे जयमवाप्नोति द्यूते वादे च साधकः ।
सर्वथा जयमाप्नोति निश्चितं जन्मजन्मनि ॥१४॥
अपुत्रो लभते पुत्रं रोगनाशस्तथा भवेत् ।
सर्वतापप्रमुक्तश्च विष्णुलोकं स गच्छति ॥१५॥

इति ब्रह्मसंहितोक्तं गोपालाक्षयकवचं सम्पूर्णम् ॥२२४॥

२२५. बिन्दुमाधवाष्टकम्

कलिन्दजा - तटाटवी - लतानिकेतनान्तर-
प्रगल्भवल्लि-विस्फुरद्रतिप्रसङ्ग-सङ्गतम् ।
सुधारसार्द्रवेणुनाद - मोदमाधुरीमद-
प्रमत्त-गोपगोव्रजं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ १ ॥
गदारिशङ्ख-चक्र-शार्ङ्गभृच्चतुष्करं कृपा-
कटाक्ष - वीक्षणामृतोक्षितामरेन्द्रनन्दनम् ।
सनन्दनादिमौनिमान - सारविन्द - मन्दिरं
जगत्पवित्रकीर्तिदं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ २ ॥
दिगीशमौलिनूत्नरत्न-निःसरत्-प्रभावली -
विराजितांघ्रिपङ्कजं नवेन्दुशेखराब्जजम् ।
दयामरन्द - तुन्दिलारविन्दपत्र - लोचनं
विरोधियूथभेदनं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ ३ ॥
पयःपयोधिवीचिकावली - पयःपृषन्मिलद्-
भुजङ्गपुङ्गवाङ्गकल्प-पुष्पतल्पशायिनम् ।
कटीतटि-स्फुटीभवत्-प्रहाटका-वरं निशा-
टकोटिपाटनं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ ४ ॥
अनुश्रवापहारका - वलेपलोधनैपुणी -
पयश्चरावतार-तोषितार - विन्दसम्भवम् ।
महाभवाब्धिमध्यमग्न - दीनलोकतारकं
विहङ्गराट्तुरङ्गमं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ ५ ॥
समुद्रतोयमध्यदेव - दानवोत्क्षिपद्धरा -
धरेन्द्रमूलधारण - क्षमादिकूर्मविग्रहम् ।
दुराग्रहावलिप्तहाट - काक्षनाशसूकरं
हिरण्यदानवान्तकं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ ६ ॥
विरोचनात्म - सम्भवोत्तमाङ्गकृत्पदक्रमं
परश्वधोपसंहृताखिलावनीशमण्डलम् ।

कठोरनीलकण्ठ - कार्मुक - प्रदर्शितादिदो-
बलान्वितक्षितोसुतं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ ७ ॥
यमानुजोदकप्रवाह - सत्त्वराभिजित्वरं
पुरासुरङ्गनाभिमाननूपयूथनायकम् ।
स्वमण्डलाग्र - खण्डनीय-यावनारिमण्डलं
बलानुजं गदाग्रजं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥ ८ ॥
प्रशस्तपञ्चचामराख्यवृत्तभेदभासितं
दशावतारवर्णनं नृसिंहभक्त - वर्णितम् ।
प्रसिद्धबिन्दुमाधवाष्टकं पठन्ति ये भृशं
नराः सुदुर्लभं भजन्ति ते मनोरथं निरन्तम् ॥ ९ ॥

इति बिन्दुमाधवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२२५॥

इति कृष्णस्तोत्राणि ।

*

पाण्डुरङ्गस्तोत्राणि

२२६. पाण्डुरङ्गाष्टकम्

महायोगपीठे तटे भीमरथ्या वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः ।
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥१॥
तडिद्वाससं नीलमेघावभासं रमामन्दिरं सुन्दरं चित्प्रकाशम् ।
वरं त्विष्टिकायां समन्यस्तपादं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥२॥
प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात् ।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोशः परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥३॥
स्फुरत्कौस्तुभालंकृतं कण्ठदेशे श्रिया जुष्टकेयूरकं श्रीनिवासम् ।
शिवं शान्तमीड्यं वरं लोकपालं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥४॥
शरच्चन्द्र-बिम्बाननं चारुहासं लसत्कुण्डलाक्रान्त-गण्डस्थलाङ्गम् ।
जपारागबिम्बाधरं कञ्जनेत्रं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥५॥
किरीटोज्ज्वलत्-सर्वदिक्प्रान्तभागं सुरैरर्चितं दिव्यरत्नैरनर्घ्यैः ।
त्रिभङ्गाकृतिं बर्हमाल्यावतंसं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥६॥

विभुं वेणुनादं चरन्तं दुरन्तं स्वयं लीलया गोपवेषं दधानम् ।
गवां वृन्दकानन्दनं चारुहासं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥७॥
अजं रुक्मिणीप्राणसञ्जीवनं तं परं धाम कैवल्यमेकं तुरीयम् ।
प्रपन्नं प्रपन्नार्तिहं देवदेवं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥८॥
स्तवं पाण्डुरङ्गस्य वै पुण्यद ये पठन्त्येकचित्तेन भक्त्या च नित्यम् ।
भवाम्भोनिधिं तेऽपि तीर्त्वाऽन्तकाले हरेरालयं शाश्वत प्राप्नुवन्ति ॥९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं पाण्डुरङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ।२२६॥

कल्क्यवतारस्तोत्रम्

२२७. कल्किस्तोत्रम्

सुशान्तोवाच

जय हरेऽमराधीश - सेवितं तव पदाम्बुजं भूरिभूषणम् ।
कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महामते मोहमात्मनः ॥१॥
तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ॥२॥
तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतं प्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तव करोत्यलं लोकमङ्गलम् ॥३॥
मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्मणाऽऽचरेत् ।
जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वर ॥४॥
महदहयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्मितं वपुः ।
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्-स्थिति-लयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥
भूवि यन्मरुद्वारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रियाश्रितैः ।
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम् ॥६॥
तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्तयन्ति ये ।
भवभयक्षयं तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ॥७॥
तव जनुः सतां मानवर्धनं जिनकुलक्षयं देवपालकम् ।
कृतयुगार्पकं धर्मपूरकं कलिकुलान्तकं शं तनोतु मे ॥८॥

मम गृहं पति - पुत्र - नप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः ।
मणिवरासनं सत्कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम् ॥९॥
तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम् ।
यदि न मे प्रियं वल्गु चेष्टितं परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ॥१०॥
हयचर-भयहरकर-हरशरण-खरतरवरशर - दशबलदलन ।
जय हतपरभर भवभरनाशन शशधर-शतसमर-सभरदमन ॥११॥

इति श्रीकल्किपुराणे सुशान्ताकृतं कल्किस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२७॥

इति कल्क्यवतारस्तोत्रम् ।

दत्तात्रेयस्तोत्राणि

२२८. दत्तात्रेयस्तोत्रम्

जटाधरं पाण्डुरङ्गं शूलहस्तं कृपानिधिम् ।
सर्वरोगहरं देवं दत्तात्रेयमहं भजे ॥

विनियोगः—अस्य श्रीदत्तात्रेयस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान्नारद-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीदत्तः परमात्मा देवता, श्रीदत्तप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः॥

जगदुत्पत्तिकर्त्रे च स्थिति - संहारहेतवे ।
भवपाशविमुक्ताय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
जरा - जन्म - विनाशाय देहशुद्धिकराय च ।
दिगम्बर दयामूर्ते दत्तात्रेयमहं भजे ॥ २ ॥
कर्पूरकान्तिदेहाय ब्रह्ममूर्तिधराय च ।
वेदशास्त्रपरिज्ञाय दत्तात्रेयमहं भजे ॥ ३ ॥
ह्रस्व-दीर्घ-कृश-स्थूल-नामगोत्र - विवर्जित ।
पञ्चभूतप्रदीप्ताय दत्तात्रेयमहं भजे ॥ ४ ॥
यज्ञभोक्त्रे च यज्ञाय यज्ञरूपधराय च ।
यज्ञप्रियाय सिद्धाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुरन्ते देवः सदाशिवः ।
मूर्तित्रयस्वरूपाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

भोगालयाय भोगाय योग्ययोग्याय धारिणे।
जितेन्द्रिय-जितज्ञाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
दिगम्बराय दिव्याय दिव्यरूपधराय च।
सदोदितपरब्रह्म दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
जम्बूद्वीपे महाक्षेत्रे मातापुरनिवासिने।
जयमान सतां देव दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
भिक्षाटनं गृहे ग्रामे पात्रं हेममयं करे।
नानास्वादमयी भिक्षा दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥१०॥
ब्रह्मज्ञानमयी मुद्रा वस्त्रे आकाशभूतले।
प्रज्ञानघनबोधाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥११॥
अवधूत सदानन्द परब्रह्मस्वरूपिणे।
विदेहदेहरूपाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥१२॥
सत्यरूप सदाचार सत्यधर्मपरायण।
सत्याश्रय परोक्षाय दत्तात्रेयमहं भजे ॥१३॥
शूलहस्त गदापाणे वनमालासुकन्धर।
यज्ञसूत्रधर ब्रह्मन् दत्तात्रेयमहं भजे ॥१४॥
क्षराऽक्षरस्वरूपाय परात्परतराय च।
दत्तमुक्तिपरस्तोत्रं दत्तात्रेयमहं भजे ॥१५॥
दत्तविद्याढ्य लक्ष्मीश दत्तास्वात्मस्वरूपिणे।
गुणनिर्गुणरूपाय दत्तात्रेयमहं भजे ॥१६॥
शत्रुनाशकरं स्तोत्रं ज्ञान-विज्ञान-दायकम्।
सर्वपापं शमं याति दत्तात्रेय नमो नमः ॥१७॥
इदं स्तोत्रं महद्दिव्यं दत्तप्रत्यक्षकारकम्।
दत्तात्रेयप्रसादाय नारदेन प्रकीर्तितम् ॥१८॥

इति श्रीनारदपुराणे नारदकृतं दत्तात्रेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२८॥

२२९. दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रम्

दत्तात्रेयं त्वां नमामि प्रसीद त्वं सर्वात्मा सर्वकर्ता न वेद ।
कोऽप्यन्तं ते सर्वदेवाधिदेव ज्ञाताऽज्ञातान्मेऽपराधान् क्षमस्व ॥१॥
त्वदुद्भवत्वात्त्वदधीनधीत्वात्त्वमेव मे वन्द्य उपास्य आत्मन् ।
अथापि मौढ्यात् स्मरणं न ते मे कृतं क्षमस्व प्रियकृन्महात्मन् ॥२॥
भोगापवर्गप्रदमार्तबन्धुं कारुण्यसिन्धुं परिहाय बन्धुम् ।
हिताय चाऽन्यं परिमार्गयन्त हा मादृशो नष्टदृशो विमूढाः ॥३॥
न मत्समो यद्यपि पापकर्ता न त्वत्समोऽथापि हि पापहर्ता ।
न मत्समोऽन्यो दयनीय आर्य न त्वत्समः क्वापि दयालुवर्यः ॥४॥
अनाथनाथोऽसि सुदीनबन्धो श्रीशाऽनुकम्पामृतपूर्णसिन्धो ।
त्वत्पादभक्तिं तव दासदास्यं त्वदीयमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम् ॥५॥
गुरुस्मृतिं निर्मलबुद्धिमाधिव्याधिक्षयं मे विजयं च देहि ।
इष्टार्थसिद्धिं वरलोकवश्यं धनान्नवृद्धिं वरगोसमृद्धिम् ॥६॥
पुत्रादिलब्धिं म उदारतां च देहीश मे चास्त्वभयं हि सर्वतः ।
ब्रह्मा-ऽग्नि-भूम्यो नम ओषधीभ्यो वाचे नमो वाक्पतये च विष्णवे॥७॥
शान्ताऽस्तु भूर्नः शिवमन्तरिक्षं द्यौश्चाऽभयं नोऽस्तु दिशः शिवाश्च ।
आपश्च विद्युत्परिपान्तु देवाः शं सर्वतो मेऽभयमस्तु शान्तिः ॥८॥
इति श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीविरचितं दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२९॥

२३०. गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रम्

यं विज्ञातुं भृगुः स्वं पितरमुपगतः पञ्चवारं यथाव-
ज्ज्ञानादेवामृताप्तेः सततमनुपमं चिद्विवेकादि लब्ध्वा ।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥१॥
यस्मान्नश्यस्य जन्म-स्थिति-विलयमिमे तैत्तिरीयाः पठन्ति
स्वाविद्यामात्रयोगाद् सुखशयनतले मुख्यतः स्वप्नवच्च ।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥२॥

या वेदान्तैकलभ्यश्रुतिषु नियमिनस्तैत्तिरीयैश्च काण्वै-
रन्यैरप्यानिषेकादुदयपरिमितं चारुसंस्कारभाजाम् ।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ।३।।

यस्मिन्नेवावसन्नाः सकलनिगमवाङ्मौलयः सुप्तपुंसि
प्रोक्तं तन्नाम यद्वै निजमहिमगत-ध्वान्त-तत्कार्यरूपे ।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ।।४।।

चित्त्वात्सङ्कल्पपूर्वं सृजति जगदिदं योगिवन्मायया यः
स्वात्मन्येवाद्वितीये परमसुखदृशि स्वप्नवद् भूम्नि नित्ये ।
तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ।।५।।

इत्यच्युतयतिविरचितं गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।२३०।।

२३१. गुर्वष्टकम्

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।।१।।
कलत्रं धनं पुत्र-पौत्रादि-सर्वं गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।२।
षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।३।
विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु भक्तो न चाऽन्यः ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।४।
क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।५।
यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापाज्जगद्वस्तु सर्वं करे मत्प्रसादात् ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।६।

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।७।
अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।८।
अनर्घ्याणि रत्नानि भुक्तानि सम्यक् समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।९।
गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद् वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ।१०।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गुर्वष्टकं सम्पूर्णम् ॥२३१॥

२३२. गुरुराजस्तवः

सद्गुरुं भज सद्गुरुं भज सद्गुरुं भज बुद्धिमन्
येन संसृतिपारमेष्यसि मुक्त इत्यपि गास्यसे।
आसुरीं त्यज सम्पदं विपदां पदं मुनिगर्हितां
तर्हि तां भज सम्पदं मुनिसंस्तुतां भगवत्प्रियाम् ॥ १ ॥
गर्व-पर्वत-मस्तके तव संस्थितिर्न हि शोभते
पातमेष्यसि घातकर्मणि युज्यसे न तु पूज्यसे।
सात्त्विकं फलमश्नुषे यदि सत्यवृत्तपरायणो
दनुजसूनुरिवामरद्रुममर्हणं भगवत्पदम् ॥ २ ॥
दम्भमार्गपरायणं यदि सत्फलाय भवत्यहो
इल्वलादिकृताऽपि विप्रवरार्चना विषमा कथम्।
कष्टमेष्यसि दुष्टबुद्धिपरायणो यदि चाऽन्तरे
मृष्ट मृष्ट परं पदं तव दूरतः स्तवकर्मणाम् ॥ ३ ॥
मुक्तताऽपि मुमुक्षुता कपटौघमूलनिकृन्तनी
नीतिरर्भकता तथा यदि नास्ति जन्म निरर्थकम्।
केषु ते गणना भवेद् वद विद्यवेद्यसमान्तरे
भासुरं जनजन्म कर्म निरर्थकं कुरुषे कुतः ॥ ४ ॥

साधुचित्तविखण्डनाद् भगवत्प्रियावपि दानवौ
तत्र साधुविघर्षणादपि राक्षसौ मुनिभक्षकौ।
तेन हीनवलावथो नृपनामदूषकराक्षसौ
कृष्णहिंसन-तत्परावितिि कर्मणो गहना गतिः ॥ ५ ॥
ब्रह्मनिष्ठ - विमाननान्निज - सूनुगीतहरेः पदे
द्वेष आविरभूद्ध्रुवग्रहमान्त्रिके निजसेविते।
दानवस्य च दानधर्मपरायणस्य च रक्षसः
शैवधर्मरतस्य मूलविनाशनोऽप्यघनाशने ॥ ६ ॥
जीवतामपहापयञ्छिवतां दिशत्यतिकौशलात्
पूर्ववत् स्थितविश्वमेष तिरष्करोत्यतिलीलया।
तं गुरुं भज नम्रमोचनकारकं भवतारकं
तत्र शात्रवमत्र यच्छात वृक्षतां पितृकानने ॥ ७ ॥
श्रीगुरोः पदपङ्कजं भजतां सतां सततं हारः
सन्निधाविति सर्वशासनसारमेतदुदीरितम्।
तन्महत्त्वमहाम्बुधेरपरं तटं न हि केचन
प्राप्नुवन्ति परावरज्ञाः पण्डिताः सनकादयः ॥ ८ ॥
शब्दमूलमहो गुरुः शिवजीवविश्वभिदास्पदं
विश्वजीवशिवादिनामत एष एव हि बुध्यते।
वाच्यकोटिनिविष्टमेव हि तत्त्रयं कृतपत्त्रयं
लक्ष्यभूतवपुर्गुरुस्तमु जानते न हि केचन ॥ ९ ॥
वृत्त्यनाश्रितचित्स्वरूपक एष एव समः प्रभो
वृत्तिरूढचिदम्बरं खलु जीव ईश इदं जगत्।
जन्म-मृत्यु-नियामकः परमेश्वरः स तु भोगभुग्
जन्ममृत्यु-निवारकः परमेश्वराददतिरिच्यते ॥१०॥
ब्रह्मरन्ध्रपदं गुरोर्हृदयं शिवस्य निजास्पदं
स्थानमेव हि तत्स्वरूप-विनिर्णयाय भवत्फलम्।
हृद्यतो विषयान् भजत्यथ नैव किञ्चन रन्ध्रगो
यच्छति क्रमतः फलं वद मुक्तिदोऽस्त्यनयोऽस्तु कः॥११॥

तत्स्वरूपविमर्शनं गुरुपादुकामनुसंशितं
तन्मनुस्तु तदीयपूर्णकृपाभरेण हि लभ्यते।
लाभतो गुरुणा सहैक्यविमर्शनं परमं पदं
तत्र मुक्तिवराङ्गना वृणुते स्वयं निजसम्पदा ॥१२॥
तत्र यो विमुखो नरो निजघातकीर्ति निगद्यते
तस्य सम्मुखतां भजन् परमद्वयं भवति क्षणात्।
ऋक्श्रुतिः शतधारमित्यपि नौति तां गुरुपादुकां
कृष्णभिक्षुरिमं स्तवं पदपङ्कजेऽर्पयते गुरोः ॥१३॥
द्रोणपर्वतवासिने नतशासिने मतिकाशिने
हारिणे विपदां मुहुर्मम दायिनेऽखिलसम्पदाम्।
सच्चिदादिसुखाभिधाय यतीश्वराय सहस्रशः
सन्तु मे नतयो दयोदकसागराय दिने दिने ॥१४॥
स्तोत्रमेतदभीष्टसिद्धिद - मासुरव्रत - हारकं
तारकं निजदेशि - केन्द्रपदाब्जयोर्दृढसन्मतेः।
यः पठेत् प्रयतः शुचिः सुविचार्य भूरि दिने दिने
मुच्यते भवपाशपाशित एवमेव मतिर्मम ॥१५॥

इति श्रीमत्कृष्णानन्द-सरस्वतीकृत-गुरुराजस्तवः सम्पूर्णः ॥२३२॥

२३३. दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं तथा निद्रया।
यः साक्षी कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ १ ॥
बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पित-देशकाल-कलनावैचित्र्य-चित्रीकृतम्।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ २ ॥

यस्यैवं स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ३ ॥
नानाच्छिद्रघटोदर - स्मितमहा - दीपप्रभा - भास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत् समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ४ ॥
देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः ।
मायाशक्ति - विलासकल्पितमहा - व्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ५ ॥
राहुग्रस्त - दिवाकरेन्दु - सदृशो माया - समाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत् सुषुप्तः पुमान् ।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ६ ॥
बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा ।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ७ ॥
विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः ।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामित-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ८ ॥
भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराऽचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम् ।
नाऽन्यत् किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद्विभो-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ९ ॥

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे
तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्ध्यानाच्च सङ्कीर्तनात् ।
सर्वात्मत्व - महाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिद्ध्येत् तत् पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ॥१०॥
वटविटपिसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकल - मुनिजनानां ज्ञानदातारमारात् ।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं
जनन - मरण - दुःखच्छेद - दक्षं नमामि ॥११॥
चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यान शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ॥१२॥
ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये ।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१३॥
निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम् ।
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्तये नमः ॥१४॥
मौनव्याख्या - प्रकटित - परब्रह्मतत्त्वं युवानं
वर्षिष्ठान्ते वसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः ।
आचार्येन्द्रं करकलितचिन्मुद्रमानन्दरूपं
स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥१५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं दक्षिणामूर्तिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२३३॥

इति दत्तात्रेयस्तोत्राणि ।

*

हनुमत्स्तोत्राणि

२३४. हनुमत्कवचम्

विनियोगः—अस्य श्रीहनुमत्कवचस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः, वीर-हनुमान् देवता, अनुष्टुप्-छन्दः, मारुतात्मज इति बीजम्, अञ्जना-सूनुरिति शक्तिः, श्रीरामकिङ्कर इति कीलकम्, मम सर्वरक्षार्थं श्रीहनुमत्कवचजपं करिष्ये ।

ध्यानम्

ध्यायेद् बाल-दिवाकर-द्युतिनिभं देवारि-दर्पापहं
देवेन्द्र-प्रमुख-प्रशस्त-यशसं देदीप्यमानं रुचा ।
सुग्रीवादि - समस्त - वानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुण-लोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम् ॥ १ ॥
हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः ।
पातु प्रतीच्यामक्षघ्नः पातु सागरपारगः ॥ २ ॥
उदीच्यामूर्ध्वगः पातु केसरी प्रियनन्दनः ।
अधस्ताद् विष्णुभक्तस्तु पातु मध्ये तु पावनिः ॥ ३ ॥
लङ्काविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरञ्जनः ।
सुग्रीवसचिवः पातु मस्तके वायुनन्दनः ॥ ४ ॥
भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरञ्जनः ।
नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः ॥ ५ ॥
कपोलौ कर्णमूले तु पातु श्रीरामकिङ्करः ।
नासाग्रमञ्जनासूनुः पातु वक्त्रं हरीश्वरः ॥ ६ ॥
पातु कण्ठं तु दैत्यारिः स्कन्धौ पातु सुरार्चितः ।
भुजौ पातु महातेजाः करौ तु चरणायुधः ॥ ७ ॥
लङ्काविदाहकः पातु पृष्ठदेशे निरन्तरम् ।
नाभिं च रामदूतस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः ॥ ८ ॥
गुह्यं पातु महाप्राज्ञः सक्थिनी च शिवाप्रियः ।
ऊरू च जानुनी पातु लङ्का - प्रासाद-भञ्जनः ॥ ९ ॥
जङ्घे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः ।
अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः ॥१०॥
अङ्गान्यमित-सत्त्वाढ्यः पातु पादाङ्गुलीः सदा ।
सर्वाङ्गानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान् ॥११॥
हनूमत्कवचं यस्तु पठेद् विद्वान् विचक्षणः ।
स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥१२॥

त्रिकालमेककालं वा जपेन् मासत्रयं पुनः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति ऐश्वर्यं जयमाप्नुयात् ॥१३॥
नाभिमात्रजले स्थित्वा सप्तवारं पठेद् यदि ।
क्षमा-ऽपस्मार-कुष्ठादि - तापज्वर - निवारणम् ॥१४॥
देवालयेऽश्वत्थमूले स्थित्वा पठति यः पुमान् ।
स पुमान् जयमाप्नोति संग्रामे च स्थलान्तरे ॥१५॥
यः करे धारयेन्नित्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
लिखित्वा पूजयेद् यस्तु स पुमान् जयमाप्नुयात् ॥१६॥
शृङ्खलाबन्धने यस्तु इमं जपति मानवः ।
तत्क्षणान् मुक्तिमाप्नोति कारागेहे तथैव च ॥१७॥
भूर्जपत्रे लिखित्वा तु बध्नीयात् कण्ठदेशतः ।
सर्वकार्यफलं तेषां सर्वत्र विजयो भवेत् ॥१८॥

इति हनुमत्कवचं समाप्तम् ॥२३४॥

२३५. श्रीहनुमदष्टकस्तोत्रम्

श्रीरघुराज-पदाब्ज-निकेतन ! पङ्कजलोचन ! मङ्गलराशे !
चण्डमहाभुज-दण्डसुरारि-विखण्डनपण्डित ! पाहि दयालो ! ।
पातकिनं च समुद्धर मां महतां हि सतामपि मानमुदारं
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥१॥
संसृतिताप - महानलदग्ध - तनूरुहमर्म - तनोरतिवेलं
पुत्र - धन - स्वजनात्म - गृहादिषु सक्तमतेरतिकिल्बिषमूर्तेः ।
केनचिदप्यमलेन पुराकृत - पुण्य - सुपुञ्जलवेन विभो वै
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥२॥
संसृतिकूप - मनल्पमघोरनिदाघ - निदानमजस्रमशेषं
प्राप्य सुदुःख - सहस्रभुजङ्ग - विषैकसमाकुल - सर्वतनोर्मे ।
घोरमहाकृपणापदमेव गतस्य हरे पतितस्य भवाब्धौ
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥३॥

संसृतिसिन्धु - विशाल-कराल - महाबलकाल - झषग्रसनार्तं
व्यग्र - समग्रधियं कृपणं च महामद-नक्र - सुचक्र-हृतासुम् ।
काल - महारसनोर्मि - निपीडितमुद्धर - दीनमनन्यगतिं मां
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥४॥
संसृतिघोर - महागहनेचरतो मणिरञ्जित - पुण्य - सुमूर्तेः
मन्मथभीकर - घोरमहोग्र - मृगप्रवरार्दित - गात्रसुसन्धेः ।
मत्सरताप - विशेषनिपीडितबाह्यमतेश्च कथञ्चिदमेयं
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥५॥
संसृतिवृक्ष - मनेकशताघ - निदानमनन्त - विकर्मसुशाखं
दुःखफलं करणादिपताशमनङ्ग - सुपुष्पमचिन्त्य - सुमूलम् ।
तं ह्यधिरुह्य हरे पतितं शरणागतमेव विमोचय मूढं
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥६॥
संसृतिपन्नग - वक्रभयं करदंष्ट्र - महाविषदग्ध - शरीरं
प्राणविनिर्गम - भीतिसमाकुलमन्धमनाथमतीव विषण्णम् ।
मोहमहाकुहरे पतितं दययोद्धर मामजितेन्द्रियकामं
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥७॥
इन्द्रियनामक - चौरगणैर्हृत - तत्त्वविवेक - महाधनराशिं
संसृतिजाल-निपातितमेव महाबलिभिश्च विखण्डितकायम् ।
त्वत्पदपद्म-मनुत्तममाश्रितमाशु कपीश्वर ! पाहि कृपालो !
त्वां भजतो मम देहि दयाघन ! हे हनुमत् ! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥८॥
ब्रह्म-मरुद्गण-रुद्र- महेन्द्र - किरीट - सकोटि - लसत्पदपीठं
दाशरथिं जपति क्षितिमण्डल एष निधाय सदैव हृदब्जे ।
तस्य हनूमत एव शिवङ्कर - मष्टकमेतदनिष्टहरं वै
यः सततं हि पठेत् स नरो लभतेऽच्युत-रामपदाब्ज-निवासम् ॥९॥

इति श्रीमधुसूदनाश्रम-शिष्याच्युत-विरचितं हनुमदष्टकं सम्पूर्णम् ॥२३८॥

२३९. हनुमदष्टकम् [२]

वीर ! त्वमादिथ रविं तमसा त्रिलोकी
व्याप्ता भयं तदिह कोऽपि न हर्त्तुमीशः ।

देवैः स्तुतस्तमवमुच्य निवारिता भी-
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ १ ॥
भ्रातुर्भयादवसदद्रिवरे कपीशः
शापान्मुने रघुवरं प्रतिवीक्षमाणः ।
आनीय तं त्वमकरोः प्रभुमार्त्तिहीनं
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ २ ॥
विज्ञापयञ्जनकजा - स्थितिमीशवर्यं
सीताविमार्गणपरस्य कपेर्गणस्य ।
प्राणान् ररक्षिथ समुद्रतटस्थितस्य
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ ३ ॥
शोकान्वितां जनकजां कृतवानशोकां
मुद्रां समर्प्य रघुनन्दननामयुक्ताम् ।
हत्वा रिपूनरिपुरं हुतवान् कृशानौ
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ ४ ॥
श्रीलक्ष्मण निहतवान् युधि मेघनादो
द्रोणाचलं त्वमुदपाटय औषधार्थम् ।
आनीय तं विहितवानसुमन्तमाशु
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ ५ ॥
युद्धे दशास्यविहिते किल नागपाशै-
र्बद्धां विलोक्य पृतनां मुमुहे खरारिः ।
आनीय नागभुजमाशु निवारिता भी-
र्जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ ६ ॥
भ्रात्रान्वितं रघुवरं त्वहिलोकमेत्य
देव्यै प्रदातुमनसं त्वहिरावणं त्वाम् ।
सैन्यान्वितं निहतवाननिलात्मजं द्राक्
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ ७ ॥
वीर ! त्वया हि विहितं सुरसर्वकार्यं
मत्सङ्कटं किमिह यत्त्वयका न हार्यम् ।

एतद् विचार्य हर सङ्कटमाशु मे त्वं
जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥ ८ ॥
रक्तवर्णो महाकायो रक्तलाङ्गूलवाञ्छुचिः ।
हनूमान् दुष्टदलनः सदा विजयतेतराम् ॥ ९ ॥
हनुमदष्टकमेतदनुत्तमं सुकवि-भक्त-सुधी-तुलसीकृतम् ।
कपिलदेवबुधाऽनुकृतं तथा सुरगिराऽभयदं सकलार्थदम ।१०।

इति वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय-व्याख्याता-पण्डितश्रीकपिलदेवत्रिपाठिना विरचितं हनुमदष्टकं समाप्तम् ॥२३९॥

●

२४०. शत्रुञ्जयहनुमत्स्तोत्रम्

श्रीमन्तं हनुमन्तमार्तरिपुभिद् - भूभृत्तरुभ्राजितं
चाल्पद्-बालधिबन्धवैरिनिचयं चामीकराद्रिप्रभम् ।
अष्टौ रक्त-पिशङ्ग-नेत्र-नलिनं भ्रूभङ्गमङ्ग-स्फुरत्
प्रोद्यच्चण्ड-मयूख-मण्डल-मुखं दुःखापहं दुःखिनाम् ॥ १ ॥
कौपीनं कटिसूत्र-मौञ्ज्यजिनयुग्देहं विदेहात्मजा
प्राणाधीशपदारविन्दनिरतं स्वान्तं कृतान्तं द्विषाम् ।
ध्यात्वैवं समराङ्गणस्थितमथानीय स्व-हृत्पङ्कजे
सम्पूज्याऽखिल-पूजनोक्त-विधिना सम्प्रार्थयेत् प्रार्थितम्। २ ।
हनुमन्नञ्जनीसूनो ! महाबलपराक्रम ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ३ ॥
मर्कटाधिप ! मार्तण्ड - मण्डल - ग्रास - कारक ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ४ ॥
अक्षयन्नपि पिङ्गाक्ष ! क्षितिशोकक्षयङ्कर ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ५ ॥
रुद्रावतार ! संसारदुःख - भारापहारक ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ६ ॥
श्रीराम - चरणाम्भोज - मधुपायत - मानस ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ७ ॥

बालि - कोदरद - क्लान्त - सुग्रीवो मोचनप्रभो ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ८ ॥
सीता - विरह - वारीश - मग्न - सीतेशतारक ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥ ९ ॥
रक्षोराज - प्रतापाग्नि - दह्यमान - जगद्धन ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१०॥
ग्रस्ताऽशेष-जगत् - स्वास्थ्य - राक्षसाम्भोधिमन्दर ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥११॥
पुच्छ-गुच्छ-स्फुरद् - भूमि - जगद् - दग्धारिपत्तन ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१२॥
जगन्मनो - दुरुल्लंघ्य - पारावारविलङ्घन ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१३॥
स्मृतमात्र - समस्तेष्ट - पूरक ! प्रणतप्रिय ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१४॥
रात्रिञ्चर - चमूराशि - कर्तनैक - विकर्तन ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१५॥
जानकी - जानकीज्यानि - प्रेमपात्र ! परन्तप ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१६॥
भीमादिक - महावीर - वीरवेशावतारक ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१७॥
वैदेही - विरहक्लान्त - रामरोषैक - विग्रह ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१८॥
वज्राङ्गनख - दंष्ट्रेश ! वज्रिवज्रावगुण्ठन ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥१९॥
अखर्व - गर्व - गन्धर्व - पर्वतोद्भेदनस्वर ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२०॥
लक्ष्मणप्राण - सन्त्राण - त्राता तीक्ष्णकरान्वय ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२१॥

रामाधिविप्रयोगार्त भरताद्यार्तिनाशन ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२२॥
द्रोणाचल - समुत्क्षेप - समुत्क्षिप्तारि - वैभव ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२३॥
सीताऽऽशीर्वाद-सम्पन्न ! समस्तावयवाक्षत ! ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२४॥
इत्येवमश्वत्थ-तलोपविष्टः शत्रुञ्जयं नाम पठेत् स्वयं यः ।
स शीघ्रमेवास्त-समस्तशत्रुः प्रमोदते मारुतज-प्रसादात् ॥२५॥

इति लाङ्गूलास्त्रशत्रुञ्जयहनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४०॥

२४१. श्रीसङ्कष्टमोचनस्तोत्रम्

सिन्दूर-पूर-रुचिरो बलवीर्यसिन्धु-र्बुद्धिप्रभावनिधिरद्भुत-वैभव-श्रीः ।
दीनार्तिदाव-दहनो वरदो वरेण्यः सङ्कष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः ॥१॥
सोत्साह-लङ्घित-महार्णव-पौरुषश्री-लङ्कापुरी - प्रदहन-प्रथितप्रभावः ।
घोराहव-प्रमथितारि-चमू-प्रवीरः प्राभञ्जनिर्जयति मर्कटसार्वभौमः ॥२॥

द्रोणाचलानयन - वर्णित - भव्यमूर्तिः
श्रीराम - लक्ष्मण - सहायक - चक्रवर्त्ती ।
काशीस्थ - दक्षिण - विराजित- सौधमल्लः
श्रीमारुतिर्विजयते भगवान् महेशः ॥ ३ ॥
नूनं स्मृतोऽपि दयते भजतां कपीन्द्रः
सम्पूजितो दिशति वाञ्छित-सिद्धिवृद्धिम् ।
सम्मोदकप्रिय उपैति परं प्रहर्षं
रामायण-श्रवणतः पठतां शरण्यः ॥ ४ ॥
श्रीभारत - प्रवर - युद्धरथोद्धत - श्रीः
पार्थैक - केतन - कराल - विशालमूर्त्तिः ।
उच्चैर्घनाघन - घटा - विकटाऽट्टहासः
श्रीकृष्णपक्षभरणः शरणं ममाऽस्तु ॥ ५ ॥
जङ्घालजङ्घ उपमातिविदूरवेगो
मुष्टि - प्रहार - परिमूर्च्छित-राक्षसेन्द्रः ।

श्रीरामकीर्तित - पराक्रमणोद्भवश्रीः
प्राकम्पनिर्विभुरुदञ्चतु भूतये नः ॥ ६ ॥
सीतार्त्ति - दारणपटुः प्रबलः प्रतापी
श्रीराघवेन्द्र - परिरम्भवर - प्रसादः ।
वर्णीश्वरः सविधि - शिक्षित - कालनेमिः
पञ्चाननोऽपनयतां विपदोऽधिदेशम् ॥ ७ ॥

उद्यद्-भानुसहस्र-सन्निभतनुः पीताम्बरालङ्कृतः
प्रोज्ज्वालानल-दीप्यमान-नयनो निष्पिष्ट-रक्षोगणः ।
संवर्तोद्यत-वारिदोद्धत-रवः प्रोच्चैर्गदाविभ्रमः
श्रीमान् मारुतनन्दनः प्रतिदिनं ध्येयो विपद्-भञ्जनः ॥८॥
रक्षःपिशाचभय - नाशनमामयाधि-
प्रोच्चैर्ज्वरापहरण दमनं रिपूणाम् ।
सम्पत्ति - पुत्रकरणं विजयप्रदानं
सङ्कष्टमोचनविभोः स्तवनं नराणाम् ॥ ९ ॥
दारिद्र्य - दुःख - दहनं विजयं विवादे
कल्याण - साधनममङ्गल - वारणं च ।
दाम्पत्य - दीर्घसुख - सर्वमनोरथाप्तिं
श्रीमारुतेः स्तवशतावृतिरातनोति ॥१०॥
स्तोत्रं य एतदनुवासरमस्तकामः
श्रीमारुतिं समनुचिन्त्य पठेत् सुधीरः ।
तस्मै प्रसादसुमुखो वरवानरेन्द्रः
साक्षात्कृतो भवति शाश्वतिकः सहायः ॥११॥
सङ्कष्टमोचनस्तोत्रं शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
महेश्वरेण रचितं मारुतेश्चरणेऽर्पितम् ॥१२॥

इति काशीपीठाधीश्वर-जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामि-श्रीमहेश्वरानन्द-
सरस्वती-विरचितं सङ्कष्टमोचनस्तोत्रं समाप्तम् ॥२४१॥

२४२. हनुमत्स्तुतिः

आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रि-कमनीय-विग्रहम् ।
पारिजात-तरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ १ ॥
गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायण - महामाला - रत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ २ ॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत-राक्षसान्तकम् ॥ ३ ॥
अञ्जनीनन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ४ ॥
अतुलित - बलधामं स्वर्ण - शैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकल - गुण - निधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ५ ॥

इति हनुमत्स्तुतिः समाप्ता ॥२४२॥

नवग्रहस्तोत्राणि

२४३. सूर्याष्टकम्

यस्योदयेनाब्जवनं प्रसन्नं प्रीतो भवत्याशु रथाङ्गवर्गः ।
गावो मृगास्सम्मुदिताश्चरन्ति मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ १ ॥
आशाः समस्ता मुदिता भवन्ति गाढं तमो द्यौर्विजहाति विष्वक् ।
ग्राम्या जनाः कर्मणि संप्रवृत्ताः मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ २ ॥
स्वाहा-स्वधाकाररवं द्विजेन्द्राः कुर्वन्ति कुत्रापि च वेदपाठम् ।
पान्था मुदा सर्वदिशो व्रजन्ति मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ ३ ॥
देवालये क्वापि नराश्च नार्यः पुष्पादिभिर्देववरं यजन्ति ।
गायन्ति नृत्यन्ति नमन्ति भक्त्या मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ ४ ॥
छात्राः सतीर्थ्यैरथवा वयस्यैः सार्धं हसन्तो निकटं गुरूणाम् ।
गच्छन्ति विद्याध्ययनाय शीघ्रं मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ ५ ॥

शीतार्तदेहा मनुजाः प्रसन्नाः कुर्वन्ति कार्याणि समीहितानि।
विद्यां यथा प्राप्य विदः प्रसन्ना मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ ६ ॥
येनैहिकामुष्मिक - कार्यजातं देवादिसन्तोषकरं विभाति।
योऽसौ विवस्वान् सकलार्थदाता मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ ७ ॥
ब्रह्मे शा-हर्यादि-समस्तदेवाः श्रुता हि नो चाक्षुषगोचरास्ते।
साक्षादसौ दृष्टिपुरागतो यो मार्त्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥ ८ ॥
सूर्याष्टकमिदं पुण्यं ध्यात्वा सूर्यं पठेद्यदि।
रोगाः सर्वे विनश्यन्ति नूनं सूर्यप्रसादतः ॥ ९ ॥

इति पूज्यपाद-स्वामिश्रीमदनन्तानन्दसरस्वतीविरचितं
श्रीसूर्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥२४३॥

२४४. सूर्यमङ्गलस्तोत्रम्

भास्वान् काश्यप-गोत्रजो-ऽरुणरुचिर्यः सिंहराशीश्वरः
षट्त्रिस्थो दश शोभनो गुरु-शशी भौमेषु मित्रं सदा।
शुक्रो मन्दरिपु - कलिङ्गजनितश्चा - ऽग्नीश्वरो देवते
मध्ये वर्तुल-पूर्वदिग्-दिनकरः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

इति सूर्यमङ्गलस्तोत्रम् ॥२४४॥

२४५. चन्द्रकवचम्[1]

अस्य श्रीचन्द्रकवचस्तोत्रमन्त्रस्य गौतम-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीचन्द्रो देवता, चन्द्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

समं चतुर्भुजं वन्दे केयूरमुकुटोज्ज्वलम्।
वासुदेवस्य नयनं शङ्करस्य च भूषणम् ॥ १ ॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं शशिनः कवचं शुभम्।
शशी पातु शिरोदेशं भालं पातु कलानिधिः ॥ २ ॥
चक्षुषी चन्द्रमा पातु श्रुती पातु निशापतिः।
प्राणं क्षपाकरः पातु मुखं कुमुदबान्धवः ॥ ३ ॥

---

१. कवचं २०९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्।

पातु कण्ठं च मे सोमः स्कन्धे जैवातृकस्तथा ।
करौ सुधाकरः पातु वक्षः पातु निशाकरः ॥ ४ ॥
हृदयं पातु मे चन्द्रो नाभिं शङ्करभूषणः ।
मध्यं पातु सुरश्रेष्ठः कटिं पातु सुधाकरः ॥ ५ ॥
ऊरू तारापतिः पातु मृगाङ्को जानुनी सदा ।
अब्धिज पातु मे जंघे पातु पादौ विधुः सदा ॥ ६ ॥
सर्वाण्यन्यानि चाङ्गानि पातु चन्द्रोऽखिलं वपुः ।
एतद्धि कवचं दिव्यं भुक्ति - मुक्ति - प्रदायकम् ।
यः पठेच्छृणुयाद् वाऽपि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७ ॥

इति चन्द्रकवचं सम्पूर्णम् ॥२४५॥

२४६. चन्द्राऽष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

अस्य श्रीचन्द्राष्टाविंशतिनामस्तोत्रस्य गौतम ऋषिः, सोमो देवता, विराट् छन्द, चन्द्रप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

चन्द्रस्य शृणु नामानि शुभदानि महीपते ।
यानि श्रुत्वा नरो दुःखान् मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ १ ॥
सुधाकरश्च सोमश्च ग्लौरजः कुमुदप्रियः ।
लोकप्रियः शुभ्रभानुश्चन्द्रमा रोहिणीपतिः ॥ २ ॥
शशी हिमकरो राजा द्विजराजो निशाकरः ।
आत्रेय इन्दुः शीतांशुरोषधीशः कलानिधिः ॥ ३ ॥
जैवातृको रमाभ्राता क्षीरोदार्णवसम्भवः ।
नक्षत्रनायकः शम्भुशिरश्चूडामणिर्विभुः ॥ ४ ॥
तापहर्ता नभोदीपो नामान्येतानि यः पठेत् ।
प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तस्तस्य पीडा विनश्यति ॥ ५ ॥
तद्दिने च पठेद्यस्तु लभेत् सर्वं समीहितम् ।
ग्रहादीनां च सर्वेषां भवेच्चन्द्रबलं सदा ॥ ६ ॥

इति श्रीचन्द्राष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४६॥

२४७. चन्द्रमङ्गलस्तोत्रम्

चन्द्रः कर्कटकप्रभुः सितनिभश्चात्रेय-गोत्रोद्भव-
श्चाग्नेयश्चतुरस्र - वारुणमुखश्चापोऽप्युमाधीश्वरः ।
षट् सप्तानि दशैक-शोभनफल-शौरिः प्रियोऽर्को गुरुः
स्वामी यामुनदेशजो हिमकरः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

इति चन्द्रमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥२४७॥

२४८. मङ्गलकवचम्

अस्य श्रीअङ्गारक-कवचस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, अङ्गारको देवता, भौमप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी चतुर्भुजो मेषगमो गदाभृत् ।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली सदा मम स्याद् वरदः प्रशान्तः ॥१॥
अङ्गारकः शिरो रक्षेन् मुखं वै धरणीसुतः ।
श्रवौ रक्ताम्बरः पातु नेत्रे मे रक्तलोचनः ॥२॥
नासां शक्तिधरः पातु मुखं मे रक्तलोचनः ।
भुजौ मे रक्तमाली च हस्तौ शक्तिधरस्तथा ॥३॥
वक्षः पातु वराङ्गश्च हृदयं पातु रोहितः ।
कटिं मे ग्रहराजश्च मुखं चैव धरासुतः ॥४॥
जानुजङ्घे कुजः पातु पादौ भक्तप्रियः सदा ।
सर्वाण्यन्यानि चाङ्गानि रक्षेन्मे मेषवाहनः ॥५॥
य इदं कवचं दिव्यं सर्वशत्रुनिवारणम् ।
भूत - प्रेत - पिशाचानां नाशनं सर्वसिद्धिदम् ॥६॥
सर्वरोगहरं चैव सर्वसम्पत्प्रदं शुभम् ।
भुक्ति - मुक्तिप्रदं नृणां सर्व - सौभाग्य - वर्धनम् ।
रोगबन्धविमोक्षं च सत्यमेतन्न संशयः ॥७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मङ्गलकवचं सम्पूर्णम् ॥२४८॥

२४९. ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्रम्

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः ।
स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः ॥ १ ॥

लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजः कुजो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः॥ २॥
अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
वृष्टेः कर्ताऽपहर्ता च सर्वकामफलप्रदः॥ ३॥
एतानि कुजनामानि नित्यं यः श्रद्धया पठेत्।
ऋणं न जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात्॥ ४॥
धरणी - गर्भसम्भूतं विद्युत्कान्ति - समप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्॥ ५॥
स्तोत्रमङ्गारकस्यैतत् पठनीयं सदा नृभिः।
न तेषां भौमजा पीडा स्वल्पाऽपि भवति क्वचित्॥ ६॥
अङ्गारक महाभाग भगवन् भक्तवत्सल!।
त्वां नमामि ममाऽशेषमृणमाशु विनाशय॥ ७॥
ऋण - रोगादि-दारिद्र्यं ये चाऽन्ये ह्यपमृत्यवः।
भय - क्लेश - मनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा॥ ८॥
अतिवक्र दुराराध्य भोगमुक्तजितात्मनः।
तुष्टो ददासि साम्राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्॥ ९॥
विरिञ्चि-शक्र-विष्णूनां मनुष्याणां तु का कथा।
तेन त्वं सर्वसत्त्वेन ग्रहराजो महाबलः॥१०॥
पुत्रान् देहि धनं देहि त्वामस्मि शरणं गतः।
ऋण-दारिद्र्य-दुःखेन शत्रूणां च भयात्ततः॥११॥
एभिर्द्वादशभिः श्लोकैर्यः स्तौति च धरासुतम्।
महतीं श्रियमाप्नोति ह्यपरो धनदो युवा॥१२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे भार्गवप्रोक्तं ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥२४९॥

२५०. अङ्गारकस्तोत्रम्

अस्य श्री-अङ्गारकस्तोत्रस्य विरूपाङ्गिरस ऋषिः, अग्निर्देवता, गायत्री छन्दः, भौमप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

अङ्गारकः शक्तिधरो लोहिताङ्गो धरासुतः।
कुमारो मङ्गलो भौमो महाकायो धनप्रदः॥ १॥

ऋणहर्ता दृष्टिकर्ता रोगकृद्रोगनाशनः ।
विद्युत्प्रभो व्रणकरः कामदो धनहृत् कुजः ॥ २ ॥
सामगानप्रियो रक्तवस्त्रो रक्तायतेक्षणः ।
लोहितो रक्तवर्णश्च सर्वकर्मावबोधकः ॥ ३ ॥
रक्तमाल्यधरो हेमकुण्डली ग्रहनायकः ।
नामान्येतानि भौमस्य यः पठेत् सततं नरः ॥ ४ ॥
ऋणं तस्य च दौर्भाग्यं दारिद्रयं च विनश्यति ।
धनं प्राप्नोति विपुलं स्त्रियं चैव मनोरमाम् ॥ ५ ॥
वंशोद्योतकरं पुत्रं लभते नाऽत्र संशयः ।
योऽर्चयेदह्नि भौमस्य मङ्गलं बहुपुष्पकैः ॥ ६ ॥
सर्वा नश्यति पीडा च तस्य ग्रहकृता ध्रुवम् ॥ ७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽङ्गारकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५०।

२५१. भौममङ्गलस्तोत्रम्

भौमो दक्षिणदिक्-त्रिकोण-यमदिग्-विघ्नेश्वरो रक्तभः
स्वामी वृश्चिक-मेषयोः सुरगुरुश्चाऽर्कः शशी सौहृदः ।
ज्ञोऽरिः षट्त्रिफलप्रदश्च वसुधा स्कन्दौ क्रमाद् देवते
भारद्वाजकुलोद्भवः क्षितिसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

इति भौममङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥२५१॥

२५२. बुधकवचम्

अस्य श्रीबुधकवचस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, बुधो देवता, बुधप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

बुधस्तु पुस्तकधरः कुङ्कुमस्य समद्युतिः ।
पीताम्बरधरः पातु पीतमाल्यानुलेपनः ॥ १ ॥
कटिं च पातु मे सौम्यः शिरोदेशं बुधस्तथा ।
नेत्रे ज्ञानमयः पातु श्रोत्रे पातु निशाप्रियः ॥ २ ॥
घ्राणं गन्धप्रियः पातु जिह्वां विद्याप्रदो मम ।
कण्ठं पातु विधोः पुत्रो भुजौ पुस्तकभूषणः ॥ ३ ॥
वक्षः पातु वराङ्गश्च हृदयं रोहिणीसुतः ।
नाभिं पातु सुराराध्यो मध्यं पातु खगेश्वरः ॥ ४ ॥

जानुनी रोहिणेयश्च पातु जङ्घेऽखिलप्रदः ।
पादौ मे बोधनः पातु पातु सौम्योऽखिलं वपुः ॥ ५ ॥
एतद्धि कवचं दिव्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वरोगप्रशमनं सर्वदुःख - निवारणम् ॥ ६ ॥
आयुरारोग्यशुभदं पुत्र - पौत्र - प्रवर्धनम् ।
यः पठेच्छृणुयाद् वाऽपि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे बुधकवचं सम्पूर्णम् ॥२५२॥

२५३. बुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रम्

अस्य श्रीबुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः, त्रिष्टुप्-छन्दः, बुधो देवता, बुधप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

बुधो बुद्धिमतां श्रेष्ठो बुद्धिदाता धनप्रदः ।
प्रियङ्गु-कलिकाश्यामः कञ्जनेत्रो मनोहरः ॥ १ ॥
ग्रहोपमो रौहिणेयो नक्षत्रेशो दयाकरः ।
विरुद्धकार्यहन्ता च सौम्यो बुद्धिविवर्धनः ॥ २ ॥
चन्द्रात्मजो विष्णुरूपी ज्ञानी ज्ञो ज्ञानिनायकः ।
ग्रहपीडाहरो दार - पुत्र - धान्य - पशुप्रदः ॥ ३ ॥
लोकप्रियः सौम्यमूर्तिर्गुणदो गुणिवत्सलः ।
पञ्चविंशतिनामानि बुधस्यैतानि यः पठेत् ॥ ४ ॥
स्मृत्वा बुधः सदा तस्य पीडा सर्वा विनश्यति ।
तद्दिने वा पठेद्यस्तु लभते स मनोगतम् ॥ ५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे बुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५३॥

२५४ बुधमङ्गलस्तोत्रम्

सौम्योदङ्मुख - पीतवर्ण - मगधश्चात्रेय - गोत्रोद्भवो
बाणेशानदिशः सुहृच्छनिभृगुः शत्रुः सदा शीतगुः ।
कन्या युग्मपतिर्दशाष्ट - चतुरः षड्नेत्रकः शोभनो
विष्णुः पौरुषदेवते शशिसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

इति बुधमङ्गलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५४॥

२५५. बृहस्पतिकवचम्

अस्य श्रीबृहस्पतिकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ईश्वर-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, गुरुर्देवता, गं बीजं, श्रीशक्तिः, क्लीं कीलकं, गुरुप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

अभीष्टफलदं देवं सर्वज्ञं सुरपूजितम्।
अक्षमालाधरं शान्तं प्रणमामि बृहस्पतिम् ॥ १ ॥
बृहस्पतिः शिरः पातु ललाटं पातु मे गुरुः।
कर्णौ सुरगुरुः पातु नेत्रे मेऽभीष्टदायकः ॥ २ ॥
जिह्वां पातु सुराचार्यो नासां मे वेदपारगः।
मुखं मे पातु सर्वज्ञो कण्ठं मे देवतागुरुः ॥ ३ ॥
भुजावाङ्गिरसः पातु करौ पातु शुभप्रदः।
स्तनौ मे पातु वागीशः कुक्षिं मे शुभलक्षणः ॥ ४ ॥
नाभिं देवगुरुः पातु मध्यं पातु सुखप्रदः।
कटिं पातु जगद्वन्द्य ऊरू मे पातु वाक्पतिः ॥ ५ ॥
जानुजङ्घे सुराचार्यो पादौ विश्वात्मकस्तथा।
अन्यानि यानि चाङ्गानि रक्षेन्मे सर्वतो गुरुः ॥ ६ ॥
इत्येतत् कवचं दिव्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
सर्वान् कामानवाप्नोति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीब्रह्मयामले बृहस्पतिकवचं सम्पूर्णम् ॥२५५॥

२५६. बृहस्पतिस्तोत्रम्

अस्य श्रीबृहस्पतिस्तोत्रस्य गृत्समद-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, बृहस्पतिर्देवता, बृहस्पतिप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

गुरुर्बृहस्पतिर्जीवः सुराचार्यो विदाम्बरः।
वागीशो धिषणो दीर्घश्मश्रुः पीताम्बरो युवा ॥ १ ॥
सुधादृष्टिर्ग्रहाधीशो ग्रहपीडापहारकः।
दयाकरः सौम्यमूर्तिः सुराच्र्यः कुड्मलद्युतिः ॥ २ ॥
लोकपूज्यो लोकगुरुर्नीतिज्ञो नीतिकारकः।
तारापतिश्चाङ्गिरसो वेदवैद्यपितामहः ॥ ३ ॥

भक्त्या बृहस्पतिं स्मृत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
अरोगी बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् स भवेन्नरः ॥ ४ ॥
जीवेद् वर्षशतं मर्त्यो पापं नश्यति नश्यति ।
यः पूजयेद् गुरुदिने पीतगन्धाक्षताम्बरैः ॥ ५ ॥
पुष्पदीपोपहारैश्च पूजयित्वा बृहस्पतिम् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पीडा शान्तिर्भवेद् गुरोः ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे बृहस्पतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५६॥

२५७. बृहस्पतिमङ्गलस्तोत्रम्

जीवश्चाङ्गिर - गोत्रजोत्तरमुखो दीर्घोत्तरा संस्थितः
पीतोऽश्वत्थ-समिद्ध-सिन्धुजनितश्चापोऽथ मीनाधिपः ।
सूर्येन्दु - क्षितिज - प्रियो बुध - सितौ शत्रूसमाश्चापरे
सप्ताङ्कद्विभवः शुभः सुरगुरुः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

इति बृहस्पतिमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥२५७॥

२५८. शुक्रकवचम्

मृणाल-कुन्देन्दु-पयोज-सुप्रभं पीताम्बरं प्रसृतमक्षमालिनम् ।
समस्तशास्त्रार्थविधिं महान्तं ध्यायेत् कविं वाञ्छितमर्थसिद्धये॥१॥
शिरो मे भार्गवः पातु भालं पातु ग्रहाधिपः ।
नेत्रे दैत्यगुरुः पातु श्रोत्रे मे चन्दनद्युतिः ॥२॥
पातु मे नासिकां काव्यो वदनं दैत्यवन्दितः ।
वचनं चोशनाः पातु कण्ठं श्रीकण्ठभक्तिमान् ॥३॥
भुजौ तेजोनिधिः पातु कुक्षिं पातु मनोव्रजः ।
नाभिं भृगुसुतः पातु मध्यं पातु महीप्रियः ॥४॥
कटिं मे पातु विश्वात्मा ऊरू मे सुरपूजितः ।
जानुं जाड्यहरः पातु जङ्घे ज्ञानवतां वरः ॥५॥
गुल्फौ गुणनिधिः पातु पातु पादौ वराम्बरः ।
सर्वाण्यङ्गानि मे पातु स्वर्णमालापरिष्कृतः ॥६॥
य इदं कवचं दिव्यं पठति श्रद्धयान्वितः ।
न तस्य जायते पीडा भार्गवस्य प्रसादतः ॥७॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे शुक्रकवचं सम्पूर्णम् ॥२५८॥

२५९. शुक्रस्तवराजः

अस्य श्रीशुक्रस्तवराजस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, शुक्रो देवता, शुक्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

नमस्ते भार्गवश्रेष्ठ दैत्य - दानव - पूजित ।
वृष्टिरोधप्रकर्त्रे च वृष्टिकर्त्रे नमो नमः ॥ १ ॥
देवयानिपितस्तुभ्यं वेदवेदाङ्गपारग ।
परेण तपसा शुद्धः शङ्करो लोकसुन्दरः ॥ २ ॥
प्राप्तो विद्यां जीवनाख्यां तस्मै शुक्रात्मने नमः ।
नमस्तस्मै भगवते भृगुपुत्राय वेधसे । ३ ॥
तारामण्डलमध्यस्थ स्वभासासिताम्बर ।
यस्योदये जगत्सर्वं मङ्गलार्हं भवेदिह । ४ ॥
अस्तं यस्ते ह्यरिष्टं स्यात्तस्मै मङ्गलरूपिणे ।
त्रिपुरावासिनो दैत्यान् शिवबाणप्रपीडितान् ॥ ५ ॥
विद्ययाऽजीवयच्छुक्रो नमस्ते भृगुनन्दन ।
ययातिगुरवे तुभ्यं नमस्ते कविनन्दन ॥ ६ ॥
वलिराज्यप्रदो जीवस्तस्मै जीवात्मने नमः ।
भार्गवाय नमस्तुभ्यं पूर्वगीर्वाणवन्दित ॥ ७ ॥
जीवपुत्राय यो विद्यां प्रादात्तस्मै नमो नमः ।
नमः शुक्राय काव्याय भृगुपुत्राय धीमहि ॥ ८ ॥
नमः कारणरूपाय नमस्ते कारणात्मने ।
स्तवराजमिमं पुण्यं भार्गवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि लभते वाञ्छितं फलम् ।
पुत्रकामो लभेत् पुत्रान् श्रीकामो लभते श्रियम् ॥१०॥
राज्यकामो लभेद्राज्यं स्त्रीकामः स्त्रियमुत्तमाम् ।
भृगुवारे प्रयत्नेन पठितव्यं समाहितैः ॥११॥
अन्यवारे तु होरायां पूजयेद् भृगुनन्दनम् ।
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् भयार्तो मुच्यते भयात् ॥१२॥

यद्यत् प्रार्थयते जन्तुस्तत्तत् प्राप्नोति सर्वदा।
प्रातःकाले प्रकर्तव्या भृगुपूजा प्रयत्नतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नुयाच्छिवसन्निधिम् ॥१३॥

इति श्रीब्रह्मयामले शुक्रस्तवराजः सम्पूर्णः ॥२५९॥

२६०. शुक्रमङ्गलस्तोत्रम्

शुक्रो भार्गवगोत्रजः सितनिभः प्राचीमुखः पूर्वदिक्
पञ्चाङ्गो वृषभस्तुलाधिप-महाराष्ट्राधिपोदुम्बरः।
इन्द्राणी मघवानुभौ बुध-शनी मित्रार्क-चन्द्रौ रिपू
षष्ठो द्विर्दश-वर्जितो भृगुसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

इति शुक्रमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥२६०॥

२६१. शनिवज्रपञ्जरकवचम्

नीलाम्बरो नीलवपुः कीरीटी गृध्रस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान्।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रसन्नः सदा मम स्याद् वरदः प्रशान्तः ॥१॥

ब्रह्मा उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शनिपीडाहरं महत्।
कवचं शनिराजस्य सौरेरिदमनुत्तमम् ॥ २ ॥
कवचं देवतावासं वज्रपञ्जरसंज्ञकम्।
शनैश्चरप्रीतिकरं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥ ३ ॥
ॐ श्रीशनैश्चरः पातु भालं मे सूर्यनन्दनः।
नेत्रे छायात्मजः पातु पातु कर्णौ यमानुजः ॥ ४ ॥
नासां वैवस्वतः पातु मुखं मे भास्करः सदा।
स्निग्धकण्ठश्च मे कण्ठं भुजौ पातु महाभुजः ॥ ५ ॥
स्कन्धौ पातु शनिश्चैव करौ पातु शुभप्रदः।
वक्षः पातु यमभ्राता कुक्षिं पात्वसितस्तथा ॥ ६ ॥
नाभिं ग्रहपतिः पातु मन्दः पातु कटिं तथा।
ऊरू ममाऽन्तकः पातु यमो जानुयुगं तथा ॥ ७ ॥
पदौ मन्दगतिः पातु सर्वाङ्गं पातु पिप्पलः।
अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि रक्षेन् मे सूर्यनन्दनः ॥ ८ ॥

इत्येतत् कवचं दिव्यं पठत् सूर्यसुतस्य यः।
न तस्य जायते पीडा प्रीतो भवति सूर्यजः ॥ ९ ॥
व्यय-जन्म-द्वितीयस्थो मृत्युस्थानगतोऽपि वा।
कलत्रस्थो गतो वाऽपि सुप्रीतस्तु सदा शनिः ॥१०॥
अष्टमस्थे सूर्यसुते व्यये जन्मद्वितीयगे।
कवचं पठते नित्यं न पीडा जायते क्वचित् ॥११॥
इत्येतत् कवचं दिव्यं सौरेर्यन्निर्मितं पुरा।
द्वादशा-ऽष्टम - जन्मस्थ - दोषान्नाशयते सदा।
जन्मलग्नस्थितान् दोषान् सर्वान्नाशयते प्रभुः ॥१२॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्म-नारदसंवादे शनिवज्रपञ्जरकवचं सम्पूर्णम्।

२६२. शनैश्चरस्तोत्रम्

दशरथ उवाच

कोणोऽन्तको रौद्र-यमोऽथ बभ्रुः कृष्णः शनिः पिङ्गलमन्दसौरिः।
नित्यं स्मृतो यो हरते च पीडां तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥१॥
सुराऽसुराः किंपुरुषोरगेन्द्रा गन्धर्व - विद्याधर - पन्नगाश्च।
पीडयन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥२॥
नरा नरेन्द्राः पशवो मृगेन्द्रा वन्याश्च ये कीट - पतङ्गभृङ्गाः।
पीडयन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥३॥
देशाश्च दुर्गाणि वनानि यत्र सेनानिवेशाः पुरपत्तनानि।
पीडयन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥४॥
तिलैर्यवैर्माषगुडान्नदानैर्लोहेन नीलाम्बरदानतो वा।
प्रीणाति मन्त्रैर्निजवासरे च तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥५॥
प्रयागकूले यमुनातटे च सरस्वतीपुण्यजले गुहायाम्।
यो योगिनां ध्यानगताऽपि सूक्ष्मस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥६॥
अन्यप्रदेशात् स्वगृहं प्रविष्टस्तदीयवारे स नरः सुखी स्यात्।
गृहाद्गतो यो न पुनः प्रयाति तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥७॥
स्रष्टा स्वयम्भूर्भुवनत्रयस्य त्राता हरीशो हरते पिनाकी।
एकस्त्रिधा ऋग्यजुःसाममूर्तिस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥८॥

शन्यष्टकं यः प्रयतः प्रभाते नित्यं सुपुत्रैः पशुबान्धवैश्च ।
पठेत्तु सौख्यं भुवि भोगयुक्तः प्राप्नोति निर्वाणपदं तदन्ते ॥ ९ ॥
कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥१०॥
एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
शनैश्चरकृता पीडा न कदाचिद् भविष्यति ॥११॥
इति श्रीब्रह्माण्डपुराणोक्तं शनैश्चरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२६२॥

२६३. शनिमङ्गलस्तोत्रम्

मन्दः कृष्णनिभस्तु पश्चिममुखः सौराष्ट्रकः काश्यपः
स्वामी नक्रभ-कुम्भयोर्बुध-सितौ मित्रे समश्चाऽङ्गिराः ।
स्थानं पश्चिमदिक् प्रजापति - यमौ देवौ धनुष्यासनः
षट्त्रिस्थः शुभकृच्छनी रविसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

२६४. राहुकवचम्

प्रणमामि सदा राहुं शूर्पाकारं किरीटिनम् ।
सैंहिकेयं करालास्यं लोकानामभयप्रदम् ॥ १ ॥
नीलाम्बरः शिरः पातु ललाटे लोकवन्दितः ।
चक्षुषी पातु मे राहुः श्रोत्रे त्वर्धं शरीरवान् ॥ २ ॥
नासिकां मे धूम्रवर्णः शूलपाणिर्मुखं मम ।
जिह्वां मे सिंहिकासूनुः कण्ठं मे कठिनांघ्रिकः ॥ ३ ॥
भुजङ्गेशो भुजौ पातु नीलमाल्याम्बरः करौ ।
पातु वक्षःस्थलं मन्त्री पातु कुक्षिं विधुन्तुदः ॥ ४ ॥
कटिं मे विकटः पातु ऊरू मे सुरपूजितः ।
स्वर्भानुर्जानुनी पातु जङ्घे मे पातु जाड्यहा ॥ ५ ॥
गुल्फौ ग्रहपतिः पातु पादौ मे भीषणाकृतिः ।
सर्वाण्यङ्गानि मे पातु नीलचन्दनभूषणः ॥ ६ ॥
राहोरिदं कवचमृद्धिदवस्तुदं यो
भक्त्या पठत्यनुदिनं नियतः शुचिः सन् ।
प्राप्नोति कीर्तिमतुलां श्रियमृद्धिमायु-
रारोग्यमात्मविजयं च हि तत्प्रसादात् ॥ ७ ॥
इति श्रीमहाभारतोक्तं राहुकवचं सम्पूर्णम् ॥२६४॥

२६५. राहुस्तोत्रम्

राहुर्दानवमन्त्री च सिंहिकाचित्तनन्दनः ।
अर्धकायः सदा क्रोधी चन्द्रादित्यविमर्दनः ॥ १ ॥
रौद्रो रुद्रप्रियो दैत्यः स्वर्भानुर्भानुभीतिदः ।
ग्रहराजः सुधापायी राकातिथ्यभिलाषुकः ॥ २ ॥
कालदृष्टिः कालरूपः श्रीकण्ठहृदयाश्रयः ।
विधुन्तुदः सैंहिकेयो घोररूपो महाबलः ॥ ३ ॥
ग्रहपीडाकरो दंष्ट्री रक्तनेत्रो महोदरः ।
पञ्चविंशतिनामानि स्मृत्वा राहुं सदा नरः ॥ ४ ॥
यः पठेन्महती पीडा तस्य नश्यति केवलम् ।
आरोग्यं पुत्रमतुलां श्रियं धान्यं पशूंस्तथा ॥ ५ ॥
ददाति राहुस्तस्मै यः पठते स्तोत्रमुत्तमम् ।
सततं पठते यस्तु जीवेद् वर्षशतं नरः ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे राहुस्तोत्रं सम्पूर्णम् । २६५॥

२६६. राहुमङ्गलस्तोत्रम्

राहुः सिंहलदेशजश्च निरृतिः कृष्णाङ्गशूर्पासनो
यः पैठीनसि गोत्रसम्भवसमिद् दूर्वामुखो दक्षिणः ।
यः सर्पाद्यधिदैवते च निरृतिः प्रत्याधिदेवः सदा
षट्त्रिस्थः शुभकृच्च सिंहिकसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

२६७. केतुकवचम्

केतुं करालवदनं चित्रवर्णं किरीटिनम् ।
प्रणमामि सदा केतुं ध्वजाकारं ग्रहेश्वरम् ॥ १ ॥
चित्रवर्णः शिरः पातु भालं धूम्रसमद्युतिः ।
पातु नेत्रे पिङ्गलाक्षः श्रुती मे रक्तलोचनः ॥ २ ॥
घ्राणं पातु सुवर्णाभश्चिबुकं सिंहिकासुतः ।
पातु कण्ठं च मे केतुः स्कन्धौ पातु ग्रहाधिपः ॥ ३ ॥
हस्तौ पातु सुरश्रेष्ठः कुक्षिं पातु महाग्रहः ।
सिंहासनः कटिं पातु मध्यं पातु महासुरः ॥ ४ ॥

ऊरू पातु महाशीर्षो जानुनी मेऽतिकोपनः ।
पातु पादौ च मे क्रूरः सर्वाङ्गं नरपिङ्गलः ॥ ५ ॥
य इदं कवचं दिव्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
सर्वशत्रुविनाशं च धारणाद् विजयी भवेत् ॥ ६ ॥
इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे केतुकवचं सम्पूर्णम् ॥२६७॥

२६८. केतुपञ्चविंशतिनामस्तोत्रम्

केतुः कालः कलयिता धूम्रकेतुर्विवर्णकः ।
लोककेतुर्महाकेतुः सर्वकेतुर्भयप्रदः ॥ १ ॥
रौद्रो रुद्रप्रियो रुद्रः क्रूरकर्मा सुगन्धधृक् ।
पलाश - धूम - सङ्काशश्चित्र - यज्ञोपवीतधृक् ॥ २ ॥
तारागणविमर्दी च जैमिनेयो ग्रहाधिपः ।
पञ्चविंशतिनामानि केतोर्यः सततं पठेत् ॥ ३ ॥
तस्य नश्यति बाधा च सर्वकेतुप्रसादतः ।
धन-धान्य-पशूनां च भवेद् वृद्धिर्न संशयः ॥ ४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे केतुपञ्चविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२६८॥

२६९. केतुमङ्गलस्तोत्रम्

केतुर्जैमिनिगोत्रजः कुशसमृद् वायव्यकोणे स्थित-
श्चित्राङ्गध्वज-लाञ्छनो हिमगुहो यो दक्षिणाशामुखः ।
ब्रह्मा चैव सचित्र-चित्रसहितः प्रत्याधिदेवः सदा
षट्त्रिस्थः शुभकृच्च बर्बरपतिः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

२७०. नवग्रहस्तोत्रम्

जपा - कुसुम - सङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥ १ ॥
दधि - शङ्ख - तुषाराभं क्षीरोदार्णव - सम्भवम् ।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम् ॥ २ ॥
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम् ।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥

प्रियङ्गु - कलिकाश्यामं रूपेणाऽप्रतिमं बुधम् ।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम् ।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥
हिमकुन्द - मृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम् ।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥
नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम् ॥ ७ ॥
अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् ।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥
पलाश - पुष्प - सङ्काशं तारकाग्रहमस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥ ९ ॥
इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत् सुसमाहितः ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशान्तिर्भविष्यति ॥१०॥
नर-नारी-नृपाणां च भवेत् दुःस्वप्ननाशनम् ।
ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ॥११॥
ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्करा-ऽग्नि - समुद्भवाः ।
ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूते न संशयः ॥१२॥

इति व्यासविरचितं नवग्रहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२७०॥

२७१. नवग्रहपीडाहरस्तोत्रम्

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः ।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां हरतु मे रविः ॥ १ ॥
रोहिणीशः सुधामूर्तिः सुधामात्रः सुधाशनः ।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां हरतु मे विधुः ॥ २ ॥
भूमिपुत्रो महातेजा जगतां भयकृत् सदा ।
वृष्टिकृद् वृष्टिहर्ता च पीडां हरतु मे कुजः ॥ ३ ॥
उत्पातरूपो जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः ।
सूर्यप्रियकरो विद्वान् पीडां हरतु मे बुधः ॥ ४ ॥

देवमन्त्री विशालाक्षः सदा लोकहिते रतः ।
अनेकशिष्यसम्पूर्णः पीडां हरतु मे गुरुः ॥ ५ ॥
दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्राणदश्च महामतिः ।
प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां हरतु मे भृगुः ॥ ६ ॥
सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः ।
मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां हरतु मे शनिः ॥ ७ ॥
महाशिरो महावक्त्रो दीर्घदंष्ट्रो महाबलः ।
अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां हरतु मे शिखी ॥ ८ ॥
अनेकरूपवर्णैश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
उत्पातरूपो जगतां पीडां हरतु मे तमः ॥ ९ ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तं नवग्रहपीडाहरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२७१॥

२७२. एकश्लोकी-नवग्रहस्तोत्रम्

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनि-राहु-केतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

इत्येकश्लोकी-नवग्रहस्तोत्रं समाप्तम् ॥२७२॥

इति नवग्रहस्तोत्राणि ।

•

वेदान्तस्तोत्राणि

२७३. वेदान्तस्तोत्रम्

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः ।
मुक्तिर्नैज - सुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादि-त्रितयं प्रमाणमखिलाऽऽम्नायैकवेद्यो हरिः ॥

२७४. निर्वाणदशकम्

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः ।
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।१।
न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणा ध्यानयोगादयोऽपि ।
अनात्माश्रयोऽहं ममाध्यासहीनात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।२।

न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।३।
न शाङ्ख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टाऽनुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।४।
न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं न पीनं कुब्जं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।५।
न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीयं तदेकोऽवशिष्टः शिव केवलोऽहम् ।६।
न शास्ता न शास्त्रं न शिक्षा न शिष्यो न च त्वं न चाऽहं न चाऽयं प्रपञ्चः
स्वरूपावबोधाद् विकल्पासहिष्णुस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।७।
न चोर्ध्वं न चाऽधो न चान्तर्न बाह्यं न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरा दिक् ।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूपस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥८॥
अपि व्यापकत्वादितत्त्वात् प्रयोगात् स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।
जगत्तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥९॥
न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतः स्यान्न चाऽकेवलत्वं न वा केवलत्वात् ।
न शून्यं न चाऽशून्यमद्वैतकत्वात् कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥१०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं निर्वाणदशकं सम्पूर्णम् ॥२७ ॥

२७५. निर्वाणषट्कम्

नमो बुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाऽहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥१॥
न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायुर्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः ।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥२॥
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चाऽर्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।३।
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिन्दानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।४।
न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥५॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विधुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासङ्गतं नैव मुक्तिर्न मेयश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥६॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं निर्वाणषट्कं सम्पूर्णम् ॥२७५॥

२७६. कैवल्याष्टकम्

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् ।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥ १ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ २ ॥
स गुरुः स पिता चाऽपि सा माता बान्धवोऽपि सः ।
शिक्षयेच्चेत् सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ३ ॥
निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति ।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम् ॥ ४ ॥
हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः ।
गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम् ॥ ५ ॥
अहो दुःखं महादुःखं दुखाद् दुःखतरं यतः ।
का चाऽर्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ६ ॥
दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः ।
गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ७ ॥
तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि ।
चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ८ ॥
इति श्रीकैवल्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥२७६॥

२७७. साधनपञ्चकम्

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥१॥
सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु सन्त्यज्यताम् ।

सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम् ॥२॥
वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरः पक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम् ।
ब्रह्मैवाऽस्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
देहेऽहं मतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ॥३॥
क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषध भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन सन्तुष्यताम् ।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपा-नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् ॥४॥
एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेत समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ।५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं पठते मनुष्यः सञ्चिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य ।
तस्याऽऽशु संसृति-दवानलतीव्रघोर-तापः प्रशान्तिमुपयाति चितिप्रसादात्

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं साधनपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥२७७॥

२७८. आत्मपञ्चकम्

नाऽहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गं नाऽहकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः ।
दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदूरः साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ॥१॥
रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जुर्यथाऽहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः ।
आप्तोक्त्याहि भ्रान्तिनाशे स रज्जुर्जीवो नाऽहंदेशिकोक्त्या शिवोऽहम् ।२।
आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपं विमोहात् ।
निद्रामोहात् स्वप्नवत्तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् ॥३॥
मत्तो नाऽन्यत् किञ्चिदत्राऽस्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तु मायोपक्लृप्तम् ।
आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ॥४॥
नाऽहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः ।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहंकारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम् ॥५॥

नाऽहं जातो जन्ममृत्यू कुतो मे नाऽहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाऽहं चित्तं शोकमोहौ कुतो मे नाऽहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितमात्मपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥२७८॥

२७९. कौपीनपञ्चकम्

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्ते भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥१॥
मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वये भोक्तुममन्त्रयन्तः ।
कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥२॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥३॥
स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः ।
नाऽन्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥४॥
पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः ।
भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कौपीनपञ्चकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२७९॥

२८०. धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ।१।
आदौ विजित्य विषयान् मदमोह-राग-द्वेषादि-शत्रुगणमाहृतयोगराज्याः
ज्ञात्वाऽमृतं समनुभूयपरात्मविद्या। कान्तासुखा बत गृहे विचरन्ति धन्याः
त्यक्त्वा गृहे रतिमतो गतिहेतुभूतामात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः ।
वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः॥३।
त्यक्त्वा ममाऽहमिति बन्धकरे पदे द्वे मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च ।
कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ।४।
त्यक्त्वेषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा भैक्ष्यामृतेन परिकल्पित-देहयात्राः ।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं धन्या द्विजा रहसि ह्यवलोकयन्ति।५।
यासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम् ।
यैर्ब्रह्म तत्समनुपासितमेकचित्ता धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः ॥६॥

अज्ञातपङ्कपरिमग्नमपेतसारं दुःखालयं मरण-जन्म-जरावसक्तम् ।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ।७।
शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावैरेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः ।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं शास्त्रेषु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः।८।
अहिमिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद् यः कुणपमिव सुनारी त्यक्तकामोविरागी।
विषमिव विषयान्यो मन्यमानो दुरन्तान् जयति परमहंसे मुक्तिभावं समेति
सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमां
गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि ॥१०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं धन्याष्टकं सम्पूर्णम् ।।२८०॥

२८१. मनीषापञ्चकम्

सत्याचार्यस्य गमने कदाचिन्मुक्तिदायकम् ।
काशीक्षेत्रं प्रति सह गौर्या मार्गे तु शङ्करम् ॥ १ ॥
अन्त्यवेषधरं दृष्ट्वा गच्छ गच्छति चाऽब्रवीत् ।
शङ्करः सोऽपि चाण्डालस्तं पुनः प्राह शङ्करम् ॥ २ ॥
अन्नमयादन्नमयमथवा चैतन्यमेव चैतन्यात् ।
द्विजवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि गच्छ गच्छेति ॥ ३ ॥
किं गङ्गाम्बुनि बिम्बितेऽम्बरमणौ चाण्डालवाटीपयः
पूरे चान्तरमस्ति काञ्चनघटीसत्कुम्भयोर्वाम्बरे ।
प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरङ्ग - सहजानन्दावबोधाम्बुधौ
विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रमः ॥ ४ ॥
जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादि-पिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी ।
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चे-
च्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥५॥
ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम् ।

इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥६॥
शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना ।
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम ॥७॥
या तिर्यङ् नरदेवताभिरहमित्यन्तःस्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः ।
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्
योगी निर्वृत-मानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥८॥
यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः ।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मविद्
यः कश्चित् स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम ॥९॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं मनीषापञ्चकं सम्पूर्णम् ॥२८१॥

२८२. विज्ञाननौका

तपो-यज्ञ-दानादिभिः शुद्धबुद्धिर्विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छबुद्ध्या ।
परित्यज्य सर्वं ययाऽऽप्नोति तत्त्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥१॥
दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं समाराध्य मर्त्यो विचार्य स्वरूपम् ।
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान् परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥२॥
यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदशून्यम् ।
अहं ब्रह्मवृत्त्यैकगम्यं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥३॥
यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे ।
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥४॥
निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः समाधिस्थितानां यदा भाति पूर्णम् ।
अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥५॥
यदानन्दलेशैः समानन्ति विश्वं यदा भाति सत्त्वे तदा भाति सर्वम् ।
यदालोचने रूपमन्यत् समस्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥६॥

अनन्तं विभुं सर्वयोनिर्निरीहं शिवं सङ्गहीनं यदोङ्कारगम्यम् ।
निराकारमत्युज्ज्वलं मृत्युहीनं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ७ ॥
यदानन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान् स्यादविद्याविलासः समस्तप्रपञ्चः ।
यदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ८ ॥
स्वरूपानुसन्धानरूपां स्तुतिं यः पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः ।
शृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो भवेद् विष्णुरत्रैव वेदप्रमाणात् ॥ ९ ॥
विज्ञाननावं परिगृह्य कश्चित्तरेद्यदज्ञानमयं भवाब्धिम् ।
ज्ञानासिना यो हि विच्छिद्य तृष्णां विष्णोः पदं याति स एव धन्यः ॥१०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता विज्ञाननौका सम्पूर्णा ॥२८२॥

२८३. द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभते निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥१॥
अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥२॥
का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः ॥३॥
मा कुरु जन-धन-यौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥४॥
कामं क्रोधं मोहं लोभं त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥५॥
सुरमन्दिर - तरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥६॥
शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥७॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ॥८॥
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्याऽनित्यविवेकविचारम् ।
जाप्यसमेत - समाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ॥९॥

नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥१०॥
का तेऽष्टादशदेशे चिन्तावातुल तव किं नास्ति नियन्ता ।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम् ॥११॥
गुरुचरणाम्बुज - निर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः ।
सेन्द्रियमानस - नियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥१२॥
द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः ।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम् ॥१३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम् ॥२८३॥

२८४. चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥ १॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ।
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥२॥
यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥३॥
जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बर - बहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥४॥
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजल-लव-कणिका पीता ।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चा ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥५॥
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥६॥

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥७॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥८॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥९॥

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१०॥

नारीस्तनभर - नाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्द मूढमते (ध्रुवपदम् ॥११॥
कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्द मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१२॥
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ।
भज गोविन्दं भज गोविदं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१३॥
यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत् पृच्छति गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१४॥
सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१५॥

रथ्याचर्पट-विरचितकन्थः पुण्याऽपुण्य-विवर्जित-पन्थः ।
नाऽहं न त्वं नाऽयं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१६॥
कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१७॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम् ॥२८४॥

२८५. परा-पूजा

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥ १ ॥
निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च ।
निरालम्बस्योपवीतं पुष्पं निर्वासनस्य च ॥ २ ॥
निर्लेपस्य कुतो गन्धो रम्यस्याभरणं कुतः ।
नित्यतृप्तस्य नैवेद्यस्ताम्बूलं च कुतो विभोः ॥ ३ ॥
प्रदक्षिणं ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ॥ ४ ॥
स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः ।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् ॥ ५ ॥
एवमेव परा-पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एकबुद्धया तु देवेश ! विधेया ब्रह्मवित्तमैः ॥ ६ ॥

इति परा-पूजा समाप्ता ॥ २८५ ॥

२८६. शयनस्तोत्रम्

आस्तीर्य सर्वत इदं परमात्मरूपं प्रावार्य सर्वत इदं परमात्मरूपम् ।
शेते सुखेन निजलाभविनिर्वृतात्मा श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।१।
सम्पूर्णवैदिकविधानसुतोषितेशो गार्हस्थ्यभोगविधिदोषविवेकभूमिः ।
त्यक्तेषणो विगतमानमदादि शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।२।
मायामयत्वमखिलेषु सदात्मकत्वं निर्णीय वेदवचनाद् गुरुवाक्यतोऽपि ।
त्यक्तक्रियोऽहिरिव दिष्टभुगेव शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।३।

धृत्वा वपुर्गुरुवरस्य निधाय पूर्णं बोधं हृदि क्वनु गतं निजकर्म पूर्वम् ।
गच्छत्वनेन किमिति स्वसुखेन शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।४।
स्वप्नो गुरुर्निजसुखोन्नतिबोधहेतुरीशोऽपि भाति निजरूपतयैव नित्यम् ।
नेहेति वेदवचनानि निषिध्य शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।५।
सङ्गाद्भयं परिमृशन् जपताविरुद्धं कर्माचरन् विततजङ्गलकोणकेषु ।
शून्यालये कलशकारगृहेऽपि शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।।६।।
त्रैलोक्यराज्यमथवा कमलासनस्य विष्णोः शिवस्य विभवं च तृणाय मत्वा
कौपीनमप्यधिकमित्यहह प्रशेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ।७।
आत्मानुसन्धिगलिताखिलवासनो यो विस्मृत्य विश्वमखिलं सशरीमेतत् ।
खादन् हसन् भ्रमणमाकलयश्च शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः।८।
बाहूपधानविनिषण्णशिराः शिलायां मञ्चे तटे द्युसरितो रविचन्द्रदीपे ।।
आलिङ्गितस्वधिषणावनतिस्तु शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः।९।
चिन्मुद्रयाऽल्पकरसूचितचित्तवृत्तिः स्थित्या स्वया प्रकटयन्नधिकारिवर्गे ।
ब्राह्मी स्थितिं बहुलपुण्यचयेन शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः।१०।
द्रोणाचले स्वकृतपुण्यमयेन केन भाग्योदयेन गुरुणा निजबोधदाने ।
संदत्तचिन्मयसुखावचनीयनिद्रा कृष्णो मुनिः स्वपिति देशिकदृष्टिदृष्टः ११

इदं हि जनुषः फलं जननमृत्युविच्छेदकृत्
स्वकीयसुखचिद्धने यदिह लब्धविश्रान्तिता ।
ततोऽपि च महत्फलं यदधिकारिवर्गे निजां
दधात्यतुलसंविदं तत इदं गुरोराश्रयः ।। १२ ।।

इति कृष्णानन्दसरस्वतीविरचितं शयनस्तोत्रं समाप्तम् ।।२८६।।

२८७. भ्रष्टाष्टकम्

विश्वं सत्यं मनुते तनुते कर्माणि लोकसंसिद्ध्यै ।
वाचा मिथ्या जगदिति जल्पति नो वेत्ति यो महाभ्रष्टः ।। १ ।।
ब्रह्मैवेदं जल्पति दोषाऽदोषोत्तमाधमान् पश्यन् ।
नग्नो भूत्वा विचरस्यवधूतत्वं प्रदर्शय भ्रष्टः ।। २ ।।
कृत्याऽकृत्यमशेषं त्यक्तुमशक्तं श्रुतेरगोचरताम् ।
आत्मनि जल्पन् हास्यास्पदतामित्येष मानवो भ्रष्टः ।। ३ ।।

पाशाष्टक-सङ्कट - श्लिष्टतनुर्मृष्टभोजन-प्रीतः ।
शिष्टोऽहं मन्वानः कष्टमहो दुष्टमानवो भ्रष्टः ॥ ४ ॥
आत्मैवेदं जल्पँल्लोकोक्तीरसहमानमेधावी ।
स्तुतिवाक्यानि श्रोतुं धावंस्तुष्टो न किं भवेद् भ्रष्टः ॥ ५ ॥
यस्मिन् स्वस्य च निष्ठा तद्धर्मिष्ठा न शिष्टगणनायाम् ।
कुर्वन् कर्म हतोऽयं यद्यपि शिष्टो न किं भवेद् भ्रष्टः ॥ ६ ॥
कर्तृत्वं भोक्तृत्वं मन्वानः स्वात्मनि प्रभौ शम्भौ ।
रोदिति हा किं कृतमिति किं वा भोक्तव्यमित्यसौ भ्रष्टः ॥ ७ ॥
चिन्मात्रं स्वात्मानं देहं मन्वान एजते यमतः ।
सर्वात्मानं बुद्ध्वा ब्रह्माऽपि स्यादहो किल भ्रष्टः ॥ ८ ॥
भ्रष्टाष्टकमेतद् यत्प्रविचारयतीह मानवो धन्यः ।
मान्यः स्याल्लोकेषु भ्रष्टत्वं वेत्ति निजचारित्रात् ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्कृष्णानन्दसरस्वतीविरचितं भ्रष्टाष्टकं समाप्तम् ॥२८७॥

२८८. शिष्टस्तोत्रम्

भज विश्रान्तिं त्यज रे भ्रान्तिं निश्चिनु शैवं निजरूपम् ।
हेयादेयातीतं सच्चित्सुखरूपस्त्वं भव शिष्टः ॥ १ ॥
दृश्यमशेषं त्वत्तोऽभिन्नं मा भैषीः किल भूमानम् ।
विद्ध्यात्मानं वेदनरूपं वेदशिरःस्थं भव शिष्टः ॥ २ ॥
तृणवत् त्यज धन-वनिता-पुत्रान् लोकं शोकं भेदभवम् ।
इदमहमित्थं कलनां हित्वा पूर्णानन्दो भव शिष्टः ॥ ३ ॥
कृत्वाऽकृत्ये त्यज रे दूरे विधिगोचरतां माऽगास्त्वम् ।
मानागोचररूपं ज्ञात्वा किं त्वं कर्त्ता भव शिष्टः ॥ ४ ॥
लोकविलक्षणचरितो भूया लोकातीतं पदमिच्छन् ।
पावय सकलां पृथिवीमेनामात्मारामो भव शिष्टः ॥ ५ ॥
निन्दास्तोत्रे मानाऽमानौ समदृष्टेस्ते किं कुरुताम् ।
कुरुतां लोकः कामं स्वेष्टं का ते हानिर्भव शिष्टः ॥ ६ ॥

शैवः शाक्तो गणपतिभक्तो वैष्णवसौराविति नाना ।
अज्ञात्वाऽयं जातो लोके स त्वं शम्भुर्भव शिष्टः ॥ ७ ॥
जलबुद्बुदवज्जगदिदमखिलं पश्यन्नात्मनि तिष्ठ त्वम् ।
को वा मोहः शोकः को वा द्वैतदृशस्तव भव शिष्टः ॥ ८ ॥
अजपामन्त्रं देशिकवचनाल्लब्ध्वा देवं स्वात्मानम् ।
ज्ञात्वा सहजावस्थायां वस भावातीतो भव शिष्टः ॥ ९ ॥
शिष्टस्तोत्रं ब्रह्मिष्ठानां तुष्टिकरं स्यादिति कलये ।
उक्तावस्था सर्वेषां स्याद् गुरुकृपया किल बुद्धिमताम् ॥१०॥

इति श्रीकृष्णानन्दसरस्वतीविरचितं शिष्टस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२८८॥

२८९. कामनापञ्चकम्

योऽत्रावतीर्य शकलीकृतदैत्यकीर्तिर्योऽयं च भूसुरवरार्चित-रम्यमूर्तिः ।
तद्दर्शनोत्सुकधियां कृततृप्तिपूर्तिः सीतापतिर्जयति भूपतिचक्रवर्ती ॥१॥
ब्राह्मी मृतेत्यविदुषामपलापमेतत् सोढुं न चाऽर्हति मनो मम निःसहायम् ।
वाञ्छाम्यनुप्लवमतो भवतः सकाशाच्छ्रुत्वा तवैव करुणार्णवनामराम ॥२॥
देशद्विषोऽभिभवितुं किल राष्ट्रभाषा श्रीभारतेऽमरगिरं विहितुं खरारे
याचामहेऽनवरतं दृढसंघशक्ति नूनं त्वया रघुवरेण समर्पणीया ॥३॥
त्वद्भक्तिभावितहृदां दुरितं द्रुतं वै दुःखं च भो यदि विनाशयसीह लोके
गोभूसुरामरगिरां दयितोऽसि चेत्त्वं नूनं तदा तु विपदं हर चिन्तितोऽद्य ४

बाल्येऽपि पितृवचसा निकषा मुनीशान्
गत्वा रणेऽप्यवधि येन च ताटिकाऽऽख्या ।
निर्भर्त्सिताश्च जगतीतलदुष्टसङ्घाः
श्रीर्वेदवाक्प्रियतमोऽवतु वेदवाचम् ॥ ५ ॥

इति कामनापञ्चकं सम्पूर्णम् ॥२८९॥

२९०. तत्त्वमसिस्तोत्रम्

मनःकल्पितमेवेदं जगज्जीवेशकल्पनम् ।
तदेकं सम्परित्यज्य निर्वाणमनुभूयताम् ॥ १ ॥

सति सर्वस्मिन् सर्वज्ञत्वं सत्यल्पे वा स्वल्पज्ञत्वम् ।
सर्वाल्पस्याभावे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥ २ ॥

सत्यां व्यष्टौ जीवोपाधिः सति सर्वस्मिन्नाशोपाधिः ।
व्यष्टि-समष्ट्योर्ज्ञाने कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥ ३ ॥

सत्यज्ञाने जीवत्वोक्तिर्मायासत्त्वे त्वीशत्वोक्तिः ।
मायाविद्याबोधे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥ ४ ॥

सति वा कार्ये कारणतोक्तिः कारणतत्त्वे कार्यत्वोक्तिः ।
कार्यकारणभावे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥ ५ ॥

सति भोक्तव्ये भोक्ताऽयं स्याद्दातव्ये वा दाता स स्यात् ।
भोग्यो विध्यो भावे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥ ६ ॥

सत्यज्ञाने गुरुणा बाध्यं सति द्वैते शिष्यैर्भाव्यम् ।
अद्वैतात्मनि गुरुशिष्यौ कौ त्यज रे भेदं तत्त्वमसि ॥ ७ ॥

सत्यद्वैते प्राप्तौ प्रत्नः सति वा द्वैते बाधे यत्नः ।
द्वैताऽद्वैते ते सङ्कल्पस्त्यज रे शेषं तत्त्वमसि ॥ ८ ॥

साक्षित्वं यदि दृश्यं सत्यं दृश्यासत्त्वे साक्षी त्वं कः ।
उभयाभावे दर्शनमपि किं तूष्णीं भव रे तत्त्वमसि ॥ ९ ॥

अज्ञानामलविग्रह - निजसुख - जृम्भणमेतन्नेतरथा ।
तस्मान्नैवादेयं हेयं तूष्णीं भव रे तत्त्वमसि ॥१०॥

ब्रह्मैवाऽहं ब्रह्मैव त्वं ब्रह्मैवैकं नाऽन्यत् किञ्चित् ।
निश्चित्येत्थं निजसमसुखभुक् तूष्णीं भव रे तत्त्वमसि ॥११॥

एतत् स्तोत्रं प्रपठता विचार्य गुरुवाक्यतः ।
प्राप्यते ब्रह्मपदवीं सत्यं सत्यं न संशयः ॥१२॥

इति कृष्णानन्दसरस्वतीविरचितं तत्त्वमसिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९०॥

इति वेदान्तस्तोत्राणि ।

●

प्रकीर्ण-स्तोत्राणि

२९१. गणेशाष्टम्

गजवदन गणेश त्वं विभो विश्वमूर्ते!
हरसि सकलविघ्नान् विघ्नराज प्रजानाम् ।
भवति जगति पूजा पूर्वमेव त्वदीया
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ १ ॥
सपदि सकलविघ्नाः यान्ति दूरे दयालो
तव शुचि रुचिरं स्यान्नामसङ्कीर्तनं चेत् ।
अत इह मनुजास्त्वां सर्वकार्ये स्मरन्ति
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ २ ॥
सकलदुरितहन्तुः स्वर्गमोक्षादिदातुः
सुररिपुवधकर्तुः सर्वविघ्नप्रहर्तुः ।
तव भवति कृपातोऽशेष-सम्पत्तिलाभो
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ ३ ॥
तव गणप गुणानां वर्णने नैव शक्ता
जगति सकलवन्द्या शारदा सर्वकाले ।
तदितर मनुजानां का कथा भालदृष्टे
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ ४ ॥
बहुतरमनुजैस्ते दिव्यनाम्नां सहस्रैः
स्तुतिहुतिकरणेन प्राप्यते सर्वसिद्धिः ।
विधिरयमखिलो वै तन्त्रशास्त्रे प्रसिद्धः
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ ५ ॥
त्वदितरदिह नास्ते सच्चिदानन्दमूर्तो
इति निगदति शास्त्रं विश्वरूपं त्रिनेत्र ।
त्वमसि हरिरथ त्वं शङ्करस्त्वं विधाता
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ ६ ॥

सकलसुखद माया या त्वदीया प्रसिद्धा
शशधरधरसूनो त्वं तया क्रीडसीह।
नट इव बहुवेषं सर्वदा संविधाय
वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥ ७ ॥
भव इह पुरतस्ते पात्ररूपेण भर्तः बहुविधनरलीलां त्वां प्रदर्श्याशु याचे।
सपदि भवसमुद्रान्मां समुद्धारयस्व वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ८

अष्टकं गणनाथस्य भक्त्या यो मानवः पठेत्।
तस्य विघ्नाः प्रणश्यन्ति गणेशस्य प्रसादतः ॥ ९ ॥

इति जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामिश्रीशान्तानन्दसरस्वती-शिष्य-स्वामि-श्रीमदनन्तानन्दसरस्वतीविरचितं गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२९१॥

२९२. विष्णुदेवाष्टकम्

श्रिया जुष्टं तुष्टं श्रुतिशतनुतं श्रीमधुरिपुं
पुराणं प्रत्यञ्चं परमसहितं शेषशयने।
शयानं यं ध्यात्वा जहति मुनयः सर्वविषयां-
स्तमीशं सद्रूपं परमपुरुषं नौमि सततम् ॥ १ ॥
गुणातीतो गीतो दहन इव दीप्तो रिपुवने
निरीहो निष्कायः परमगुणपूगैः परिवृतः।
सदा सेव्यो वन्द्योऽमरसमुदयैर्यो मुनिगणै-
स्तमीशं सद्रूपं परमपुरुषं नौमि सततम् ॥ २ ॥
विभो ! त्वं संसारस्थित-सकलजन्तूनवसि यत्-
त्रयाणां रक्षायै ननु वरद पद्मेश जगताम्।
ददौ चक्रं तस्मात्परमदयया ते पशुपति-
स्ततः शास्त्रं 'विश्वम्भर' इति पदेन प्रगिरति ॥ ३ ॥
सदा विष्णो ! दीने सकलबलहीने यदुपते
हताशे सर्वात्मन् मयि कुरु कृपां त्वं मुररिपो।
यतोऽहं संसारे तव च रणसेवा-विरहितो
न मे सौख्यं चेत्स्याद् भवति वितथं श्रीश ! सकलम् ॥४॥

यदीत्थं त्वं ब्रूया भजननिपुणान् पामि सततं
प्रभो भक्ता भक्त्या सकलसुखभाजो न कृपया।
वद प्रोत्तुङ्गा या तव खलु कृपा कुत्र घटते
कथं वा भो स्वामिन्! पतितमनुजोद्धारक इति ॥ ५ ॥
मया शास्त्रे दृष्टं गुरुजनमुखाद् वा श्रुतमिदं
कृपा विष्णोर्वन्द्या पतितमनुजोद्धारनिपुणा।
अतस्त्वां सम्प्राप्तः शरणद! शरण्यं करुणया
श्रिया हीनं दीनं मधुमथन! मां पालय विभो ॥ ६ ॥
न चेल्लक्ष्मीजाने सकलहितकृच्छास्त्रनिचयो
मृषारूपं धत्ते भवति भवतो हानिरतुला।
तवाऽस्तित्वं शास्त्रन्नहि भवति शास्त्रं यदि मृषा
विचारोऽयं चित्ते मम भवपते श्रीधर हरे ॥ ७ ॥
न ते स्वामिन् विष्णो कुरु मयि कृपां कैटभरिपो
स्वकीयं वाऽस्तित्वं जहि जगति कारुण्यजलधे।
द्वयोर्मध्ये ह्येकं भवति करणीयं तव विभो
कथाः सर्वाः सर्वाश्रय तव पुरस्कृत्य विरतः ॥ ८ ॥
विष्णुदेवाष्टकं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तितो नरः।
सर्वान् कामानवाप्नोति लक्ष्मीजानेः प्रसादतः ॥ ९ ॥

इति जगद्गुरु-शङ्कराचार्यस्वामिश्रीशान्तानन्दसरस्वतीशिष्य-स्वामिश्रीमदनन्तानन्द सरस्वतीविरचितं विष्णुदेवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ २९२ ॥

२९३. कार्तवीर्यस्तोत्रम्

कार्तवीर्यः खलद्वेषी कृतवीर्यसुतो बली।
सहस्रबाहुः शत्रुघ्नो रक्तवासा धनुर्धरः ॥ १ ॥
रक्तगन्धो रक्तमाल्यो राजा स्मर्तुरभीष्टदः।
द्वादशैतानि नामानि कार्तवीर्यस्य यः पठेत् ॥ २ ॥
सम्पदस्तस्य जायन्ते जनास्तस्य वशंगताः।
आनयत्याशु दूरस्थं क्षेमलाभयुतं प्रियम् ॥ ३ ॥

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् ।
तस्य स्मरणमात्रेण हृतं नष्टं च लभ्यते ॥ ४ ॥
कीर्तवीर्य महाबाहो सर्वदुष्टनिवर्हण ।
सर्वं रक्ष सदा तिष्ठ दुष्टान्नाशय पाहि माम् ॥ ५ ॥
सहस्रबाहुं स-शरं स-चापं रक्ताम्बरं रक्तकिरीटकुण्डलम् ।
चौरादि-दुष्टभयनाशनमिष्टदंतंध्यायेन्महाबल-विजृम्भित-कार्तवीर्यम् ॥
यस्य संस्मरणादेव सर्वदुःखक्षयो भवेत् ।
तं नमामि महावीर्यमर्जुनं कृतवीर्यजम् ॥ ७ ॥
हैहयाधिपतेः स्तोत्रं सहस्रावर्तनं कृतम् ।
वाञ्छितार्थप्रदं नृणां शूद्राद्यैर्यदि न श्रुतम् ॥ ८ ॥

इति श्रीडामरतन्त्रे उमामहेश्वरसंवादे कार्तवीर्यस्तोत्रं समाप्तम् ॥२९३॥

२९४. बन्दीमोचनस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीबन्दीमोचनमन्त्रस्य कण्वऋषिः, त्रिष्टुप्-छन्दः, ह्रीं बीजम्, ह्रूं कीलकम्, मम बन्दीमोचनार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ ह्रीं ह्रूं बन्दीदेव्यै नमः । इति मन्त्रम् अष्टोत्तरशतं जपः ।

बन्दीं देवीं नमस्कृत्य वरदाभयशोभिताम् ।
तदग्रयां शरणं गच्छे शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ १ ॥
बन्दी कमलपत्राक्षी लोहश्रृङ्खलभञ्जिनी ।
प्रसादं कुरु मे देवि शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ २ ॥
त्वं बन्दी त्वं महामाया त्वं दुर्गा त्वं सरस्वती ।
त्वं देवी रजनी चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ ३ ॥
संसारतारिणी बन्दी सर्वकामप्रदायिनी ।
सर्वलोकेश्वरी देवी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ ४ ॥
त्वं ह्रीस्त्वमीश्वरी देवी ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी ।
त्वं वै कल्पक्षयं कर्त्री शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ ५ ॥
देवी धात्री धरित्री च धर्मशास्त्रार्थभाषिणी ।
दुःश्वाम्बररागिणी देवी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ ६ ॥

नमोऽस्तु ते महालक्ष्मि रत्नकुण्डलभूषिते ।
शिवस्यार्धाङ्गिनी चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ ७ ॥
नमस्कृत्य महादुर्गां भयादुत्तारिणीं शिवाम् ।
महादुःखहरां चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥ ८ ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेन्नित्यमेव च ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो मोक्षं च लभते क्षणात् ॥ ९ ॥

इति श्रीरुद्रयामले बन्दीमोचनस्तोत्रं समाप्तम् ॥२९४॥

२९५. तुलसीकवचम्

अस्य श्रीतुलसीकवचस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहादेव-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीतुलसीदेवता, मनसीप्सितकामनासिद्धयर्थं जपे विनियोगः ।

तुलसी श्रीमहादेवी नमः पङ्कजधारिणी ।
शिरो मे तुलसी पातु भालं पातु यशस्विनी ॥ १ ॥
दृशौ मे पद्मनयना श्रीसखी श्रवणे मम ।
घ्राणं पातु सुगन्धा मे मुखं च सुमुखी मम ॥ २ ॥
जिह्वां मे पातु शुभदा कण्ठं विद्यामयी मम ।
स्कन्धौ कह्लारिणी पातु हृदयं विष्णुवल्लभा ॥ ३ ॥
पुण्यदा मे पातु मध्यं नाभिं सौभाग्यदायिनी ।
कटिं कुण्डलिनी पातु ऊरू नारदवन्दिता ॥ ४ ॥
जननी जानुनी पातु जङ्घे सकलवन्दिता ।
नारायणप्रिया पादौ सर्वाङ्गं सर्वरक्षिणी ॥ ५ ॥
सङ्कटे विषमे दुर्गे भये वादे महाहवे ।
नित्यं हि सन्ध्ययोः पातु तुलसी सर्वतः सदा ॥ ६ ॥
इतीदं परमं गुह्यं तुलस्याः कवचामृतम् ।
मर्त्यानाममृतार्थाय भीतानामभयाय च ॥ ७ ॥
मोक्षाय च मुमुक्षूणां ध्यानिनां ध्यानयोगकृत् ।
वशाय वश्यकामानां विद्यायै वेदवादिनाम् ॥ ८ ॥
द्रविणाय दरिद्राणां पापिनां पापशान्तये ॥ ९ ॥

अन्नाय क्षुधितानां च स्वर्गाय स्वर्गमिच्छताम् ।
पशव्यं पशुकामानां पुत्रदं पुत्रकांक्षिणाम् ॥१०॥
राज्याय भ्रष्टराज्यानामशान्तानां च शान्तये ।
भक्त्यर्थं विष्णुभक्तानां विष्णौ सर्वान्तरात्मनि ॥११॥
जाप्यं त्रिवर्ग-सिद्ध्यर्थं गृहस्थेन विशेषतः ।
उद्यन्तं चण्डकिरणमुपस्थाय कृताञ्जलिः ॥१२॥
तुलसीकानने तिष्ठन्नासीनो वा जपेदिदम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति तथैव मम सन्निधिम् ॥१३॥
मम प्रियकरं नित्यं हरिभक्तिविवर्धनम् ।
या स्यान्मृतप्रजा नारी तस्या अङ्गं प्रमार्जयेत् ॥१४॥
सा पुत्रं लभते दीर्घजीविनं चाप्यरोगिणम् ।
बन्ध्याया मार्जयेदङ्गं कुशैर्मन्त्रेण साधकः ॥१५॥
साऽपि संवत्सरादेव गर्भं धत्ते मनोहरम् ।
अश्वत्थे राजवश्यार्थी जपेदग्नेः सुरूपभाक् ॥१६॥
पलाशमूले विद्यार्थी तेजोऽर्थ्यभिमुखो रवेः ।
कन्यार्थी चण्डिकागेहे शत्रुहत्यै गृहे मम ॥१७॥
श्रीकामो विष्णुगेहे च उद्याने स्त्री वशा भवेत् ।
किमत्र बहुनोक्तेन शृणु सैन्येश तत्त्वतः ॥१८॥
यं यं काममभिध्यायेत्तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
मम गेहगतस्त्वं तु नरकस्य वधेच्छया ॥१९॥
जपन् स्तोत्रं च कवचं तुलसीगतमानसः ।
मण्डलात्तारकं हन्ता भविष्यसि न संशयः ॥२०॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे तुलसीकवचं सम्पूर्णम् ॥२९५॥

२९६. तुलसीस्तोत्रम्

जगद्धात्रि नमस्तुभ्यं विष्णोश्च प्रियवल्लभे ।
यतो ब्रह्मादयो देवाः सृष्टि-स्थित्यन्त-कारिणः ॥ १ ॥
नमस्तुलसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभे ।
नमो मोक्षप्रदे देवि ! नमः सम्पत्प्रदायिके ॥ २ ॥

तुलसी पातु मां नित्यं सर्वापद्भ्योऽपि सर्वदा ।
कीर्तिताऽपि स्मृता वाऽपि पवित्रयति मानवम् ॥ ३ ॥
नमामि शिरसा देवीं तुलसीं विलसत्तनुम् ।
यां दृष्ट्वा पापिनो मर्त्या मुच्यन्ते सर्वकिल्विषात् ॥ ४ ॥
तुलस्या रक्षितं सर्वं जगदेतच्चराऽचरम् ।
यां विनिर्हन्ति पापानि दृष्ट्वा वा पापिभिर्नरैः ॥ ५ ॥
नमस्तुलस्यतितरां यस्यै बद्ध्वा बलिं कलौ ।
कलयन्ति सुखं सर्वं स्त्रियो वैश्यास्तथाऽपरे ॥ ६ ॥
तुलस्या नाऽपरं किञ्चिद् दैवतं जगतीतले ।
यया पवित्रितो लोको विष्णुसङ्गेन वैष्णवः ॥ ७ ॥
तुलस्याः पल्लवं विष्णोः शिरस्यारोपितं कलौ ।
आरोपयति सर्वाणि श्रेयांसि वरमस्तके ॥ ८ ॥
तुलस्यां सकला देवा वसन्ति सततं यतः ।
अतस्तामर्चयेल्लोके सर्वान् देवान् समर्चयन् ॥ ९ ॥
नमस्तुलसि सर्वज्ञे पुरुषोत्तमवल्लभे ।
पाहि मां सर्वपापेभ्यः सर्वसम्पत्प्रदायिके ॥१०॥
इति स्तोत्रं पुरा गीतं पुण्डरीकेण धीमता ।
विष्णुमर्चयता नित्यं शोभनस्तुलसीदलैः ॥११॥
तुलसी श्रीमहालक्ष्मीर्विद्याऽविद्या यशस्विनी ।
धर्म्या धर्मानना देवी देवीदेवमनःप्रिया ॥१२॥
लक्ष्मीप्रियसखी देवी द्यौर्भूमिरचला चला ।
षोडशैतानि नामानि तुलस्याः कीर्तयन्नरः ॥१३॥
लभते सुतरां भक्तिमन्ते विष्णुपदं लभेत् ।
तुलसी भूर्महालक्ष्मीः पद्मिनी श्रीर्हरिप्रिया ॥१४॥
तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे ।
नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये ! ॥१५॥

इति श्रीपुण्डरीककृतं तुलसीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९६॥

२९७. अश्वत्थस्तोत्रम्

श्रीनारद उवान

अनायासेन लोकोऽयं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
सवदेवात्मकं चैकं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु देव मुनेऽश्वत्थ शुद्धं सर्वात्मकं तरुम् ।
यत्प्रदक्षिणतो लोकः सर्वान् कामान् समश्नुते ॥ २ ॥
अश्वत्थाद् दक्षिणे रुद्रः पश्चिमे विष्णुरास्थितः ।
ब्रह्मा चोत्तरदेशस्थः पूर्वं त्विन्द्रादिदेवताः ॥ ३ ॥
स्कन्धोपस्कन्धपत्रेषु गो - विप्र - मुनयस्तथा ।
मूलं वेषाः पयो यज्ञाः संस्थिता मुनिपुङ्गव ॥ ४ ॥
पूर्वादिदिक्षु संयाता नदी-नद-सरोऽब्धयः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ह्यश्वत्थ संश्रयेद् बुधः ॥ ५ ॥
त्वं क्षीर्यफलकश्चैव शीतलश्च वनस्ते ।
त्वामाराध्य नरो विद्यादैहिकाऽऽमुष्मिकं फलम् ॥ ६ ॥
चलद्दलाय वृक्षाय सर्वदाश्रितविष्णवे ।
बोधिसत्त्वाय देवाय ह्यश्वत्थाय नमो नमः ॥ ७ ॥
अश्वत्थ यस्मात्त्वयि वृक्षराज नारायणस्तिष्ठति सर्वकालम् ।
अतः श्रुतस्त्वं सततं तरूणां धन्योऽसि चारिष्टविनाशकोऽसि ॥८॥
क्षीरदस्त्वं च येनेह येन श्रीस्त्वां निषेवते ।
सत्येन तेन वृक्षेन्द्र मामपि श्रीर्निषेवताम् ॥ ९ ॥
एकादशात्मरुद्रोऽसि वसुनाथशिरोमणिः ।
नारायणोऽसि देवानां वृक्षराजोऽसि पिप्पल ॥१०॥
अग्निगर्भः शमीगर्भो देवगर्भः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो यज्ञगर्भो नमोऽस्तु ते ॥११॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥१२॥

सततं वरुणो रक्षेत् त्वामाराद् दृष्टिराश्रयेत् ।
परितस्त्वां निषेवन्तां तृणानि सुखमस्तु ते ॥१३॥
अक्षिस्पन्दं भुजस्पन्दं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम् ।
शत्रूणां च समुत्थानं ह्यश्वत्थ शमय प्रभो ॥१४॥
अश्वत्थाय वरेण्याय सर्वैश्वर्यप्रदायिने ।
नमो दुःस्वप्ननाशाय सुस्वप्नफलदायिने ॥१५॥
मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय वृक्षराजाय ते नमः ॥१६॥
यं दृष्ट्वा मुच्यते रोगैः स्पृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
यदाश्रयाच्चिरञ्जीवो तमश्वत्थं नमाम्यहम् ॥१७॥
अश्वत्थ सुमहाभाग सुभग प्रियदर्शन ।
इष्टकामांश्च मे देहि शत्रुभ्यस्तु पराभवम् ॥१८॥
आयुः प्रजां धनं धान्यं सौभाग्यं सर्वसम्पदम् ।
देहि देव महावृक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥१९॥
ऋग्यजुःसाममन्त्रात्मा सर्वरूपी परात्परः ।
अश्वत्थो वेदमूलोऽसावृषिभिः प्रोच्यते सदा ॥२०॥
ब्रह्महा गुरुहा चैव दरिद्रो व्याधिपीडितः ।
आवृत्य लक्षसङ्ख्यं तत् स्तोत्रमेतत् सुखी भवेत् ॥२१॥
ब्रह्मचारी हविष्याशी त्वधःशायी जितेन्द्रियः ।
पापोपहतचित्तोऽपि व्रतमेतत् समाचरेत् ॥२२॥
एकहस्तं द्विहस्तं वा कुर्याद् गोमयलेपनम् ।
अर्चेत् पुरुषसूक्तेन प्रणवेन विशेषतः ॥२३॥
मौनी प्रदक्षिणं कुर्यात् प्रागुक्तफलभाग् भवेत् ।
विष्णोर्नामसहस्रेण ह्यच्युतस्यापि कीर्तनात् ॥२४॥
पदे पदान्तरं गत्वा करचेष्टाविवर्जितः ।
वाचि स्तोत्रं मनो ध्याने चतुरङ्गं प्रदक्षिणम् ॥२५॥
अश्वत्थः स्थापितो येन तत्कुलं स्थापितं ततः ।
धनायुषां समृद्धिस्तु नरकात्तारयेत् पितॄन् ॥२६॥

अश्वत्थमूलमाश्रित्य शाकान्नोदकदानतः ।
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥२७॥

अश्वत्थमूलमाश्रित्य जप-होम-सुरार्चनात् ।
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मणो वचनं यथा ॥२८॥

एवमाश्वसितोऽश्वत्थः सदाऽऽश्वासाय कल्पते ।
यज्ञार्थं छेदितेऽश्वत्थे ह्यक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ॥२९॥

छिन्नो येन वृथाऽश्वत्थश्छेदिताः पितृदेवताः ।
अश्वत्थः पूजितो यत्र पूजिताः सर्वदेवताः ॥३०॥

इति ब्रह्मनारदसंवादेऽश्वत्थस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९७॥

२९८. भगवत्प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि फणिराजतनौ शयानं नागा-ऽमरा-ऽसुर-नरादि-जगन्निदानम्
वेदैः सहामरगणैरुपगीयमानं कान्तारकेतनवतां परमं निधानम् ॥१॥
प्रातर्भजामि भवसागरवारिपारं देवर्षि-सिद्ध-निवहैर्विहितोपहारम् ।
संदृप्त-दानव-कदम्ब-मदापहारं सौन्दर्य-राशि-जलराशि-सुताविहारम् २
प्रातर्नमामि शरदम्बर-कान्तिकान्तं पादारविन्द-मकरन्दजुषां भवान्तम्
नानावतार-हृतभूमिभरं कृतान्तं पाथोजकम्बुरथ पादकरं प्रशान्तम् ।३।

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं ब्रह्मानन्देन कीर्तितम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

इति श्रीस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं भगत्प्रातःस्मरणं सम्पूर्णम् ॥ २९८ ॥

२९९. ब्रह्मप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्न-जागर-सुषुप्तमवैति नित्यं तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः ।१
प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण
यं नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचंस्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥२॥
प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥३॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद् यस्तु स गच्छेत् परमं पदम् ॥ ४ ॥

इति श्रीभगवत्पादाचार्यविरचितं ब्रह्मप्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९९॥

३००. श्रीविष्णुप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्
ग्राहाभिभूत-वरवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥१॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायण - प्रवणविप्रपरायणस्य ॥२॥
प्रातर्भजामि भजनामभयङ्करं तं प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतितांघ्रिगजेन्द्रघोर-शोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ।३।
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातःकाले पठेन्नरः ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥ ४ ॥

इति श्रीविष्णुप्रातःस्मरणस्तोत्रं समाप्तम् ॥ ३०० ॥

३०१. श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूल-वरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥१॥
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्द्धदेहं सर्ग-स्थिति-प्रलय-कारणमादिदेवम्
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ।२
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम ।
नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥३॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःखजालं बहुजन्मसञ्चितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥४॥

इति श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३०१॥

३०२. श्रीगणेशप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूर-पूरपरिशोभित-गण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्न-परिखण्डन-चण्डदण्डमाखण्डलादि-सुरनायकवृन्द-वन्द्यम्।१।
प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमानमिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ।

तं तुन्दिलं द्विरसनाधिप-यज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ।२।
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञान-कानन-विनाशन-हव्यवाहमुत्साह-वर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।
प्रातरुत्थाय सततं प्रपठेत् प्रयतः पुमान् ॥ ४ ॥

इति गणेशप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३०२॥

३०३. श्रीचण्डीप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां सद्रत्नवन्मकर-कुण्डलहार-भूषाम्।
दिव्यायुधोर्जित-सुनीलसहस्रहस्तां रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ।१
प्रातर्नमामि महिषासुर-चण्डमुण्ड-शुम्भासुर-प्रमुखदैत्य-विनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहन-शीललीलां चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ।।२॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
संसारबन्धन-विमोचनहेतुभूतां मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णो ।३।
श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ४ ॥

इति श्रीचण्डीप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥ ३०३ ॥

३०४. श्रीसूर्यप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं ब्रह्मा-हरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यहेतुम् ॥
प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नतमर्चितं च ।
वृष्टिप्रमोचन-विनिग्रहहेतुभूतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥२॥
प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं गोकण्ठबन्धन-विमोचनमादिदेवम् ।३।
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातःकाले पठेत्तु यः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

इति सूर्यप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥ ३०४ ॥

३०५. श्रीरामप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषिविशालभालम्।
कर्णावलम्बि-चलकुण्डलशोभि गण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ।१।
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥२॥
प्रातर्भजामि रघुनाथपदारविन्दं पद्मांकुशादिशुभरेखि सुखावहं मे ।
योगीन्द्र-मानस-मधुव्रत-सेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ।३।
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति ।
यत्पार्वती स्वपतिना सहभोक्तुकामा प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ।४।
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुदोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
आमुक्त-मौक्तिकविशेष-विभूणाढ्यांध्येयांसमस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम् ।५।
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम्।६

इति श्रीरामप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३०५॥

३०६. प्रातःस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥ १ ॥
मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनं हरिः ॥ २ ॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ३ ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो - ब्राह्मण - हिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४ ॥
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ५ ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ ६ ॥

इति प्रातःस्मरणमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३०६॥

३०७. प्रभाते कर-दर्शनम्

कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती ।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ॥

३०८. भगवद्भक्तस्मरणम्

प्रह्लाद - नारद - पराशर - पुण्डरीक-
व्यासा-ऽम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान् ।
रुक्मा-ङ्गदा-ऽर्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि ॥

३०९. एकश्लोकी-रामायणम्

आदौ राम-तपोवनादि-गमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेही-हरणं जटायुमरणं सुग्रीव-सम्भाषणम् ।
बालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चात् रावण-कुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ।

३१०. एकश्लोकी-भागवतम्

आदौ देवकि-देवगर्भ-जननं गोपीगृहे वर्धनं
मायापूतनि-जीवितापहरणं गोवर्द्धनोद्धारणम् ।
कंसच्छेदन-कौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनं
एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥

३११. एकश्लोकी-महाभारतम्

आदौ पाण्डव-धार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं
द्यूते श्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालये वर्तनम् ।
लीला-गो-ग्रहणं रणे विहरणं सन्धिक्रियाजृम्भणं
पश्चाद् भीष्म-सुयोधनादि-हननं चैतन्महाभारतम् ॥

३१२. चतुःश्लोकी-भागवतम्

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ १ ॥

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥ ४ ॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि यथा तेषु नु तेष्वहम् ॥ ५ ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥ ६ ॥
एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान् कल्प-विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ७ ॥
इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं चतुःश्लोकीभागवतम् ॥३१२॥

३१३. सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥ १ ॥
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥२॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ३ ॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ५ ॥
सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाऽहम् ॥ ६ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ७ ॥

इति सप्तश्लोकी गीता समाप्ता ॥ ३१३ ॥

३१४. नारद-स्तुतिः

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचन-रचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकल-कुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतोऽस्मि ॥

इति नारदस्तुतिः सम्पूर्णा ॥ ३१४ ॥

३१५. व्यास-स्तुतिः

व्यासं वसिष्ठ-नप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥ १ ॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् वादरायणः ॥ २ ॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णं प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥ ३ ॥
नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥ ४ ॥
वदन-कमल-निर्यद्यस्य पीयूषमाद्यं पिबति जनवरोऽयं पातु सोऽयं गिरं मे ।
वदनवन-विहारः सत्यवत्या कुमारः प्रणतदुरितहारः शार्ङ्गधन्वावतारः ।

इति व्यास-स्तुतिः समाप्ता ॥ ३१५ ॥

३१६. शुक-स्तुतिः

यं प्रव्रजन्तमनुपेयमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूत-हृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ १ ॥
स्व-सुख-निभृतचेतास्तद् व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजित-रुचिर-लीला-ऽऽकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिल-वृजिनघ्नं व्यास-सूनुं नतोऽस्मि ॥ २ ॥

इति शुक-स्तुतिः समाप्ता ॥ ३१६ ॥

३१७. गुरुस्तुतिः

अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥
अखण्डानन्दबोधाय शिष्य-सन्तापहारिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४ ॥

इति गुरुस्तुतिः समाप्ता ॥३१७॥

३१८. राधा-कृष्णध्यानम्

नव-ललित-वयस्कौ नव्य-लावण्य-पुञ्जौ
नवरस-चलचित्तौ नूतन-प्रेमवृत्तौ ।
नव-निधुवन-लीला कौतुकेनातिलोलौ
स्मर निभृत-निकुञ्जे राधिका-कृष्णचन्द्रौ ॥ १ ॥
द्रुत-कनक-सुगौर-स्निग्ध-मेघौघ-नील-
च्छविभिरखिल-वृन्दारण्यमुद्भासयन्तौ ।
मृदुल-नव-दुकूले नीलपीते दधानौ
स्मर निभृत-निकुञ्जे राधिका-कृष्णचन्द्रौ ॥ २ ॥
कान्तिः सितामृशति निन्दित-शारदेन्दु-
र्यत्रैकतो विलसितामसिताङ्गशोभम् ।
वृन्दावनेऽपि कृत-यामुन-गाङ्गसङ्गं
राधा-मुकुन्द - युगलं तदहं नमामि ॥ ३ ॥

इति राधाकृष्णध्यानं समाप्तम् ॥३१८॥

३१९. राधा-कृष्ण-युगलस्तोत्रम्

अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्त-वत्सलम् ।
स्वयं त्वसङ्ख्याण्डपतिं परात्परं राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥ १ ॥
गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो लीलापतीयं निजलोकलीला ।
वैकुण्ठनाथोऽसि यदा त्वमेव लक्ष्मीस्तदेवं वृषभानुजा हि ॥ २ ॥
त्वं रामचन्द्रो जनकात्मजेयं भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम् ।
यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं श्रीदक्षिणास्त्री प्रतिपत्निमुख्याः ॥ ३ ॥
त्वं नारसिंहोऽसि रमा हृदीयं नारायणस्त्वं च नरेण युक्तः ।
तदा त्वियं शान्तिरतीव साक्षाच्छायेव याता च तवानुरूपा ॥ ४ ॥
त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था का ओ यदेमां च विदुः प्रधानम् ।
महान्यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि राधा हृदेयं सगुणा च माया ॥ ५ ॥
यदाऽन्तरात्मा विदितश्चतुर्भिस्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः ।
यदा विराड्-देहधरस्त्वमेव तदाऽखिलं वा भुवि धारणेयम् ॥ ६ ॥
श्यामं च गौरं विदितं द्विधा महस्तवैव साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
गोलोकधामाधिपतिं परेशं परात्परं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥ ७ ॥
सदा पठेद् यो युगलस्तवं परं गोलोकधामं परमं प्रयाति सः ।
इहैव सौन्दर्य-समृद्ध-सिद्धयो भवन्ति तस्याऽपि निसर्गतः पुनः ॥ ८ ॥

इति गर्गसंहितायां ब्रह्मविरचितं श्रीराधाकृष्ण-युगलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३१९॥

३२०. मङ्गलस्तोत्रम्

गणाधिपो भानु-शशी-धरासुतो बुधो गुरुर्भार्गवसूर्यनन्दनाः ।
राहुश्च केतुश्च परं नवग्रहाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ १ ॥
उपेन्द्र इन्द्रो वरुणो हुताशनस्त्रिविक्रमो भानुसखश्चतुर्भुजः ।
गन्धर्व-यक्षोरग-सिद्ध-चारणाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ २ ॥
नलो दधीचिः सगरः पुरूरवा शाकुन्तलेयो भरतो धनञ्जयः ।
रामत्रयं वैन्यबली युधिष्ठिरः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ३ ॥
मनु-र्मरीचि-भृगु-दक्ष-नारदाः पाराशरो व्यास-वसिष्ठ-भार्गवाः ।
वाल्मीकि-कुम्भोद्भव-गर्ग-गौतमाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ४ ॥

रम्भा शची सत्यवती च देवकी गौरी च लक्ष्मीश्च दितिश्च रूक्मिणी ।
कूर्मो गजेन्द्रः सचराऽचरा धरा कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ५ ॥
गङ्गा च क्षिप्रा यमुना सरस्वती गोदावरी वेत्रवती च नर्मदा ।
सा चन्द्रभागा वरुणा त्वसी नदी कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ६ ॥
तुङ्ग-प्रभासो गुरुचक्रपुष्करं गया विमुक्ता बदरी वटेश्वरः ।
केदार-पम्पासरसश्च नैमिषं कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ७ ॥
शङ्खश्च दूर्वासित-पत्र-चामरं मणिः प्रदीपो वररत्नकाञ्चनम् ।
सम्पूर्णकुम्भः सुहुतो हुताशनः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥ ८ ॥
प्रयाणकाले यदि वा सुमङ्गले प्रभातकाले च नृपाभिषेचने ।
धर्मार्थकामाय जयाय भाषित व्यासेन कुर्यात्तु मनोरथं हि तत् ॥९॥

इति व्यासकृतं मङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥ ३२० ॥

३२१. ऋणमोचनस्तोत्रम्

देवताकार्यसिद्ध्यर्थं सभा - स्तम्भ-समुद्भवम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ १ ॥
लक्ष्म्यालिङ्गित-वामाङ्गं भक्तानां वरदायकम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ २ ॥
आन्त्रनालाधरं शङ्खचक्राब्जा-ऽऽयुध-धारिणम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ ३ ॥
स्मरणात् सर्वपापघ्नं कद्रूज - विषनाशनम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ ४ ॥
सिंहनादेन महता दिग्दन्तिभयनाशनम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ ५ ॥
प्रह्लादवरदं श्रीशं दैत्येश्वर-विदारणम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ ६ ॥
क्रूरग्रहैः पीडितानां भक्तानामभयप्रदम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ ७ ॥

वेद - वेदान्त - यज्ञेशं ब्रह्म - रुद्रादि-वन्दितम् ।
श्रीनृसिंहं महावीरं नमामि ऋणमुक्तये ॥ ८ ॥
य इदं पठते नित्यमृणमोचन - संज्ञितम् ।
अनृणी जायते सद्यो धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥

इति नृसिंहपुराणोक्तं ऋणमोचनस्तोत्रं समाप्तम् ॥३२१॥

३२२. हनुमद्रक्षा

वामे करे वैरिभिदं वहन्तं शैलं परिश्रृङ्खल-हारटङ्कम् ।
दधानमच्छं तु सुवर्णवर्णं भजे ज्वलत्कुण्डलमाञ्जनेयम् ॥ १ ॥
पद्मरागमणि-कुण्डलत्विषा पाटलीकृत-कपोल-मस्तकम्।
दिव्य-हेम-कदलीवनान्तरे भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ २ ॥
उद्यदादित्य - सङ्काशमुदार - भुजविक्रमम् ।
कन्दर्प - कोटि - लावण्यं सर्वविद्या - विशारदम् ॥ ३ ॥
श्रीरामहृदयानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम् ।
अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम् ॥ ४ ॥
वामहस्त - महाकृच्छ्र - दशास्यकर - मर्दनम् ।
उद्यद्वीक्षण - कोदण्डं हनूमन्तं विचिन्तयेत् ॥ ५ ॥
हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः ।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः ॥ ६ ॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः ।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥ ७ ॥
एवं द्वादशनामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः ।
स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत् ।
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् ॥ ८ ॥
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ९ ॥
स्फटिकाभं स्वर्णकान्ति द्विभुजं च कृताञ्जलिम् ।
कुण्डलद्वय-संशोभि मुखाम्भोजं हरिं भजे ॥१०॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥११॥

इति हनुमद्रक्षा समाप्ता ॥३२२॥

३२३. रात्रि-शयन-स्तुतिः

जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः।
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ॥ १ ॥
अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥ २ ॥
सर्पापसर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥ ३ ॥
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ ४ ॥
तिस्रो भार्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।
तासां स्मरणमात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः ॥ ५ ॥

इति रात्रि-शयन-स्तुतिः सम्पूर्णा ॥३२३॥

३२४. पिप्पल-स्तुतिः

अश्वत्थ हुतभुग्वास गोविन्दस्य गदाप्रिय।
अशेषं हर मे पापं वृक्षराज! नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
मूले ब्रह्मा त्वचि विष्णुः शाखायां शङ्कर एव च।
पत्रे पत्रे सर्वदेवा वासुदेवाय ते नमः ॥ २ ॥

३२५. गरुडस्तुतिः

श्रीविष्णुवाहं प्रणमामि भक्त्या सर्पाशनं दुःखहरं खगेशम्।
मनोहरं वासुसमानवेगं छन्दोमयं ज्ञानधनं प्रशान्तम् ॥ १ ॥
विष्णुपुत्राय शान्ताय बल-बुद्धियुताय च।
पक्षीन्द्रायाऽतिवेगाय गरुडाय नमो नमः ॥ २ ॥

३२६. दीप-स्तुतिः

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं सन्ध्यादीप! नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

शुभं करोतु कल्याणमारोग्यं सुख-सम्पदाम् ।
मम बुद्धि-प्रकाशं च दीपज्योति ! नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
शुभं भवतु कल्याणमारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ।
आत्मतत्त्वप्रबोधाय दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

३२७. तुलसी-स्तुतिः

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः ।
नमो नमस्ते तुलसि ! पापं हर हरिप्रिये ॥ १ ॥
यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः ।
यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसि ! त्वां नमाम्यहम् ॥ २ ॥

३२८. हनुमत्स्तुतिः

मनोजवं मारुत-तुल्य-वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ १ ॥
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ २ ॥

३२९. कुबेर-स्तुतिः

धनाध्यक्षाय देवाय नरयानोपवेशिने ।
नमस्ते राजराजाय कुबेराय महात्मने ॥

३३०. शङ्ख-स्तुतिः

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य ! नमोऽस्तु ते ॥

३३१. दत्तात्रेय-स्तुतिः

पीताम्बरालङ्कृत - पृष्ठभागं भस्मावगुण्ठा-ऽखिल -रुक्मदेहम् ।
विद्युत्सदा - पिङ्गजटाभिरामं श्रीदत्तयोगीशमहं नतोऽस्मि ॥ १ ॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि-लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ २ ॥

३३२. भगवत्स्तुतिः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ १ ॥
पिता माता गुरुर्भ्राता सखा बन्धुस्त्वमेव मे ।
विद्या सत्कर्म वित्तं च पुरस्पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥ २ ॥

३३३. नवनागस्तुतिः

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम् ।
शङ्खपालं धृतराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा ॥ १ ॥
एतानि नवनामानि नागानां च महात्मनाम् ।
सायङ्काले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः ।
तस्य विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २ ॥

३३४. मुकुन्द-स्तुतिः

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

३३५. अन्नपूर्णास्तुतिः

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्कर-प्राणवल्लभे ।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्धयर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥

३३६. शीतलास्तुतिः

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता ।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः ॥ १ ॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनी-कलशोपेतां शूर्पालंकृत-मस्तकाम् ॥ २ ॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोग-भयापहाम् ।
यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ ३ ॥

३३७. लेखनीस्तुतिः

कृष्णानने द्विजिह्वे च चित्रगुप्तकरस्थिते ।
सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम ॥

३३८. कालीस्तुतिः

काली काली महाकाली कालिके परमेश्वरी ।
सर्वानन्दकरे देवि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

३३९. महाकालीस्तुतिः

या कालिका रोगाहरा सुवन्द्या वैश्यैः समस्तैर्व्यवहारदक्षैः ।
जनैर्जनानां भयहारिणी च सा देवमाता मयि सौख्यदात्री ॥

३४०. महालक्ष्मीस्तुतिः

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां
तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलाङ्गीम् ।
बीजापूरं कनक-कलशं हेमपद्मं दधाना-
माद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम् ॥१॥
सुरा-ऽसुरेन्द्रादि-किरीट-मौक्तिकैर्युक्तं सदा यत्तव पादपङ्कजम् ।
परावरं पातु वरं सुमङ्गलं नमामि भक्त्या तव कामसिद्धये ॥ २ ॥
भवानि त्वं महालक्ष्मीः सर्वकामप्रदायिनि ।
सुपूजिता प्रसन्ना स्यान्महालक्ष्म्यै नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

३४१. महासरस्वतीस्तुतिः

शुक्लां ब्रह्म-विचार-सार-परमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणा-पुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिक-मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥१॥
या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणा-वरदण्ड-मण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्मा-ऽच्युत-शङ्कर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष-जाड्यापहा ॥२॥
वीणाधरे विपुल - मङ्गलदानशीले

भक्तार्त्तिनाशिनि विरिञ्चिहरीशवन्द्ये ।

कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥ ३ ॥
शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदाऽस्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥ ४ ॥

३४२. जन्मभूमिदर्शनफलम्

कपिला-गोसहस्रं च यो ददाति दिने दिने ।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ १ ॥
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम् ।
तत्सर्वं नाशमाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ २ ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥ ३ ॥

३४३. रमेशस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि वरकुण्डलशोभिगण्डं शीतांशु-मण्डलमुखंसितवारिजाक्षम्।
आताम्र-कम्र-मुदिताधरबिम्बजृम्भं ध्यातृप्रहर्षकरहासरसं रमेशम्॥१॥
प्रातर्भजामि धृतकौस्तुभकम्बुकण्ठं स्फीतात्मवक्षसि विराजितभूरिहारम्
भीत-स्वभक्त-भयभञ्जनपाणिपद्मं शातोदरार्पित-जगद्भरमब्जनाभम्।२।
प्रातर्नमामि शुभकिङ्किणि मेखलाङ्कं पीताम्बरं करिकरोरुमुदारजानुम्
ध्यातांघ्रियुग्मरुचिरं जितकञ्जजात-वातादिदेव-वरमौलिमणिं मुकुन्दम्।३।
वादिराजयति - प्रोक्तं श्लोकत्रयमिदं सदा ।
प्रातःकाले पठेन्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
मन्त्रविदो विष्णुभक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदिति स्फुटम् ॥ ५ ॥
इति श्रीमत्पञ्चरात्रागमे पूजाकाण्डे प्रातःस्मरणविधिः समाप्ता ॥३४३॥

३४४. ब्रह्मस्तोत्रम्

जितं ते पुण्डरीकाक्ष ! पूर्णषाड्-पुण्यविग्रह ।
परानन्द परंब्रह्म नमस्ते चतुरात्मने ॥

३४५. भैरव-स्तुतिः

करकलित-कपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुण-तिमिर-नील-व्याल-यज्ञोपवीती ।
क्रतुसमय - सपर्या विघ्न - विच्छेदहेतु-
र्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ।।

३४६. पाण्डुरङ्ग-स्तुतिः

समचरणसरोजं सान्द्रनीलाम्बुदाभं
जघन-निहित-पाणिं मण्डनं मण्डनानाम् ।
तरुण-तुलसिमाला-कन्धरं कञ्जनेत्रं
सदय-धवलहासं विट्ठलं चिन्तयामि ।।

३४७. रामचन्द्रस्तुतिः

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नव-कमल-दल-स्पर्द्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्कारूढसीता-मुखकमल-मिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ।।१।।
कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परमपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थामेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।२।।
राज्यं येन पटान्त-लग्न-तृणवत्त्यक्तं गुरोराज्ञया
पाथेयं परिगृह्य कार्मुकवरं घोरं वनं प्रस्थितः ।
स्वाधीनः शशिमौलिचापविजये प्राप्तो न वै विक्रियां
पायाद् वः स विभीषणाग्रजनिहा रामाभिधानो हरिः।।३।।

३४८. कृष्णस्तुतिः

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिर-चर-गुरुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः ।
गदी शङ्खी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षि-विषयः ।।

३४९. विष्णु-स्तुतिः

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ १ ॥
यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्र-रुद्र-मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्याऽन्तं न विदुः सुरा-ऽसुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥ २ ॥
शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्वलोकैकनाथम् ॥ ३ ॥
नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षि-शिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ ४ ॥
आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥ ५ ॥

इति विष्णु-स्तुतिः समाप्ता ॥३४९॥

३५०. शिव-स्तुतिः

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी-सहितं नमामि ॥ १ ॥
असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखालेखनीपत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीशपारं नयाति ॥ २ ॥
वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्य-शशाङ्क-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥ ३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥ ४ ॥
निरावलम्बस्य ममाऽवलम्बं विपाटिताशेष-विपत्कदम्बम् ।
मदीय-पापाचल-पातशम्बं प्रवर्ततां वाचि सदैव बम् बम् ॥ ५ ॥
पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां पार्वतीनाथ ! सर्वपापहरो भव ॥ ६ ॥
इति शिव-स्तुतिः समाप्ता ॥ ३५० ॥

३५१. बुद्ध-स्तुतिः

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं
पश्याऽनङ्गशरातुरं जनमिमं त्राताऽपि नो रक्षसि ।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान् ?
शश्वन्मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः ॥

३५२. जिन-स्तुतिः

आबाहूद्गत-मण्डलाग्ररुचयः सन्नद्धवक्षःस्थलाः
सोष्माणो व्रणिनो विपक्षहृदय-प्रोन्माथिनः कर्कशाः ।
उत्सृष्टाम्बर-दृष्टि-विभ्रमभरा यस्य स्मराग्रेसरा
योधा वारवधूस्तनाश्च न दधुः क्षोभं स वोऽव्याज्जिनः ॥

३५३. जिनेन्द्र-स्तुतिः

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥

३५४. महावीर-स्तुतिः

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भ्रान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो
महावीरः स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

३५५. मारुतिस्तोत्रम्

मनोजवं मारुत-तुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥

ॐ नमो भगवते विचित्रवीरहनुमते प्रलयकालानल - प्रभाप्रज्वलनाय, प्रतापवज्रदेहाय, अञ्जनीगर्भसम्भूताय, प्रकट-विक्रम-वीर-दैत्य-दानव-यक्ष-रक्षोगण-ग्रहबन्धनाय, भूतग्रहबन्धनाय, प्रेतग्रहबन्धनाय, पिशाचग्रहबन्धनाय, शाकिनी-डाकिनी-ग्रहबन्धनाय, काकिनी-कामिनी-ग्रहबन्धनाय, ब्रह्मग्रहबन्धनाय, ब्रह्मराक्षसग्रहबन्धनाय, चोरग्रहबन्धनाय, मारीग्रहबन्धनाय, एहि-एहि, आगच्छ-आगच्छ, आवेशय-आवेशय, मम हृदये प्रवेशय-प्रवेशय स्फुर-स्फुर, प्रस्फुर-प्रस्फुर, सत्यं कथय, व्याघ्रमुखबन्धन, सर्पमुखबन्धन, राजमुखबन्धन, नारीमुखबन्धन, सभामुखबन्धन, शत्रुमुखबन्धन, सर्वमुखबन्धन, लङ्काप्रासादभञ्जन, कामुकं मे वशमानय, क्लीं क्लीं क्लीं ह्लीं श्रीं श्रीं राजानं वशमानय, श्रीं ह्लीं क्लीं स्त्रिय आकर्षय-आकर्षय शत्रून् मर्दय-मर्दय, मारय-मारय चूर्णय-चूर्णय, खे-खे, श्रीरामचन्द्राज्ञया मम कार्यसिद्धिं कुरु कुरु ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः फट् स्वाहा, विचित्रवीर हनूमन्! मम सर्वशत्रून् भस्म कुरु-कुरु, हन-हन हुं फट् स्वाहा। एकादश-शतवारं जपित्वा सर्वशत्रून् वशमानयति नाऽन्यथेति।

इति पण्डितश्रीराजबलीत्रिपाठि-'विनीत'संस्कृतं मारुतिस्तोत्रं समाप्तम्॥३५५॥

३५६. कार्तिकेयस्तोत्रम्

स्कन्द उवाच

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः।
स्कन्दः कुमारः सेनानी स्वामी शङ्करसम्भवः॥ १॥
गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चारिश्च षडाननः॥ २॥
शब्दब्रह्मसमुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः॥ ३॥
शरजन्मा गणाधीशपूर्वजो मुक्तिमार्गकृत्।

सर्वागमप्रणेता च वाञ्छितार्थप्रदर्शनः ॥ ४ ॥
अष्टाविंशतिनामानि मदीयानीति यः पठेत् ।
प्रत्यूषं श्रद्धया युक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत् ॥ ५ ॥
महामन्त्रमयानीति मम नामानुकीर्तनम् ।
महाप्रज्ञामवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥
इति श्रीरुद्रयामले प्रज्ञाविवर्धनाख्यं कार्तिकेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३५६॥

३५७. गणेश-स्तुतिः

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूर-पूर-परिशोभित-गण्डयुग्मम् ।
उद्दण्ड-विघ्न-परिखण्डन-चण्ड-दण्डमाखण्डलादि-सुरनायक-वृन्द-वन्द्यम् १
गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः ।
द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः ॥ २ ॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः ।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
विश्वं तस्य भवेद् वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित् ॥ ३ ॥

३५८. सत्यरूप-स्तुतिः

सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम् ।
यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम् ॥ १ ॥
त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव ! श्रीनाथ ! विष्णो ! भवदाज्ञया वै ।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥ २ ॥

३५९. द्वादश-देवविशेष-स्तुतिः

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे ममलेश्वरम् ॥ १ ॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥ २ ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥ ३ ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिः फलं लभेत् ॥ ४ ॥

३६०. दुःस्वप्न-नाशन-सूर्यस्तुतिः

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं च प्रभाकरः॥ १॥
पञ्चमं च सहस्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः॥ २॥
नवमं दिनकृत् प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकः।
एकादशं त्रयीमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च॥ ३॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातःकाले पठेन्नरः।
दुःस्वप्ननाशनं सद्यः सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ ४॥

३६१. दुःस्वप्ननाशनदेव-स्मरणम्

अविमुक्त-चरण-युगलं दक्षिणमूर्तेश्च कुक्कुटचतुष्कम्।
स्मरणं वाराणस्यां निहन्ति दुःस्वप्नमशकुनं च॥

३६२. ऋषिस्तुतिः

भृगु-र्वशिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ १॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरि-पिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ ३॥
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेद् स्मरेद् वा शृणुयाच्च तद्वत्।
दुःखप्रणाशस्त्विह सुप्रभाते भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात्॥ ४॥

इति ऋषिस्तुतिः समाप्ता॥३६२।

३६३. सप्त-चिरजीवि-स्तुतिः

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥ १॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद् वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः॥ २॥

३६४. पुण्यजन-स्तुतिः

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥

३६५. हकारादि-पञ्चदेव-स्तुतिः

हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनुमन्तं हलायुधम् ।
पञ्चकं हं स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम् ॥

३६६. पञ्चदेवी-स्तुतिः

उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम् ।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वर्द्धते सदा ॥

३६७. पञ्चकन्या-स्तुतिः

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

३६८. सप्तर्षि-स्मरणम्

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गोतमः ।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥ १ ॥
तेषां वंशानुवंशानां वेदमन्त्रस्य द्रष्टृणाम् ।
संस्मरामि सदा चैव भक्त्या धर्ममार्गप्रदर्शकान् ।

३६९. सप्तपुरी-स्तुतिः

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

३७०. राजर्षिस्तुतिः

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च ।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् ॥

३७१. अनिरुद्धादिदेव-स्तुतिः

अनिरुद्धं गजं ग्राहं वासुदेवं महाद्युतिम् ।
सङ्कर्षणं महात्मानं प्रद्युम्नं च तथैव च ॥ १ ॥

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च।
नारसिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ २ ॥
विश्वरूपं हृषीकेशं गोविन्दं मधुसूदनम्।
त्रिदशैर्वन्दितं देवं दृढभक्तिमनूपमम् ॥ ३ ॥
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥ ४ ॥

३७२. प्रातर्वन्दनीय-स्तुतिः

प्रातःकाले पिता माता ज्येष्ठभ्राता तथैव च।
आचार्याः स्थविराश्चैव वन्दनीया दिने दिने ॥

३७३. प्रातर्दर्शनम्

कपिलां दर्पणं धेनुं भाग्यवन्तं च भूपतिम्।
आचार्यम् अन्नदातारं प्रातः पश्येद् बुधो जनः ॥ १ ॥
श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितिं तथा।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स विमुच्यते ॥ २ ॥

३७४. पृथ्वी-स्तुतिः

स्वर्गौकोभिरदोनिवासि-पुरुषारब्धाति-शुद्धाध्वर-
स्वाहाकार-वषट्क्रियोत्थममृतं स्वादीय आदीयते।
आम्नाय-प्रवणैरलङ्कृतजुषेऽमुष्मै मनुष्यैः शुभै-
र्दिव्यक्षेत्र-सरित्-पवित्रवपुषे देव्यै पृथिव्यै नमः ॥ १ ॥
समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥ २ ॥

३७५. दन्तधावन-स्तुतिः

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते! ॥

३७६. कुम्भस्तुतिः

देव-दानव-संवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि यदा कुम्भ! विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥ १ ॥

त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥ २॥
शिवः स्वयं त्वमेवाऽसि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः॥ ३॥

३७७. षोडश-मातृका-स्तुतिः

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥ १॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥ २॥

३७८. [1]शैलपुत्री-स्तुतिः

जगत्पूज्ये जगद्-वन्द्ये सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि।
सर्वात्मिकेशि! कौमारि! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते॥

३७९. ब्रह्मचारिणी-स्तुतिः

त्रिपुरां त्रिगुणाधारां मार्गज्ञान-स्वरूपिणीम्।
त्रैलोक्य-वन्दितां देवीं त्रिमूर्ति प्रणमाम्यहम्॥

३८०. चन्द्रघण्टा-स्तुतिः

कालिकां तु कलातीतां कल्याण-हृदयां शिवाम्।
कल्याण-जननीं नित्यं कल्याणीं प्रणमाम्यहम्॥

---

१. प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥ १॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रिश्च महागौरीति चाऽष्टमम्॥ २॥
नवमं सिद्धिदात्री च नव दुर्गाः प्रकीर्तिताः।

३८१. कूष्माण्डास्तुतिः

अणिमादि-गुणौदारां मकराकार-चक्षुषम् ।
अनन्त-शक्ति-भेदां तां कामाक्षीं प्रणमाम्यहम् ॥

३८२. स्कन्दमातास्तुतिः

चण्डवीरां चण्डमायां चण्ड-मुण्ड-प्रभञ्जनीम् ।
तां नमामि च देवेशीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥

३८३. कात्यायनीस्तुतिः

सुखानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवैर्नमस्कृताम् ।
सर्वभूतात्मिकां देवीं शाम्भवीं प्रणमाम्यहम् ॥

३८४. कालरात्रिस्तुतिः

चण्डवीरां चण्डमायां रक्तबीज-प्रभञ्जनीम् ।
तां नमामि च देवेशीं गायत्रीं गुणशालिनीम् ॥

३८५. महागौरीस्तुतिः

सुन्दरीं स्वर्ण-सर्वाङ्गीं सुख-सौभाग्य-दायिनीम् ।
सन्तोषजननीं देवीं सुभद्रां प्रणमाम्यम् ॥

३८६. सिद्धिदास्तुतिः

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भय-दुर्गविनाशिनि ।
प्रणमामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गति-नाशिनीम् ॥

३८७. सिद्धिलक्ष्मीस्तुतिः

आकारब्रह्मरूपेण ॐकारं विष्णुमव्ययम् ।
सिद्धिलक्ष्मि ! परालक्ष्मि ! लक्ष्यलक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
याः श्रीः पद्मवने कदम्बशिखरे राजगृहे कुञ्जरे
श्वेते चाऽश्वयुते वृषे च युगले यज्ञे च यूपस्थिते ।
शङ्खे देवकुले नरेन्द्रभवने गङ्गातटे गोकुले
या श्रीस्तिष्ठति सर्वदा मम गृहे भूयात् सदा निश्चला ॥ २ ॥

या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी
गम्भीरावर्तनाभिः स्तनभरनमिता शुद्धवस्त्रोत्तरीया।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणि-गण-खचितैः स्नापिता हेमकुम्भै-
र्नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता ॥ ३ ॥

३८८. शनिस्तुतिः

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रान्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलाश्रय-संस्थितः ॥ १ ॥
एतानि शनि-नामानि जपेदश्वत्थसन्निधौ।
शनैश्चरकृता पीडा न कदाऽपि भविष्यति ॥ २ ॥

३८९. शनिपत्नी-नामस्तुतिः

ध्वजिनी धामनी चैव कङ्काली कलहप्रिया।
कण्टकी कलही चाऽथ तुरङ्गी महिषी अजा ॥ १ ॥
शनेर्नामानि पत्नीनामेतानि सञ्जपन् पुमान्।
दुःखानि नाशयेन्नित्यं सौभाग्यमेधते सुखम् ॥ २ ॥

३९०. ग्रहस्तुतिः

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनि-राहु-केतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

३९१. गङ्गास्तुतिः

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनात्तारिणी
पारावारविहारिणी भव-भय-श्रेणी-समुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्त-विहारिणी विजयते गङ्गामनोहारिणी ॥

३९२. यमुना-स्तुतिः

अयि मधुरे मधुमोद-विलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
परिजन-पालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकाम-विलासधरे।
व्रजपुरवासि-जनार्दित-पातक-हारिणि विश्वजनोद्धरिके
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥

३९३. माला-स्तुतिः

महामाये महामाले सर्वशक्ति-स्वरूपिणि ! ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।। १ ।।
अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ।। २ ।।

३९४. विष्णोरेकादशनाम-स्तुतिः

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन ! ।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन ! ।। १ ।।
इत्येकादश-नामानि पठेद्यो पाठयेद्यतिः ।
जन्मकोटि-सहस्राणां पातकादेव मुच्यते ।। २ ।।
हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे ।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष ।। ३ ।।

३९५. सत्यनारायणाष्टकम्

आदिदेवं जगत्कारणं श्रीधरं लोकनाथं विभुं व्यापकं शङ्करम् ।
सर्वभक्तेष्टदं मुक्तिदं माधवं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।१।।
सर्वदा लोक-कल्याण-पारायणं देव-गो-विप्र-रक्षार्थ-सद्विग्रहम् ।
दीन-हीनात्म-भक्ताश्रयं सुन्दरं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।२।।
दक्षिणे यस्य गङ्गा शुभा शोभते राजते सा रमा यस्य वामे सदा ।
यः प्रसन्नाननो भाति भव्यश्च तं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।३।।
सङ्कटे सङ्गरे यं जनः सर्वदा स्वात्मभीनाशनाय स्मरेत् पीडितः ।
पूर्णकृत्यो भवेद् यत्प्रसादाच्च तं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।४।।
वाञ्छितं दुर्लभं यो ददाति प्रभुः साधवे स्वात्मभक्ताय भक्तिप्रियः ।
सर्वभूताश्रयं तं हि विश्वम्भरं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।५।।
ब्राह्मणः साधु-वैश्यश्च तुङ्गध्वजो येऽभवन् विश्रुता यस्य भक्त्याऽमराः ।
लीलया यस्य विश्वं ततं तं विभुं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।१।।
येन चाब्रह्मबालतृणं धार्यते सृज्यते पाल्यते सर्वमेतज्जगत् ।
भक्तभावप्रियं श्रीदयासागरं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ।।७ ।।

सर्वकामप्रदं सर्वदा सत्प्रियं वन्दितं देववृन्दैर्मुनीन्द्रार्चितम् ।
पुत्र-पौत्रादि-सर्वेष्टदं शाश्वतं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥८॥
अष्टकं सत्यदेवस्य भक्त्या नरः भावयुक्तो मुदा यस्त्रिसन्ध्यं पठेत् ।
तस्य नश्यन्ति पापानि तेनाऽग्निना इन्धनानीव शुष्काणि सर्वाणि वै ॥९॥

इति सत्यनारायणाष्टकं समाप्तम् ॥३९५॥

३९६. सत्यनारायण-स्तुतिः

ध्यायेत् सत्यं गुणातीतं गुणत्रय-समन्वितम् ।
लोकनाथं त्रिलोकेशं कौस्तुभाभरणं हरिम् ॥ १ ॥
नीलवर्णं पीतवस्त्रं श्रीवत्सपदभूषितम् ।
गोविन्दं गोकुलानन्दं ब्रह्माद्यैरपि पूजितम् ॥ २ ॥
सत्यनारायणं देवं वन्देऽहं कामदं प्रभुम् ।
लीलया विततं विश्वं येन तस्मै नमो नमः ॥ ३ ॥

३९७. वेङ्कटेश-द्वादशनाम-स्तोत्रम्

श्रीवेङ्कटेशमतिसुन्दरमोहनाङ्गं श्रीभूमिकान्तमरविन्ददलायताक्षम् ।
प्राणप्रियं परमकारुण-कम्बुराशिं ब्रह्मेशवन्द्यममृतं वरदं नमामि ॥१॥
अखिल-विबुध-वन्द्यं विश्वरूपं सुरेशमभय-वरदहस्तं कञ्जजाक्षं रमेशम् ।
जलधरनिभकान्तिं श्रीमहिष्यां समेतं परमपुरुषमाद्यं वेङ्कटेशं नमामि ।२

वेङ्कटेशो वासुदेवो वारिजासनवन्दितः ।
स्वामि-पुष्करिणीवासः शङ्ख-चक्र-गदाधरः ॥ ३ ॥
पीताम्बरधरो देवो गरुडारूढशोभितः ।
विश्वात्मा विश्वलोकेश-विजयो वेङ्कटेश्वरः ॥ ४ ॥
एतानि द्वादशनामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५ ॥

इति श्रीवेङ्कटेश-द्वादशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३९७॥

३९८. सूर्यवरदस्तोत्रम्

धौम्य उवाच

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषाऽर्कः सविता रविः ।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥ १ ॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् ।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥ २ ॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥ ३ ॥
वैद्युतो जागरश्चाग्निः रैन्धनस्तेजसां पतिः ।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥ ४ ॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाश्रयः ।
कला-काष्ठा-मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥ ५ ॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताऽव्यक्तः सनातनः ॥ ६ ॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनाऽरिहा ॥ ७ ॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥ ८ ॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
जयो विशालो वरदः सर्वधातृनिषेविता ॥ ९ ॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः ।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः ॥१०॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥११॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
चराऽचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः ॥१२॥
एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्याऽमिततेजसः ।
नामाऽष्टकशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भुवा ॥१३॥

सुरगण - पितृयज्ञसेवितं ह्यसुर -निशाचर - सिद्धवन्दितम् ।
वरकनक-हुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥१४॥
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठन् स-पुत्र-दारान् धन-रत्न-सञ्चयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥१५॥
इमं स्तवं देववरस्य मानवः प्रकीर्तयेच्छुचि-सुमना समाहितः ।
विमुच्यते शोक-दवाग्नि-सागरात् लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् ।१६।

इति महाभारतान्तर्गतं सूर्यवरदस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३९८॥

३९९. विश्वनाथनगरीस्तोत्रम्

यत्र देवपतिदेहिनां मुक्तिरेव भवतीति निश्चितम् ।
पूर्वपुण्यनिचयेन लभ्यते विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ १ ॥
स्वर्गतः सुखकरी दिवौकसां शैलराजतनयाऽतिवल्लभा ।
ढुण्ढि-भैरव-विदारितविघ्ना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ २ ॥
यत्र तीर्थमलं मणिकर्णिका सा सदाशिवसुखप्रदायिनी ।
या शिवेन रचिता निजायुधैर्विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ३ ॥
सर्वदा अमरवृन्दवन्दिता गजेन्द्रमुखवारितविघ्ना ।
कालभैरवकृतैकशासना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ४ ॥
यत्र मुक्तिरखिलैस्तु जन्तुभिर्लभ्यते मरणमात्रतः शुभा ।
साऽखिलामरगणस्पृहणीया विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥ ५ ॥
उरगं तुरगं खगं मृगं वा करिणं प्रसरिणं खरं नरं वा ।
सकृदाप्लुत एव देवनद्यां लहरी किं न वरं चरीकरीति ॥ ६ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं विश्वनाथनगरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३९९॥

४००. मृत्य्वष्टकम्

मार्कण्डेय उवाच

नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम् ।
प्रपन्नोऽस्मि हृषीकेशं किं नो मृत्युः करिष्यति ? ॥ १ ॥
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम् ।
केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ? ॥ २ ॥

वासुदेवं जगद्योनिं भानुवर्णमतीन्द्रियम् ।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ३ ॥
शङ्ख-चक्रधरं देवं छन्दोरूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ४ ॥
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम् ।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ५ ॥
पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम् ।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ६ ॥
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ७ ॥
सहस्रशीर्षसं देवं व्यक्ताऽव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ८ ॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः ।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीडितः ॥ ९ ॥
इत्येन विजितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥१०॥
मृत्यवष्टकमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
मार्कण्डेय-हितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥११॥
य इदं पठते भक्त्या त्रिकाले नियतः शुचिः ।
नाऽकाले तस्य मृत्युः स्यात् नरस्याऽच्युतचेतसः ॥१२॥
हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुरातनं नारायणं शाश्वतमादिदेवम् ।
सञ्चिन्त्य सूर्यादि-विराजमानं मृत्युं स योगी जितवांस्तदैव ॥१३॥

इति नृसिंहपुराणे मार्कण्डेयकृतं मृत्यवष्टकं समाप्तम् ॥४००॥

४०१. तुलसीमाहात्यम्

पापानि यानि रविसूनुपटस्थितानि
गो-ब्रह्म-बाल-पितृ-मातृवधादिकानि ।
नश्यन्ति तानि तुलसीवनदर्शनेन
गोकोटिदानसदृशं फलमाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवो वसन्ति तुलसीवने ॥ २ ॥
तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनानि च ।
वसन्ति वैष्णवा यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥ ३ ॥
यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः ।
यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसि ! त्वां नमाम्यहम् ॥ ४ ॥
तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे ! ।
नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये ॥ ५ ॥
राजद्वारे सभामध्ये संग्रामे शत्रुपीडने ।
तुलसी-स्मरणं कुर्यात् सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ६ ॥
तुलस्यमृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिये ।
केशवार्थे विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥ ७ ॥
मोक्षैकहेतोर्धरणीधरस्य विष्णोः समस्तस्य गुरोः प्रियस्य ।
आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य छिन्दे दलं ते तुलसि क्षमस्व ॥ ८ ॥
कृष्णारम्भे तथा पुण्ये विवाहे चाऽर्थसंग्रहे ।
सर्वकार्येषु सिद्ध्यर्थं प्रस्थाने तुलसीं स्मरेत् ॥ ९ ॥
यः स्मरेत् तुलसीं सीतां रामं सौमित्रिणा सह ।
विनिर्जित्य रिपून् सर्वान् पुनरायाति कार्यकृत् ॥ १० ॥
या दृष्टा निखिलाऽघसङ्घ-शमनी स्पृष्टा वपुः पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति-फलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥ ११ ॥
खादन् मांसं पिबन् मद्यं सङ्गच्छन्नन्त्यजादिभिः ।
सद्यो भवति पूतात्मा कर्णयोस्तुलसीधृता ॥ १२ ॥
चतुःकर्णे मुखे चैकं नाभावेकं तथैव च ।
शिरस्येकं तथा प्रोक्तं तीर्थं त्रयमुदाहृतम् ॥ १३ ॥
अङ्गोपरि तथा पञ्च भोजनान्ते दलत्रयम् ।
एवं श्रीतुलसी ग्राह्या दशधा मङ्गलप्रदा ॥ १४ ॥

इति श्रीतुलसीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ७० ॥

४०२. तीर्थ-स्तुतिः

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥ १॥
कुरुक्षेत्र - गया - गङ्गा - प्रभास - पुष्कराणि च।
एतानि पुण्यतीर्थानि स्नानकाले भवन्त्विह॥ २॥
त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता।
याचितं देहि मे तीर्थं तीर्थराज! नमोऽस्तु ते॥ ३॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम॥ ४॥
विष्णु - पादाब्ज-सम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि!॥ ५॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ६॥

इति तीर्थ-स्तुतिः समाप्ता ॥४०२॥

४०३. शिव-शिवा-स्तुतिः

ॐ नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने।
नन्दि - भृङ्गि - महाव्यालगण - युक्ताय शम्भवे॥ १॥
शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे।
नमस्ते ब्रह्मचारिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः॥ २॥
संसारभय - सन्तापात् पाहि मां सिंहवाहिनि।
राज्य-सौभाग्य-सम्पत्तिं देहि मामम्ब पार्वति॥ ३॥

४०४. वामन-स्तुतिः

देवेश्वराय देवाय देवसम्भूतिकारिणे।
प्रभवे सर्ववेदानां वामनाय नमो नमः॥ १॥
नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने।
प्रणमामि सदा भक्त्या बालवामनरूपिणे॥ २॥
नमः शार्ङ्गधनु-र्बाणपाणये वामनाय च।
यज्ञभुक् फलदात्रे च वामनाय नमो नमः॥ ३॥

४०५. इन्द्र-स्तुतिः

ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तो महाबलः ।
शतयज्ञाभिधो देवस्तस्मादिन्द्राय ते नमः ॥

४०६. शशाङ्क-स्तुतिः

ज्योत्स्नानां पतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।
नमस्ते रोहिणीकान्त ! सुधावास ! नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नमो मण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटेः ।
कलाभिर्वर्द्धमानाय नभश्चन्द्राय चारवे ॥ २ ॥

४०७. रवि-स्तुतिः

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः ।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां दहतु मे रविः ॥

४०८. चन्द्र-स्तुतिः

रोहिणीशः सुधामूर्तिः सुधागात्रो सुधाशनः ।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां दहतु मे विधुः ॥

४०९. कुज-स्तुतिः

भूमिपुत्रो महातेजा जगतोभयकृत्सदा ।
वृष्टिकृद्-वृष्टिहर्ता च पीडां दहतु मे कुजः ॥

४१०. बुध-स्तुतिः

उत्पातरूपी जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः ।
सूर्यप्रियकरो विद्वान् पीडां दहतु मे बुधः ॥

४११. गुरु-स्तुतिः

देवमन्त्री विशालाक्षो सदा लोकहिते रतः ।
अनेक-शिष्य-सम्पूर्णः पीडां दहतु मे गुरुः ॥

४१२. भृगु-स्तुतिः

दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्रणवश्च महाद्युतिः ।
प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां दहतु मे भृगुः ॥

४१३. शनि-स्तुतिः

सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः ।
मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां दहतु मे शनिः ॥

४१४. राहु-स्तुतिः

महाशीर्षो महावक्त्रो महादंष्ट्रो महायशाः ।
अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां दहतु मे तमः ॥

४१५. केतु-स्तुतिः

अनेकरूपवर्णैश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
उत्पातरूपी घोरश्च पीडां दहतु मे शिखी ॥

४१६. सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि ! त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ? ॥ १ ॥

देव्युवाच

शृणु देव ! प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाऽप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥ २ ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकी-स्तोत्रमन्त्रस्य नारायण-ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवता श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ १ ॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्य - दुःख - भयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ २ ॥
सर्वमङ्गल - मङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

शरणागत - दीनार्त - परित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति-समन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ ६ ॥
सर्ववाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याऽखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्-वैरिविनाशनम् ॥ ६ ॥

इति सप्तश्लोकी दुर्गा समाप्ता ॥४१६॥

४१७. सार्द्धश्लोकी दुर्गा

मधु-कैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
शक्रादिस्तुतिकं चैव दूत-संवाद एव च ॥ १ ॥
शुम्भराजवधश्चैव नारायणकृत-स्तुतिः ।
सार्द्धपाठमिदं प्रोक्तं नव - पाठफलप्रदम् ॥ २ ॥

४१८. सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥ १ ॥
न कवचं नाऽर्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नाऽपि ध्यानं च न न्यासो न च वाऽर्चनम् ॥ २ ॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥

मन्त्रः—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे । ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय-ज्वालय ज्वल-ज्वल प्रज्वल-प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ।

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषमर्दिनि ॥ १ ॥
नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥ २ ॥
जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥ ३ ॥
क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते ।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥ ४ ॥
विच्चे चाऽभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥ ५ ॥
धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नीं वां वीं वूं वागधीश्वरी ।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ ६ ॥
हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी ।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ॥ ७ ॥
अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं
धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ।
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥ ८ ॥
सां सीं सूं सप्तशतीदेव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ।
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ।
अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ।
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् ।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥ ९ ॥

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४१८॥

४१९. दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाममाला-स्तुतिः

दुर्गा दुर्गतिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥ १ ॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।
दुर्गमज्ञानदा दुर्ग - दैत्यलोक - दवानला ॥ २ ॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥ ३ ॥

दुर्गम - ज्ञान - संस्थाना दुर्गम-ध्यानभासिनी ।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥ ४ ॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी ।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥ ५ ॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥ ६ ॥
पठेत् सर्वभयान् मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥

इति दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाममाला-स्तुतिः समाप्ता ।४१९॥

४२०. देव्यष्टकम्

महादेवीं महाशक्तिं भवानीं भववल्लभाम् ।
भवार्ति-भञ्जनकरीं वन्दे त्वां लोकमातरम् ॥ १ ॥
भक्तप्रियां भक्तिगम्यां भक्तानां कीर्ति-वर्धिकाम् ।
भवप्रियां सतीं देवीं वन्दे त्वां भक्तवत्सलाम् ॥ २ ॥
अन्नपूर्णां सदापूर्णां पार्वतीं पर्वपूजिताम् ।
महेश्वरीं वृषारूढां वन्दे त्वां परमेश्वरीम् ॥ ३ ॥
कालरात्रिं महारात्रिं मोहरात्रिं जनेश्वरीम् ।
शिवकान्तां शम्भुशक्तिं वन्दे त्वां जननीमुमाम् ॥ ४ ॥
जगत्कर्त्रीं जगद्धात्रीं जगत्संहारकारिणीम् ।
मुनिभिः संस्तुतां भद्रां वन्दे त्वां मोक्षदायिनीम् ॥ ५ ॥
देवदुःखहरामम्बां सदा देवसहायकाम् ।
मुनिदेवैः सदा सेव्यां वन्दे त्वां देवपूजिताम् ॥ ६ ॥
त्रिनेत्रां शङ्करीं गौरीं भोगमोक्षप्रदां शिवाम् ।
महामायां जगद्बीजां वन्दे त्वां जगदीश्वरीम् ॥ ७ ॥
शरणागतजीवानां सर्वदुःख - विनाशिनीम् ।
सुख-सम्पत्करीं नित्यां वन्दे त्वां प्रकृतिं पराम् ॥ ८ ॥
देव्यष्टकमिदं पुण्यं योगानन्देन निर्मितम् ।
यः पठेत् भक्तिभावेन लभते स परं सुखम् ॥ ९ ॥

इति देव्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥४२०॥

४२१. देवीस्तोत्रम्

नमस्तेऽस्तु दुर्गे सदानन्दरूपे सुरैः स्तूयमाने मुनीनां सुपूज्ये ।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे नमस्ते भवाम्भोधिसन्तारदक्षेः ॥१॥
नमस्ते नमस्ते सदा दैवतेज्ये तथा दीनःदुखे दयाक्रान्तचित्ते ।
नमस्ते महादेवमान्ये भवानि सुदीनं स्वदासं जनं पाहि शश्वत् ॥२॥
नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे सदा योगिगम्ये स्वभक्त्येकलभ्ये ।
रमा-शारदा-शम्भुकान्तास्वरूपे नमस्ते महाकालिके शुद्धरूपे ॥३॥
नमस्तेऽम्बिके भक्तसंसेव्यपादे नमस्तेऽघविध्वंसिके सर्वशक्ते ।
जगत्कानने क्रोध-कामादिहिंस्रैः परीतोऽस्मि मातः सदा रक्ष रक्ष ॥४॥
नमस्ते जगद्बीजरूपे महेशि स्वभक्तेषु रक्ते शरण्ये त्रिनेत्रे ।
त्वदन्या न चास्ते विपन्नाशकारी सुसम्पत्प्रदां त्वां सदा संनतोऽस्मि॥५॥
अहं देवि याचे पदाम्भोजसेवां भवत्यास्तथा भक्तिभावं भवेऽद्य ।
प्रसीदाम्ब दासे सदा शैलपुत्रि शिवां शङ्करीं पार्वतीं त्वां भजामि॥६॥
त्वदन्यो न मान्यो न चाऽन्यश्च गण्यस्त्वमेकाऽसि मातर्जगज्जालहेतुः।
जगन्नाशिका पालिका च त्वमेव गिरेर्बालिकां कालिकां सन्नतोऽहम्॥७॥
श्रियं शारदां शम्भुशक्तिं महेशीं त्रिनेत्रीं च दुर्गां तथा कालरात्रिम् ।
तुषाराद्रिपुत्रीं जगद्-दुःखहन्त्रीं स्मरन् दुःखनाशो भवेन्मानवानाम् ॥८॥

इदं स्तोत्रं महादेव्या योगानन्देन निर्मितम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स नरो वाञ्छितं लभेत् ॥ ९ ॥

इति योगानन्दप्रणीतं देवीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४२१॥

४२२. अर्द्धश्लोकी-भागवतम्

श्लोकार्द्धे तथा प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम् ।
'सर्वं खल्विदमेवाऽहं नाऽन्यदस्ति सनातनम् ॥'

४२३. गुरुतत्त्व-विवेचनम्

अन्धेनाऽन्धीकृतं विश्वं सचक्षुस्तु सचक्षुषम् ।
दिदृक्षा चेद्व्रज त्वं तु देशिकेन्द्रं सचक्षुषम् ॥ १ ॥
अन्धस्य गुरुरेकाक्षस्तस्य द्व्यक्षो गुरुर्मतः ।
द्व्यक्षाणामपि सर्वेषां गुरुस्त्र्यक्षो न तत्समः ॥ २ ॥

सहस्राक्षादयः सर्वे द्व्यक्षा एव हि केवलम् ।
कार्यध्येय-दृशो यस्मात् त्र्यक्षशिष्यपदे स्थिताः ॥ ३ ॥
त्र्यक्षस्तु भगवानादिपुरुषः शङ्करो भवः ।
सृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि कायमध्येऽथ संदिशन् ॥ ४ ॥
उभयातीतममलं तृतीयाक्षस्य गोचरम् ।
ददाति प्रार्थितस्तुष्टः श्रीगुरुः परमेश्वरः ॥ ५ ॥
स आदिनाथो भगवाननादिर्ज्ञानाम्बुधिः स्वात्मरतिर्महात्मा ।
श्रीदेशिकेन्द्रः करुणाम्बुराशिर्नानास्वरूपैश्चरतीह लोके ॥ ६ ॥
क्वचिच्च किञ्चित् कुरुते मनस्वी क्वचिन्न किंचित् कुरुते प्रमत्तः ।
बालो यथा क्रीडति सर्वलोके तथैव स क्रीडति पामरेषु ॥ ७ ॥
स लभ्यते केनचिदेव पुंसा विज्ञायते केनचिदेव पुंसा ।
प्रस्तूयते केनचिदेव पुंसा शृणोति वा तं स नरोऽपि धन्यः ॥ ८ ॥

इति श्रीकृष्णानन्दयतिविरचितं गुरुतत्त्वविवेचनं सम्पूर्णम् ॥४२३॥

४२४. अनन्त-स्तुतिः

अनन्त-संसार-महासमुद्रे मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ! ।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तसूत्राय नमो नमस्ते ॥

४२५. वैष्णवीदेवी-स्तुतिः

वन्देऽहं युवतीं नित्यां कृष्णवर्णां चतुर्भुजाम् ।
रविमण्डलमध्यस्थां गायत्रीं सुखदां नृणाम् ॥ १ ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारिणीं दुःखदारिणीम् ।
वैष्णवीं गरुडारूढां भक्तानां भयहारिणीम् ॥ २ ॥
अनन्यशरणां ज्ञात्वा प्रपद्ये शरणं तव ।
त्वदेकशरणं मातः त्राहि मां शरणागताम् ॥ ३ ॥
श्लोकमेतत् त्रयं नित्यं मध्याह्ने तु विशेषतः ।
सायं-प्रातः पठेन्नित्यं सर्वकामप्रदा भवेत् ॥ ४ ॥

इति श्रीगार्ग्यमुनि'द्विजेन्द्र'कविकृता वैष्णवी-स्तुतिः समाप्ता ॥४२५॥

४२६. सिद्धशारदा-स्तुतिः

सरस्वतीं शारदां च कौमारीं ब्रह्मचारिणीम् ।
वागीश्वरीं बुद्धिदात्रीं भारतीं भुवनेश्वरीम् ॥ १ ॥
चन्द्रघण्टां मरालस्थां जगन्मातरमुत्तमाम् ।
वरदायिनीं सदा वन्दे चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥ २ ॥
द्वादशैतानि नामानि सततं ध्यानसंयुतः ।
यः पठेत् तस्य जिह्वाग्रे नूनं वसति शारदा ॥ ३ ॥

इति श्री 'द्विजेन्द्र'कविकृता सिद्धशारदा-स्तुतिः समाप्ता ॥४२६॥

४२७. अक्षमाला-स्तुतिः

श्रीगायत्रीं त्रयीं विद्यां प्रणम्य परमेश्वरीम् ।
'अक्षमाला-स्तुतिं' दिव्यां करोमि सुखदां सताम् ॥ १ ॥
अथाऽव्यक्ताऽऽदिशक्तिर्या महादेवीन्दिरेश्वरीम् ।
उमोर्ध्वकेशी ऋग्वेदा 'ऋ'रूपा ऋद्धिदायिनी ॥ २ ॥
लृप्तधर्माऽस्ति 'लृ'नाम्नी त्वेकाक्षरविहारिणी ।
ऐन्द्री ह्योङ्काररूपा या चौपासनफलप्रदा ॥ ३ ॥
अण्डमध्यस्थिता देवी 'अः'कार-मनुरूपिणी ।
षोडशीं लोकपूज्यां तां सर्वदा संस्मराम्यहम् ॥ ४ ॥
ततो व्यञ्जनवर्णस्थां कमलां खगवाहनाम् ।
गङ्गां च धर्मदां देवीं 'ङ'क्षरां प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
चण्डिकां सततं वन्दे देवीं छन्दोऽनुगां पराम् ।
जयन्तीं क्षणनिर्घोषां 'ञ'रूप-वृषवाहनाम् ॥ ६ ॥
टङ्कवर्णान्वितां दिव्यां 'ठ-ठ'शब्द-निनादिनीम् ।
डमरूभूषणां देवीं ढक्काहस्तां नमाम्यहम् ॥ ७ ॥
ण'वर्णरूपिणीं दिव्यां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
थावरां[1] सततं वन्दे दण्डकारण्यवासिनीम् ॥ ८ ॥
धर्मशीलां नदीरूपां परब्रह्मात्मिकां तथा ।
फलदां बहुनेत्रां च भवानीं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥

---

१. 'थावराम्' इत्यत्राद्यक्षररूपत्वात् 'स्थावरामि' त्यूह्यम् ।

मालिनीं तां महामायां पञ्चविंशतिवर्णिकाम् ।
नत्वा पुनः स्मराम्यत्र य-क्षवर्णात्मिकाद्भुताम् ॥१०॥
यक्षिणां योगमायां तां रामां लक्ष्मीं सुखप्रदाम् ।
वरदां शारदां दिव्यां षण्मुखीं च सरस्वतीम् ॥११॥
हरि-रुद्रप्रियां देवीं क्षमाशीलां नवात्मिकाम् ।
पञ्चाशद्वर्णरूपां तां स्मरामि सर्वदा शुभाम् ॥१२॥
यस्य स्मरणमात्रेण प्रसन्ना वर्णमात्रिका ।
सम्भूयात् सा सदा लोके सर्वमङ्गलकारिणी ॥१३॥
नेत्रद्वय-ख-युग्मेऽब्दे श्री'द्विजेन्द्र'-विनिर्मिता ।
ज्येष्ठमासेऽत्र काश्यां वै प्रोद्गता साऽक्षमालिका॥१४॥
इति रत्नमयीं देवीं गायत्री-तुष्टिकारिणीम् ।
स्तुतिं पठन्नरो नित्यं ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥१५॥

इति श्रीगार्ग्यमुनि 'द्विजेन्द्र'कविकृता-अक्षमालास्तुतिः सम्पूर्णा ।

४२८. तीर्थाष्टकम्

मातृतीर्थम्–नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां तारणाय च ।
हितायाऽत्र परत्रार्थं यैस्तु माता प्रपूजिता ॥ १ ॥
पितृतीर्थम्–वेदैरपि च किं पुत्र ! पिता येन प्रपूजितः ।
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह ॥ २ ॥
गुरुतीर्थम्–अज्ञान-तिमिरान्धत्वं गुरुः शीघ्रं प्रणाशयेत् ।
तस्मात् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणां हितचिन्तकः ॥ ३ ॥
भक्ततीर्थम्–तीर्थभूतो हरेर्भक्तः स्वयं पूतश्च पावकः ।
येन भस्मीकृतो लोके पापपुञ्जो हि सुव्रत ! ॥ ४ ॥
पतितीर्थम्–प्रयाग-पुष्करसमौ पत्युः पादौ स्मृतावतः ।
स्नातव्यं सततं स्त्रीभिस्तीर्थभूते सरोवरे ॥ ५ ॥
पत्नीतीर्थम्–नास्ति पत्नीसमं तीर्थं भूतले तारणाय तु ।
यस्य गेहे सती नारी स धन्यः पुरुषो मतः ॥ ६ ॥
मित्रतीर्थम्–सम्पत्तौ च विपत्तौ च यस्तिष्ठति सदाऽत्र वै ।
मित्रतीर्थं परं लोके मुनिभिः परिभाषितम् ॥ ७ ॥

विप्रतीर्थम्-जङ्गमं विप्रतीर्थं तद् वेदपूतं च निर्मलम् ।
यस्य वाक्-सलिलेनैव शुद्धयन्ति मलिनो जनाः ॥ ८ ॥
तीर्थाष्टकमिदं पुण्यं श्री'द्विजेन्द्र'विनिर्मितम् ।
सेवितव्यं सदा भक्त्या भुक्ति-मुक्तिप्रदायकम् ॥ ९ ॥
इति श्रीगार्ग्यमुनि'द्विजेन्द्र'कविकृतं तीर्थाष्टकं समाप्तम् ॥४२८॥

४२९. गुर्वष्टकम्

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद्गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं सर्वसंस्थितम् ॥ १ ॥
परात्परतरं ध्येयं नित्यमानन्द-कारणम् ।
हृदयाकाश-मध्यस्थं शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम् ॥ २ ॥
अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४ ॥
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ५ ॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
विन्दु-नाद-कलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६ ॥
अनेक-जन्म - सम्प्राप्त - कर्मबन्ध - विदाहिने ।
आत्मज्ञान-प्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७ ॥
शिष्याणां मोक्षदानाय लीलया देहधारिणे ।
सदेहेऽपि विदेहाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ८ ॥
गुर्वष्टकमिदं स्तोत्रं सायं-प्रातस्तु यः पठेत् ।
स विमुक्तो भवेल्लोकात् सद्गुरो कृपया ध्रुवम् ॥ ९ ॥
इति श्रीगार्ग्यमुनि'द्विजेन्द्र'कवि-सङ्कलितं गुर्वष्टकं सम्पूर्णम् ॥४२९॥

४३०. श्रीभैरवाष्टकम्

श्रीभैरवो रुद्रमहेश्वरो यो महामहाकाल अधीश्वरोऽथ ।
यो जीवनाथोऽत्र विराजमानः श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

४३४. काली-स्तुतिः

रक्ता-ऽब्धि-पोतारुण-पद्मसंस्थां पाशाङ्कुशेष्वास-शराऽसि-बाणान् ।
शूलं कपालं दधतीं कराऽब्जै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम् ॥

४३५. तारा-स्तुतिः

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्य-सम्पत्प्रदे
प्रत्यालीढ-पदस्थिते शवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ।
फुल्लेन्दीवरलोचने त्रिनयने कर्त्रो कपालोत्पले
खड्गञ्चादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये ॥१॥
वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि !
गद्य-प्राकृत - पद्यजात - रचना-सर्वार्थसिद्धिप्रदे ! ।
नीलेन्दीवर-लोचनत्रययुते कारुण्यवारांनिधे !
सौभाग्यामृत-वर्द्धनेन कृपया सिञ्चत्वमस्मादृशम् । २ ॥

४३६. षोडशी-स्तुतिः

बालव्यक्त-विभाकरामितनिभां भव्यप्रदां भारतीम्
ईषत्फुल्ल-मुखाम्बुज-स्मितकरैराशा-भवान्धापहाम् ।
पाशं साभयमङ्कुशं च वरदं संविभ्रतीं भूतिदां
भ्राजन्तीं चतुरम्बुजाकृतिकरैर्भक्त्या भजे षोडशीम् ॥ १ ॥
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशा-ऽङ्कुश-शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥ २ ॥

४३७. भुवनेश्वरी-स्तुतिः

उद्यद्दिनद्युति-मिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुश-पाशा-भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥ १ ॥
जगज्जनानन्दकरीं जयाख्यां यशस्विनीं यन्त्रसुयज्ञयोनिम् ।
जितामितामित्र-कृतप्रपञ्चां भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ २ ॥
हरौ प्रसुप्ते भुवनत्रयान्ते अवातरन्नाभिजपद्मजन्मा ।
विधिस्ततोऽन्धे विदधारयत्पदं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ३ ॥

गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ६ ॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
इष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ७ ॥
गोपी मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ८ ॥

इति श्रीवल्लभाचार्य-विरचितं मधुराष्टकं समाप्तम् ॥ ४३१ ॥

४३२. भगवती-स्तुतिः

प्रातः स्मरामि शरदिन्दु-करोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकर - कुण्डल - हारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जित - सुनील - सहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभ - चरणां भवतीं परेशाम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि महिषासुर - चण्ड - मुण्ड -
शुम्भासुर - प्रमुखदैत्य - विनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्र - रुद्र - मुनि - मोहन - शील-लीलां
चण्डीं समस्त - सुर - मूर्तिमनेकरूपाम् ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्त-जगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
संसार - बन्धन - विमोचन - हेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥ ३ ॥

इति भगवती-स्तुतिः समाप्ता ॥ ४३२ ॥

४३३. दशमहाविद्या-नामानि

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥ १ ॥
बगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

४३४. काली-स्तुतिः

रक्ता-ऽब्धि-पोतारुण-पद्मसंस्थां पाशाङ्कुशेष्वास-शराऽसि-बाणान् ।
शूलं करालं दधतीं कराऽब्जै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम् ॥

४३५. तारा-स्तुतिः

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्य-सम्पत्प्रदे
प्रत्यालीढ-पदस्थिते शवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ।
फुल्लेन्दीवरलोचने त्रिनयने कर्त्री कपालोत्पले
खड्गश्चादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये॥१॥
वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि !
गद्य-प्राकृत - पद्यजात - रचना-सर्वार्थसिद्धिप्रदे ! ।
नीलेन्दीवर-लोचनत्रययुते कारुण्यवारांनिधे !
सौभाग्यामृत-वर्द्धनेन कृपया सिञ्चत्वमस्मादृशम् । २ ॥

४३६. षोडशी-स्तुतिः

बालव्यक्त-विभाकरामितनिभां भव्यप्रदां भारतीम्
ईषत्फुल्ल-मुखाम्बुज-स्मितकरैराशा-भवान्धापहाम् ।
पाशं साभयमङ्कुशं च वरदं संबिभ्रतीं भूतिदां
भ्राजन्तीं चतुरम्बुजाकृतिकरैर्भक्त्या भजे षोडशीम् ॥ १ ॥
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशा-ऽङ्कुश-शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥ २ ॥

४३७. भुवनेश्वरी-स्तुतिः

उद्यद्दिनद्युति-मिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुश-पाशा-भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥ १ ॥
जगज्जनानन्दकरीं जयाख्यां यशस्विनीं यन्त्रसुयज्ञयोनिम् ।
जितामितामित्र-कृतप्रपञ्चां भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ २ ॥
हरौ प्रसुप्ते भुवनत्रयान्ते अवातरन्नाभिजपद्मजन्मा ।
विधिस्ततोऽन्धे विदधारयत्पदं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ३ ॥

४३८. छिन्नमस्ता-स्तुतिः

नाभौ शुद्ध-सरोज-वक्त्र-विलसद्-बन्धूक-पुष्पारुणं
भास्वद्-भास्कर-मण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रं महत्।
तन्मध्ये विपरीत-मैथुनरत-प्रद्युम्न-सत्कामिनी-
पृष्ठस्थां तरुणार्क-कोटि-विलसत्तेजःस्वरूपां भजे॥

४३९. त्रिपुरभैरवी-स्तुतिः

उद्यद्भानु-सहस्रकान्तिमरुण-क्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्त-पयोधरां जपपटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्-वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्ध-हिमांशु-रत्नमुकुटां वन्दे समन्द-स्मिताम्॥

४४०. धूमावती-स्तुतिः

प्रातर्या स्यात् कुमारी कुसुम-कलिकया जापमाला जपन्ती
मध्याह्ने प्रौढरूपा विकसित-वदना चारुनेत्रा निशायाम्।
सन्ध्यायां वृद्धरूपा गलित-कुचयुगा मुण्डमालां वहन्ती
सा देवी देवदेवी त्रिभुवनजननी कालिका पातु युष्मान्॥

४४१. बगला-स्तुतिः

मध्ये सुधाब्धि - मणि - मण्डप - रत्नवेद्यां
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरण - माल्य - विभूषिताङ्गीं
देवीं स्मरामि धृत-मुद्गर-वैरिजिह्वाम्॥ १॥
चलत्कनक-कुण्डलोल्लसित-चारुगण्डस्थलां
लसत्कनक - चम्पक-द्युतिमदिन्दु-बिम्बाननाम्।
गदाहत-विपक्षकां कलित-लोलजिह्वा चलां
स्मरामि बगलामुखीं विमुख-वाङ्-मनःस्तम्भिनीम्॥ २॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥ ३॥

प्रभातकाले प्रयतो मनुष्यः पठेत् सुभक्त्या परिचिन्त्य पीताम् ।
द्रुतं भवेत् तस्य समस्त-वृद्धिर्विनाशमायाति च तस्य शत्रुः ॥ ४ ॥

४४२. मातङ्गी-स्तुतिः

श्यामां शुभ्रांशुभालां त्रिकमल-नयनां रत्नसिंहासनस्थां
भक्ताभीष्ट-प्रदात्रीं सुर-निकरकरा-सेव्यकञ्जाङ्घ्रि-युग्माम् ।
नीलाम्भोजांशुकान्ति निशिचर-निकरारण्य-दावाग्निरूपां
पाशं खड्गं चतुर्भिर्वर-कमलकरैः खेटकं चाङ्कुशं च ॥ १ ॥
नमस्ते मातङ्ग्यै मृदुमुदित-तन्वै तनुमतां
परश्रेयोदायै कमलचरण-ध्यान-मनसाम् ।
सदा संसेव्यायै सदसि विबुधैर्दिव्य-धिषणै-
र्दयाद्रायै देव्यै दुरितदलनोद्दण्डमनसे ॥ २ ॥

४४३. कमलात्मिका-स्तुतिः

ध्यानम्

कान्त्या काञ्चन-सन्निभां हिमगिरि-प्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्त-हिरण्मया-ऽमृत-घटैरासिच्यमानां श्रियम् ।
बिभ्राणां वरमब्ज-युग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्ध-नितम्ब-बिम्ब-ललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ।

स्तुतिः

त्रैलोक्य-पूजिते देवि ! कमले विष्णुवल्लभे ! ।
यथा त्वमचला कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा ॥ १ ॥
ईश्वरी कमला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरिप्रिया ।
पद्मा पद्मालया सम्यगुच्चैः श्रीपद्मधारिणी ॥ २ ॥
द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत् ।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत् तस्य पुत्र-दारादिभिः सह ॥ ३ ॥

इति श्रीकमलात्मिका-स्तुतिः समाप्ता॥ ४४३ ॥

इति देवरिया-मण्डलान्तर्गत-'मझौलीराज्य' (सम्प्रति वाराणसी) निवासि-पण्डित-श्रीसन्तशरणमिश्रात्मज-आचार्य-पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रि-सङ्कलितः सम्पादितश्च बृहत्-स्तोत्र-रत्नाकरः समाप्तः ।